।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

बिन्दुमें सिन्धु



परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

प्रवचनोंका सार-संग्रह

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

बिन्दुमें सिन्धु

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

संकलनकर्ता—

राजेन्द्र कुमार धवन

प्रकाशक—गीता प्रकाशन,
गीता-सत्संग-मण्डल,
कसौधन पंचायती मन्दिर (हरिवंश गली),
गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)
सम्पर्क-सूत्र—093 895 93 845; radhagovind10@gmail.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन ऐसे उपायोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनके द्वारा प्रत्येक कल्याणकांक्षी मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतासे अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक नवीनतम क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा जुलाई १९९८ से लेकर दिसम्बर १९९९ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह **'सीमाके भीतर असीम प्रकाश'** नामसे प्रकाशित हो चुका है, जिससे साधकोंको विशेष लाभ हुआ है। अब प्रस्तुत पुस्तकमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा जनवरी २००० से लेकर मई २००० तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये प्रवचन क्रमशः सूरत, हैदराबाद, मुम्बई, ईरोड, चेन्नई, ढालेगाँव, अहमदाबाद, बीकानेर, सींथल, गोरखपुर, लखनऊ और ऋषिकेशमें दिये गये थे। इन प्रवचनोंमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजद्वारा श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस पुस्तकमें मानवमात्रके कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। साधकोंको इनसे लाभ उठाना चाहिये।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज विविध लौकिक तथा पारमार्थिक विद्याओंके ज्ञाता थे। एक प्रवचनमें आपने डंकेकी चोट कहा था कि *'गुरु आपको जो बातें बतायेगा, उससे मैं कम नहीं बताऊँगा। मैं अभिमान नहीं करता हूँ। आपको किसी भी विषयकी बात गुरुसे पूछनी हो, वह मेरेसे पूछो। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग आदिकी जो बात पूछनी हो, पूछो।'* (१३.९.९९, प्रातः ८.३०, नोखा)

सन्त शरीरसे प्रकट नहीं होते, अपितु वाणीसे प्रकट होते हैं। परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वर्तमानमें शरीररूपसे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं, पर वाणीरूपसे वे हमारे बीच ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। उनकी हृदयस्पर्शी वाणी युगोंतक साधकोंका मार्गदर्शन करती रहेगी।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे, उनके विचारोंसे पूर्णतः परिचित होनेके लिये उनके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन करना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके साधनमें अवश्य उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़ें।

विजयादशमी
वि० सं० २०६८

निवेदक
राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

बिन्दुमें सिन्धु

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृतिः। सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥
प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये । ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्। देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्।
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

*** *** ***

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

*** *** ***

अविनाशी और नाशवान्—ये दो ही तत्त्व हैं। नाशवान् तत्त्वकी प्राप्तिके लिये तो चौरासी लाख योनियाँ हैं, पर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्तिके लिये एक मनुष्ययोनि ही है। इस मनुष्ययोनिमें आकर भी आप अपना समय धनका संग्रह करने ओर भोग भोगनेमें लगा दोगे तो फिर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्ति कब करोगे? यह बात खास सोचनेकी है। अभी अविनाशी तत्त्व अपने अधिकारमें है। वह अविनाशी तत्त्व मिलता है—दूसरोंकी सेवा करनेसे, दूसरोंका हित चाहनेसे—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' (गीता १२। ४)

हमारा लाभ हो जाय—इस स्वार्थकी वृत्तिसे हमारा बड़ा नुकसान है। मिलेगा कुछ नहीं और असली लाभसे वंचित रह जायँगे। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति दूसरोंके हितके लिये होनी चाहिये। अपने स्वार्थकी वृत्ति बहुत पतन करनेवाली है; परन्तु हरेक काम करनेमें यही वृत्ति मुख्य रहती है कि मेरेको सुख कैसे हो, लाभ कैसे हो? होना यह चाहिये कि दूसरोंको लाभ कैसे हो? दूसरोंका दु:ख कैसे दूर हो? कोई भी काम करें तो 'मेरेको क्या फायदा होगा'—इसकी जगह यह सोचें कि 'दूसरोंको क्या फायदा होगा'। जिस कामसे दूसरेको लाभ नहीं होगा, वह काम हम नहीं करेंगे। इस प्रकार भाव बदले बिना शान्ति नहीं मिलेगी। आपका उद्देश्य दूसरोंका हित करनेका होगा तो आपका हित अपने-आप होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

आपको अपने निर्वाहकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। आपके निर्वाहका प्रबन्ध पहलेसे है। जिस परमात्माने जन्म दिया है, उसपर आपका पालन करनेकी जिम्मेवारी है। सबके हितका भाव रखनेसे आपकी जो उन्नति होगी, वह स्वार्थका भाव रखनेसे नहीं होगी। दूसरेका हित न कर सको तो कम-से-कम इस बातका ख्याल रखो कि मेरे द्वारा किसीका अहित, नुकसान न हो जाय। हरदम यह सावधानी रखो। आपके लोक और परलोक दोनों सुधर जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

*** *** ***

आप घरमें रहते हुए अपनेको मालिक न मानकर सेवक मानें तो आपके द्वारा बहुत हित होगा और स्वाभाविक बहुत उन्नति होगी। जो अच्छे-अच्छे सन्त हुए हैं, उनमें कोई गुण था तो वह था—स्वार्थका त्याग। दीखनेमें स्वार्थ अच्छा दीखता है, पर वास्तवमें स्वार्थी आदमीकी उन्नति नहीं होती। **स्वार्थी आदमीका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता।** स्वार्थबुद्धि तो पशु-पक्षियोंमें भी होती है। पशु-पक्षी भी धूपसे अपनी रक्षा करनेके लिये छायामें बैठते हैं, शीत तथा वर्षासे अपनी रक्षा करते हैं; परन्तु वे अपना कल्याण नहीं कर सकते। कल्याण वही कर सकता है, जो अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करता है।

आपका भला वास्तवमें भगवान्‌की कृपासे होगा, आपकी चतुराईसे नहीं। अपनी चतुराईसे भला होता हो तो सब अपना भला कर लें। भगवान्‌की कृपा तब होगी, जब आप अपना स्वार्थ और अभिमान छोड़ दोगे, भगवान्‌के शरण हो जाओगे। **भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखोगे तो जहाँ जाओगे, वहीं आपकी विजय होगी।** पाण्डवोंने विजय प्राप्त की तो उसके पीछे भगवान्‌की कृपाका ही बल था। इसलिये आप निमित्तमात्र बन जाओ, रात-दिन भजन-स्मरण करो, पर भरोसा कृपाका ही रखो। एक भगवान्‌को याद रखो तो सब काम सिद्ध हो जायगा, लोक और परलोक सब सिद्ध हो जायगा—***'एकै साधै सब सधै, सब साधे सब जाय'***। भगवान्‌के भक्त भगवान्‌को याद रखते हैं, फिर वे संसारके सुख और दु:खकी परवाह नहीं करते।

*** *** ***

आपके दो खास काम हैं—भगवान्‌को याद रखना और दूसरोंको सुख पहुँचाना। दूसरोंको सुख न पहुँचा सको तो कम-से-कम किसीको दु:ख मत पहुँचाओ। **आप किसीके दु:खमें निमित्त मत बनो।** किसीको बुरा मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो और किसीका बुरा मत करो—यह मामूली बात नहीं है, बहुत ऊँची बात है। इससे आपका अन्त:करण निर्मल होगा, नहीं तो अन्त:करण निर्मल नहीं होगा। अन्त:करण निर्मल हुए बिना अच्छी बातें पैदा नहीं होंगी, पैदा होंगी भी तो ठहरेंगी नहीं। अन्त:करण जितना निर्मल होगा, उतनी आपकी स्वाभाविक उन्नति होगी—यह सिद्धान्त है। भला करना इतनी ऊँची बात नहीं है। बुराईका त्याग करनेसे भलाई स्वत: होगी। **दूसरोंकी सेवामें रुपये खर्च करना ज्यादा ऊँची बात नहीं है। यह तो एक टैक्स है। टैक्स देना दण्ड है, कोई ऊँची बात नहीं है। आपने रुपया इकट्ठा किया है तो टैक्स दो, दूसरोंकी सेवा करो।**

मैंने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की एक पुरानी बात सुनी है। सेठजी गोहाटी गये थे। वहाँ व्याख्यान देते समय उन्होंने गीताके **'निर्वैर: सर्वभूतेषु......'** (११। ५५)—इस पदकी विस्तारसे व्याख्या करते हुए कहा कि किसी भी प्राणीके साथ अपने हृदयमें वैर नहीं रखना चाहिये। वैरभाव, ईर्ष्या रखनेसे अन्त:करण बहुत अशुद्ध होता है। वहाँ सत्संगमें दो धनी वृद्ध सज्जन बैठे थे। उनकी आपसमें खटपट थी। उनमेंसे एक बोला कि 'मेरा दुनियामें किसीके साथ वैर नहीं है, केवल एक व्यक्तिके साथ वैर है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मरनेवाला हूँ। वैर साथमें रखकर जाना ठीक नहीं है।

इसलिये आजसे मैं वैर यहीं छोड़ देता हूँ। अब मैं उसे कभी दुःख नहीं पहुँचाऊँगा। उसका बुरा कभी नहीं चाहँगा, नहीं करूँगा।' दूसरा व्यक्ति भी वहीं बैठा हुआ था। सेठजीने उससे पूछा तो उसने कहा कि 'यह आज सीधा हुआ है! इसने मेरेको बहुत दुःख दिया है। आज यह कहता है कि मैं वैर नहीं रखूँगा, तो यह वैर नहीं मिट सकता।' सेठजीने कहा कि 'मनमें अच्छी बात रखो। किसीके प्रति बुरा भाव लेकर जाना अच्छा नहीं है।' वह बोला कि 'महाराज, यह तो साथमें ही जायगा।' सेठजीने कहा कि 'साथमें बढ़िया चीज लेकर जाओ, वैर क्यों लेकर जाओ!' पहलेवाले सज्जनके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि मैं वैर छोड़ना चाहता हूँ, पर यह वैर छोड़ता नहीं! यह वैर नहीं छोड़ेगा तो मेरा वैर छूटेगा नहीं! अब मैं क्या करूँ? वे घबरा गये और रोने लग गये। सेठजीने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा कि 'मेरा स्वभाव नहीं है, फिर भी कहता हूँ कि वह भले ही वैर रखे, पर तुम्हारा वैर तो निकल गया!' सेठजीने दूसरे व्यक्तिसे कहा कि 'मैं तुम्हें भी कहता हूँ कि तुम भी वैर छोड़ दो।' उसने विचार किया कि दूसरेने तो वैर छोड़ दिया और सेठजीने भी कह दिया कि तुम्हारा वैर निकल गया, तो फिर मैं अकेला ही वैर क्यों रखूँ? ऐसा सोचकर उसने भी कह दिया कि 'मैं भी वैर छोड़ता हूँ।' दोनोंने आपसमें मिलकर एक-दूसरेको नमस्कार कर लिया। आगे चलकर एक बार जब स्वर्गाश्रममें वटवृक्षके नीचे सत्संग हो रहा था, तब उस व्यक्ति (जिसने सर्वप्रथम वैर छोड़ा था)-के बेटे ने सेठजीको बताया कि मेरे पिताजीका शरीर छूटा तो उनके प्राण दशम द्वारसे निकले! उनकी वही गति हुई, जो योगियोंकी होती है!

*** *** ***

धर्मके लिये, दान-पुण्य करनेके लिये, दूसरोंका हित करनेके लिये भी पैसेकी जरूरत नहीं है। **जो धर्मके लिये पैसा चाहता है, वह धर्मके तत्त्वको नहीं जानता।** बम्बईमें मेरेसे कहा गया कि गायें भूखों मर रही हैं, अगर आप सत्संगमें कुछ दान-पेटियाँ रखवा दें और धनी आदमियोंको इकट्ठा करके गायोंकी सेवा करनेकी प्रेरणा करें तो बहुत रुपये इकट्ठे हो जायँगे, जिनसे गायोंकी बहुत सेवा होगी। मैंने कहा कि मैं वास्तवमें यहाँ ईश्वर और धर्मका महत्त्व बढ़ाने आया हूँ। अगर मैं ऐसी बात करूँ तो सबके मनमें यह जँचेगी कि पैसा बहुत बढ़िया चीज है, स्वामीजी भी पैसा लानेकी बात कहते हैं! इनको भी पैसोंकी जरूरत है! इससे पैसोंका ही महत्त्व बढ़ेगा, जो आपके भीतर पहलेसे ही बढ़ा हुआ है। मैं पैसोंका महत्त्व बढ़ाना नहीं चाहता। कलकत्तेमें भी मुझसे ऐसी बात कही गयी तो मैंने कहा कि कि किसीको पैसोंके लिये कहना, पैसे माँगना उसके कलेजेमें छुरी चलाना है! ऐसा कसाईपना मेरेसे नहीं होता! लोग कहते तो हैं कि पैसा हाथकी मैल है, पर यह बात केवल कहनेकी है। वास्तवमें तो पैसा उनके कलेजेकी कोर (टुकड़ा) है!

आपकी शक्ति हो तो गायोंका पालन करो, गरीबोंकी सेवा करो, पर किसीसे पैसा मत माँगो। पैसोंकी गुलामी मत करो। **आपके भाग्यसे जो पैसा आनेवाला है, वह तो आयेगा ही। ब्रह्माजीकी भी ताकत नहीं कि उसे रोक दें!**

*** *** ***

परमात्माको प्राप्त करना सम्भव है, पर शरीरको बनाये रखना असम्भव है। उम्र कम-ज्यादा हो सकती है, पर शरीर सदा बना रहे—यह सम्भव नहीं है। जो बहुत बड़े चिरंजीवी हैं, उनका भी शरीर सदा बना नहीं रहता। इसलिये शरीरको बनाये रखनेकी धारणा न करके परमात्माको प्राप्त करनेकी धारणा करनी चाहिये। यह मूल, खास बात है।

एक विलक्षण बात है कि परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंमें हैं। अगर कोई समझना चाहे तो मनुष्यमात्र

इस तत्त्वको समझ सकता है। शरीर किसीके साथ रहनेवाला नहीं है और परमात्मा किसीका साथ छोड़नेवाले नहीं हैं। परमात्मा सबके साथ सदा रहते हैं। **केवल यह विश्वास कर लें कि परमात्मा सबमें हैं और वे मेरे हैं।** जैसे हवाई जहाज चलता है तो उसमें कोई मनुष्य (चालक) दीखता नहीं, पर उसमें मनुष्य जरूर होता है, नहीं तो उसको चलाता कौन है? ऐसे ही परमात्मा सबमें हैं, नहीं तो सबको चलाता कौन है? वे परमात्मा हमारे हैं। एक बात और समझनेकी है कि एक परमात्माके सिवाय अपनी चीज कोई नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, पर उनमें तिल जितनी चीज भी अपनी नहीं है। इसलिये संसारसे मिली हुई चीजोंके द्वारा संसारकी सेवा करो, संसारको सुख पहुँचाओ। 'है' नाम परमात्माका ही है। संसार 'नहीं' है। जो 'है', वह हमारा है। जो 'नहीं' है, वह हमारा नहीं है।

ऐसा विश्वास करो कि **हमारा परमात्मा हमारेमें है।** परमात्मा विश्वाससे मिलते हैं—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु॥

(मानस, उत्तर० ९० क)

*** *** ***

जो चीज जितनी श्रेष्ठ और आवश्यक होती है, उतनी ही वह सस्ती मिलती है। हीरा-पन्ना हमें उम्रभर देखनेको न मिलें तो भी हम जी सकते हैं, इसलिये वे बहुत महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा आवश्यक है, इसलिये वह अन्नसे भी सस्ता मिलता है। जलके बिना तो हम कुछ रह सकते हैं, पर हवाके बिना तो रह ही नहीं सकते, इसलिये हवा मुफ्तमें मिलती है तथा सब जगह मिलती है। परन्तु परमात्मा उससे भी सस्ते हैं! हवा कहीं कम मिलती है, कहीं ज्यादा; कभी तेज चलती है, कभी मन्द; परन्तु परमात्मा सब जगह तथा सब समय समान रीतिसे ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण हैं, और वे सबके अपने हैं। उनके बिना कोई भी चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि और आकाश तो सदा नहीं रहेंगे, पर परमात्मा सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः परमात्मा सबसे आवश्यक हैं और सबसे सस्ते हैं। आपने सांसारिक चीजोंको ज्यादा महत्त्व दे रखा है, इसलिये परमात्मा दीखते नहीं। इनको इतना महत्त्व मत दो, परमात्मा दीख जायँगे, उनकी प्राप्ति हो जायगी। केवल उनको याद रखो कि हमारे प्रभु सबमें हैं। उनको याद करनेमें कोई खर्चा नहीं, कोई परिश्रम नहीं, और निहाल हो जाओगे! **जिसने परमात्माको हर समय याद रखा, वह सन्त-महात्मा हो गया!**

आप लोगोंके पास धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि है, फिर भी चिन्ता रहती है। परन्तु विरक्त सन्तोंके पास कुछ भी नहीं होता, जंगलमें रहते हैं, फिर भी वे मस्तीमें रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनको आपलोगोंसे भी कोई बढ़िया चीज मिली है। वह चीज केवल सन्तोंके लिये ही हो, ऐसी बात नहीं है। वह चीज सब भाई-बहनोंके लिये है। वह मिल जाय तो फिर मौज-ही-मौज है, आनन्द-ही-आनन्द है!!

*** *** ***

श्रोता—जब भगवान् अपने हैं तो फिर हम उनसे बिछुड़ कैसे गये? चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें कैसे पड़ गये? यह आप बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—बता तो मैं दूँगा, पर इसमें आपको फायदा नहीं है, नुकसान है। मैल कैसे लगा, कब लगा, इससे क्या फायदा? उसको साफ कर दो, इतनी बात है। बीती हुई बातकी चिन्ता करना

बुद्धिमानी नहीं है। एक कहावत है कि *'गयी तिथि ब्राह्मण भी बाँचता नहीं'*।

आज आपको रुपये और भोग अच्छे लगते हैं, बस, यही बन्धनका कारण है। जबतक ये अच्छे लगते रहेंगे, तबतक छूटोगे नहीं। जब ये अच्छे लगने बन्द हो जायँगे, पट प्राप्ति हो जायगी! हम इसलिये फँसे हैं कि हम रुपये और भोग चाहते हैं, मान-बड़ाई चाहते हैं, सत्कार चाहते हैं। यह चाहना छोड़ दें तो सब ठीक हो जायगा।

*** *** ***

लोग निन्दा करें तो करने दो। सब लोगोंको अपनी तरफसे छुट्टी दे दो, वे चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें, जिसमें वे राजी हों, करें। आप सबको छुट्टी दे दो तो आपको छुट्टी (मुक्ति) मिल जायगी! प्रशंसामें तो मनुष्य फँस सकता है, पर निन्दामें पाप नष्ट होते हैं। कोई झूठी निन्दा करे तो चुप रहो, सफाई मत दो। सत्यकी सफाई देना सत्यका निरादर है। भरतजी कहते हैं—

जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(मानस, अयोध्या० २०५। १)

दूसरा आदमी हमें खराब समझे तो इसका कोई मूल्य नहीं है। भगवान् दूसरेकी गवाही नहीं लेते। दूसरा आदमी अच्छा कहे तो आप अच्छे हो जाओगे, ऐसा कभी होगा नहीं। अगर आप बुरे हो तो बुरे ही रहोगे। अगर आप अच्छे हो तो अच्छे ही रहोगे, भले ही पूरी दुनिया बुरा कहे। लोग निन्दा करें तो मनमें आनन्द आना चाहिये। एक सन्तने कहा है—

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे।
श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतोर्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति॥

(जीवन्मुक्तिविवेक २)

'मेरी निन्दासे यदि किसीको सन्तोष होता है, तो बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुष तो दूसरोंके सन्तोषके लिये अपने कष्टपूर्वक कमाये हुए धनका भी परित्याग कर देते हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा)!'

किसी आदमीके पास दस हजार रुपये हैं और वह टिकट लेकर गाड़ीपर चढ़ा है, पर दूसरे कहते हैं कि इसके पास एक कौड़ी भी नहीं है, टिकट भी नहीं लिया होगा, तो क्या उस आदमीको दुःख होगा? वह तो सोचेगा कि अच्छी बात है, मेरी रक्षा हो गयी, कोई जेबकतरा नजदीक नहीं आयेगा!

श्रोता—आपने कहा कि सफाई देना सत्यका निरादर है, यह ठीक समझमें नहीं आया।

स्वामीजी—कोई पूछे तो सत्य बात कह दे। बिना पूछे लोगोंमें कहनेकी जरूरत नहीं। बिना पूछे सफाई देना सत्यका निरादर है। हम पाप नहीं करते, किसीको दुःख नहीं देते, फिर भी हमारी निन्दा होती है तो उसमें दुःख नहीं होना चाहिये, प्रत्युत प्रसन्नता होनी चाहिये। भगवान्‌की तरफसे जो होता है, सब मंगलमय ही होता है। इसलिये मनके विरुद्ध बात हो जाय तो उसमें आनन्द मनाना चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—रामायण आया है—***'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि'*** (उत्तर० ४५) तो

क्या शंकरके भजनके बिना हम भगवान्‌की भक्ति नहीं पा सकते?

स्वामीजी—इसमें एक मार्मिक बात है कि आपसमें खटपट, मतभेद नहीं होना चाहिये। पहले शैवों और वैष्णवोंमें आपसमें बड़ी खटपट थी। उसको गोस्वामीजी महाराजने दूर किया। उन्होंने शंकर और विष्णुको एक बताया और दोनोंको एक-दूसरेका उपासक बताया। शंकरजीके लिये कहा—***'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'*** (मानस, बाल० १५। २) अर्थात् शंकरजी रामजीके सेवक भी हैं, स्वामी भी हैं और मित्र भी हैं। जैसे, शंकरजीने हनुमान्‌जीका रूप धारण करके रामजीकी सेवा की। लंकापर चढ़ाई करनेसे पहले रामजीने शंकरजीका पूजन किया। तात्पर्य है कि शैवों और वैष्णवोंके बीच मतभेदको लेकर आपसमें खटपट बिल्कुल नहीं होनी चाहिये।

वैष्णवलोग शिवजीके मन्दिरमें नहीं जाते तो इसमें एक छिपी हुई बात है। वैष्णवलोग मस्तकपर जो तिलक करते हैं, उसमें तीन रेखाएँ होती हैं—दोनों तरफकी रेखाएँ भगवान्‌के चरणोंका चिह्न और दोनोंके बीचकी लाल रेखा लक्ष्मीजीका चिह्न है। इस तिलकको लगाकर शंकरके सामने नहीं जाते; क्योंकि भगवान् शंकर नग्नवेशमें हैं, फिर लक्ष्मीजीका चिह्न लगाकर उनके सामने कैसे जायँ? परन्तु इसका तात्पर्य खटपट नहीं होना चाहिये। किसीसे भी वैर रखना नरकोंमें ले जानेवाला है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

(मानस, लंका० २)

वास्तवमें भगवान् विष्णु और शंकर एक हैं। सत्त्वगुणका रंग सफेद, रजोगुणका रंग लाल और तमोगुणका रंग काला है। सृष्टिकर्ता (रजोगुणी) ब्रह्माजीका रंग तो लाल है, पर विष्णुका काला और शंकरका सफेद रंग है, जबकि पालनकर्ता (सत्त्वगुणी) विष्णुका सफेद और संहारकर्ता (तमोगुणी) शंकरका काला रंग होना चाहिये। कारण यह है कि शंकरका ध्यान करनेसे विष्णु काले हो गये और विष्णुका ध्यान करनेसे शंकर सफेद हो गये! विष्णुके भक्त जो तिलक करते हैं, वह शंकरके त्रिशूलके समान है, और शंकरके भक्त जो तिलक करते हैं, वह विष्णुके धनुषके समान है।

आपके घरोंमें भी आपसमें खटपट नहीं होनी चाहिये। आपसमें प्रेम होना चाहिये। उपासना भले ही अलग-अलग हो, पर आपसमें वैर नहीं होना चाहिये। **आपसका वैर विनाश करनेवाला होता है।** किसीसे वैर करोगे तो फिर **'वासुदेवः सर्वम्'** (सब संसार भगवत्स्वरूप है) का अनुभव कैसे करोगे? घरमें साथ-साथ रहो तो प्रेमके लिये और मतभेद होनेपर अलग-अलग हो जाओ तो प्रेमके लिये। **आपसका प्रेम परमात्माकी तरफ ले जानेवाला होता है।** आपसमें खटपट रखते हो तो आपने सत्संग क्या किया? यह तो कुसंग है। कोई किसी भी इष्टको माने, पर आपसमें प्रेम होना चाहिये। हमारे सत्संगमें सभी सम्प्रदायोंके लोग आते हैं, मुसलमान भी आते हैं। सुजानगढ़में मुसलमान लोग मुझे अपने घर भी ले गये थे। सत्संग करनेसे कई मुसलमानोंने शराब और मांसका सेवन करना छोड़ दिया। इसलिये आप सबके साथ प्रेम रखो, सबका हित चाहो। **प्रेम ऐसी चीज है, जो जड़तामें भी चेतनता ले आती है।**

***   ***   ***

अगर आप सुगमतासे भगवत्प्राप्ति चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि आप 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मान लें। यह 'चुप साधन' अथवा 'मूक सत्संग' से भी बढ़िया साधन है! जैसे आपके घरकी

कन्या विवाह होनेपर 'मैं ससुरालकी हूँ'—यह मान लेती है, ऐसे आप 'मैं भगवान्का हूँ'—यह मान लें। यह सबसे सुगम और सबसे बढ़िया साधन है। इसको भगवान्ने सबसे अधिक गोपनीय साधन कहा है—'**सर्वगुह्यतमम्**' (गीता १८। ६४)। गीताभरमें यह '**सर्वगुह्यतमम्**' पद एक ही बार आया है। मैं हाथ जोड़कर प्रेमसे कहता हूँ कि मेरी जानकारीमें यह सबसे बढ़िया साधन है।

आप जहाँ हैं, वहाँ ही अपनेको भगवान्का मान लो। चिन्ता बिल्कुल छोड़ दो। जो हमारा मालिक है, वह चिन्ता करे, मैं चिन्ता क्यों करूँ?

चिन्ता दीनदयाल को, मो मन सदा आनन्द।
जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥

वास्तवमें आप बिल्कुल भगवान्के ही हैं, पर आपने मान रखा है कि मैं अमुक देश, गाँव, मोहल्ले, घर आदिका हूँ। यह देश, गाँव, मोहल्ला, घर आपका नहीं है। आप यहाँ आये हो। इसलिये मेरी सम्मति यही है कि आप आजसे ही यह स्वीकार कर लो कि 'मैं भगवान्का हूँ'। हर समय भगवान्के ही होकर रहो। भजन करो तो भगवान्के होकर भजन करो। संसारके होकर भजन करते हो तो वह भजन बढ़िया नहीं होता।

*** *** ***

श्रोता—अच्छे कर्म करना या संसारको अपना न मानना या भगवान्को अपना मानना—तीनों साधनोंमें कौन-सा साधन बढ़िया है, जिससे हमारे राग-द्वेष दूर हो जायँ और हमारा कल्याण हो जाय?

स्वामीजी—**भगवान्को अपना मानना सबसे श्रेष्ठ साधन है।** भगवान्को अपना माननेसे भगवत्कृपासे राग-द्वेष भी दूर हो जाते हैं, समता भी आ जाती है, शान्ति भी मिल जाती है, मुक्ति भी हो जाती है। कारण कि मूलमें हम भगवान्के अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। इस मूलको ठीक करनेसे सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—इष्ट तो एक होना चाहिये, पर जब हम '**हरे राम.....**' मन्त्रका जप करते हैं तो हमें राम और कृष्ण दोनों याद आते हैं! हम क्या करें?

स्वामीजी—राम और कृष्ण दो नहीं हैं, एक ही हैं—यह विचार कर लो अथवा यह मान लो कि राम ही कृष्ण बने हैं। चाहे दोनोंको एकरूप कर लो, चाहे दोनोंको एकरूप मान लो।

श्रोता—भगवान्के आनन्दकी अनुभूति क्यों नहीं होती?

स्वामीजी—संसारके सुखमें आसक्ति होनेके कारण। इसको जबतक नहीं छोड़ोगे, तबतक भगवान्के आनन्दका अथवा निजानन्दका अनुभव नहीं होगा।

*** *** ***

श्रोता—दो समुदायोंमें प्रेम कैसे बना रहे?

स्वामीजी—अपनी जिद छोड़ दे। जो अपनी जिद पहले छोड़ दे, उसीकी महिमा है। दोनों समुदायोंके मुख्य-मुख्य आदमी विचार कर लें तो आपसकी खटपट मिट सकती है। प्रेमकी महिमा सबसे अधिक है। **प्रेमकी जितनी महिमा है, उतनी महिमा ज्ञानकी भी नहीं है और भगवान्के साक्षात् दर्शनकी भी नहीं है!** यदि आपसमें निष्काम प्रेम हो जाय तो वह प्रेम भगवत्प्राप्तिमें कारण हो जाता है!

आपसमें जो वैर-विरोध होता है, वह प्रारब्धसे नहीं होता, प्रत्युत अपनी गलतीसे होता है। अपनी गलतीको मिटानेमें हम स्वतन्त्र हैं। अपनी गलती मिटा दें, अपना अभिमान छोड़ दें तो प्रेम हो जायगा। वैर रखनेसे बहुत नुकसान होता है। जिस घरमें लड़ाई होती है, उस घरकी कन्या कोई लेना नहीं चाहता कि हमारे घरमें चिनगारी आ जायगी तो आग लग जायगी! आपसमें खटपट होनेसे कुएँका पानीतक सूख जाता है! आपसमें प्रेम होनेसे धन-सम्पत्ति भी बढ़ जाती है—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(मानस, सुन्दर० ४०। ३)

जिस घरमें प्रेम होता है, उस घरकी रोटी साधु भी लेना चाहते हैं, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो। आपसमें स्नेह होता है—नम्रतासे, सरलतासे, सीधेपनसे, द्वेष न रखनेसे, ईर्ष्या न रखनेसे।

अपने-अपने घरोंमें, गाँवोंमें एक-दूसरेकी सेवा करो, सुख पहुँचाओ। दूसरोंको सुख पहुँचानेकी अपनी आदत बना लो। जो गरीब घर हैं, जहाँ अन्न-वस्त्रकी तंगी है, उन घरोंमें छिपकर अन्न-वस्त्र पहुँचाओ, गरीब बालकोंको पढ़ाओ, उनकी सहायता करो तो आपका पैसा सफल हो जायगा। इसका बड़ा भारी पुण्य होगा। यह निश्चित बात है कि जिस दिन मरोगे, पैसा छोड़कर ही मरोगे। आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ कि पैसा सब खर्च हो गया, पीछे आदमी मरा। विरक्त, त्यागी सन्त-महात्माकी भी तूँबी, लँगोटी पीछे रहती है, मरता है पहले!

***　　　***　　　***

सजातीयतामें खिंचाव होता है। अतः जिनके भीतर कुसंगके संस्कार हैं, उनपर कुसंगका असर ज्यादा पड़ता है। जिनके भीतर सत्संगके संस्कार हैं, उनपर सत्संगका असर ज्यादा पड़ता है। इसलिये सत्संगके द्वारा अपने भीतर अच्छे संस्कार भरने चाहिये।

जिसका भगवान्‌में प्रेम है, उसका माता-पिता आदिमें, पशु-पक्षियोंमें, सब प्राणियोंमें प्रेम होगा ही।

***　　　***　　　***

श्रोता—बाहरकी पवित्रतासे क्या लाभ? मन पवित्र होना चाहिये। मन पवित्र है तो बाहरकी पवित्रताकी क्या जरूरत?

स्वामीजी—मन अपवित्र, खराब होता है, तभी यह बात पैदा होती है कि बाहरकी पवित्रतासे क्या लाभ? अगर मन पवित्र हो तो शास्त्रसे विरुद्ध काम हो ही नहीं सकता, असम्भव बात है। अगर शास्त्रसे विरुद्ध बात पैदा होती है तो यह मनकी अपवित्रताका प्रमाण है। **मन पवित्र होगा तो शास्त्र-विरुद्ध बात पैदा हो ही नहीं सकती, प्रत्युत बिना शास्त्र पढ़े मनमें शास्त्रके अनुकूल बात पैदा होगी।** राजा दुष्यन्तने जब कण्व ऋषिके आश्रममें शकुन्तलाको देखा तो उनके मनमें विचार आया कि यह किसी क्षत्रियकी बेटी है, ब्राह्मणकी बेटी नहीं है। अगर यह ब्राह्मणकी बेटी होती तो मेरा मन उसमें खिंचता ही नहीं—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

(अभिज्ञानशकुन्तलम् १। २१)

'इसमें सन्देह नहीं कि यह क्षत्रियद्वारा ग्रहण करनेयोग्य है, जिससे मेरा विशुद्ध मन भी इसको

चाहता है; क्योंकि जहाँ सन्देह हो, वहाँ सत्पुरुषोंके अन्त:करणकी प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है।'

सीताजीको देखनेपर रामजी भी कहते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(मानस, बाल० २३१। ३)

***　　　***　　　***

श्रोता—ईश्वरदर्शन और आत्मसाक्षात्कारमें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—आत्मसाक्षात्कार तो हरेक साधकको हो सकता है; उसको भी हो सकता है, जो ईश्वरको नहीं मानता। परन्तु ईश्वरदर्शन उसीको होते हैं, जो ईश्वरको मानता है। चेतन-तत्त्व एक होते हुए भी ईश्वर अलग है, जीव अलग है। ईश्वर सबका मालिक है, जीव सबका मालिक नहीं है। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेका काम ईश्वरका है, जीवका नहीं—**'जगद्व्यापारवर्जम्'** (ब्रह्मसूत्र ४। ४। १७)।

श्रोता—भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं, यह तो ठीक है, पर क्या नारदजी आदि प्राचीन ऋषियोंके भी दर्शन हो सकते हैं?

स्वामीजी—हाँ, हो सकते हैं। सन्त-महात्मा भी नित्य होते हैं। गीतामें भगवान्‌ने **'प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्'** (१०। ३०) 'दैत्योंमें प्रह्लाद मैं हूँ'—ऐसा कहा है, 'दैत्योंमें प्रह्लाद मैं था'—ऐसा नहीं कहा है। तात्पर्य है कि प्रह्लाद, नारद, अंगिरा आदि अभी भी हैं।

***　　　***　　　***

श्रोता—हम धर्मको मानते हैं, सुबह-शाम पूजा भी करते हैं, फिर एक चोटी न रखें तो क्या हानि है?

स्वामीजी—घड़ीमें अनेक पुर्जे होते हैं। उनमेंसे एक छोटा-सा पुर्जा भी निकाल दो तो घड़ी चलेगी नहीं। आप कोई भी काम करो, उसमें छोटी-सी भी कमी रह जायगी तो वह कमी ही रहेगी, इसमें सन्देह नहीं है। घड़ीमें छोटे-से-छोटा पुर्जा भी अपनी जगह पूरा है। उसकी कीमत बड़े पुर्जेसे कम नहीं है। इसी तरह चोटी भी अपनी जगह पूरी है। अपनी-अपनी जगह सब पूरे हैं। क्या घड़ीके छोटे पुर्जेकी जगह बड़ा पुर्जा काम कर सकता है?

छोटी-सी कमी भी कमी ही रहेगी, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। महाराज नलके शरीरमें प्रवेश करनेके लिये कलियुग कई दिनोंतक प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन लघुशंका करके नलने हाथ तो धो लिये, पर पैर नहीं धोये तो कलियुग उनमें प्रवेश कर गया! छोटी-सी कमी भी बड़ी भारी कमी है। अत: चोटी न रखना बड़ी भारी कमी है!

अगर सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहते हो तो अपनी बुद्धिमानी मत लगाओ, शास्त्रकी बात मानो। गीता कह रही है—**'तस्माछास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'** (१६। २४) अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें शास्त्र ही प्रमाण है।

***　　　***　　　***

श्रोता—मेरा एक भाई कैन्सर-रोगके कारण बड़ा कष्ट पा रहा है। ऐसी अवस्थामें उसका कल्याण हो, इसके लिये क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—वह सब घरवालोंका हृदयसे त्याग करके, साधु-संन्यासीकी तरह होकर एक भगवान्‌के शरण हो जाय। 'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं; मैं और किसीका नहीं हूँ और मेरा कोई नहीं है'—इस भावसे रात-दिन भगवान्‌के भजनमें लग जाय तो कल्याण हो जायगा। भगवान्‌के चरणोंके शरण होनेसे सब काम ठीक हो जाता है।

श्रोता—उसके मनमें मृत्युका बड़ा भय है।

स्वामीजी—मृत्युसे डरे नहीं, प्रत्युत मृत्युको साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझे कि मृत्युरूपसे साक्षात् स्वयं भगवान् आयेंगे। '**वासुदेवः सर्वम्**'—सब कुछ भगवान् ही हैं तो क्या मृत्यु भगवान् नहीं हैं? भगवान्‌के भक्त मौतको भी भगवान्‌का स्वरूप समझते हैं। सब कुछ भगवान् ही हैं, केवल राग-द्वेषके कारण ही संसार दीख रहा है।

श्रोता—मूक सत्संग क्या है?

स्वामीजी—न शरीरकी क्रिया हो, न वाणीकी क्रिया हो, न मनकी क्रिया हो, सब मूक (चुप) हो जायँ। कोई भी क्रिया न करके एक भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाय। शरण होना है—यह भाव भी न रहे। यह 'चुप साधन' है। शरणानन्दजी महाराज इसको 'मूक सत्संग' और सेठजी 'अचिन्त्य-ध्यान' कहते थे।

***　　　***　　　***

भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाना सबसे श्रेष्ठ साधन है। शरणागतिसे बहुत विलक्षणता आती है, इसका हमें (शरणानन्दजी महाराजके रूपमें) बड़ा प्रबल प्रमाण मिला है। शरणानन्दजी महाराजने अपनी पुस्तकोंमें जो बातें लिखी हैं, वह नया आविष्कार है। भगवान्‌के शरण होनेसे वे 'शरणानन्द' थे। बहुत सुगमतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, ऐसा उनका नया आविष्कार है। छहों शास्त्रोंसे उनकी बात नयी है। उनकी वाणी देखनेसे मालूम होता है कि शरणागति बहुत विलक्षण, अलौकिक चीज है।

जैसे आपकी कन्याका विवाह हो जाता है तो वह ससुरालकी हो जाती है, उसका गोत्र बदल जाता है, ऐसे ही जो सर्वथा भगवान्‌के शरण हो जाता है, उसका सब कुछ बदल जाता है। वह संसारी आदमी नहीं रहता। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र नहीं रहता। वह संसारसे ऊँचा उठ जाता है। उसकी वाणी विलक्षण हो जाती है। उसका जीवन विलक्षण हो जाता है। **एक भगवान्‌के शरण होते ही उसका और भगवान्‌का एक रूप हो जाता है।** इसलिये 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इस प्रकार शरण होकर निश्चिन्त हो जाय। इसमें किसी गवाहकी जरूरत नहीं है। 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इतना कह देनेमात्रका बड़ा माहात्म्य है, अगर भीतरसे हो जाय तो पूर्ण हो जायगा!

'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह प्रार्थना हरेक भाई-बहनके लिये बड़े कामकी है। आप हरदम यह प्रार्थना करके देखो तो सही, विचित्रता आ जायगी! बीचमें अपनी बुद्धि मत लगाओ। भगवान्‌को भूलें नहीं, फिर सब काम ठीक हो जायगा। स्वयं पहलेसे ही परमात्माका अंश है और वह उसीके शरण हो जाय तो फिर बाकी क्या रहेगा?

***　　　***　　　***

श्रोता—क्या जीवनमें गुरु बनाना जरूरी है?

स्वामीजी—हरेकको गुरु बनानेमें लाभ नहीं है, हानि है। वास्तवमें जो गुरु बननेलायक हैं, वे तो गुरु बनते नहीं और जो गुरु बननेलायक नहीं हैं, वे भेंट-पूजाके लिये गुरु बन जाते हैं! अतः

गुरु बनानेमें मेरी सम्मति नहीं है। जो शिष्यका उद्धार नहीं कर सके, उसको गुरु नहीं बनना चाहिये। आप मेरी *'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?'* पुस्तक पढ़ो।

श्रोता—गुरु नहीं बनानेसे क्या दान, धर्म, तीर्थ, व्रत, नामजप करना निष्फल हो जायगा?

स्वामीजी—कभी निष्फल नहीं होगा। भगवान्‌का सबके साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। बीचमें किसी दलाल (गुरु) की जरूरत नहीं है। मैं गुरु नहीं बनता, पर बात सब बताता हूँ। आप चेला बनें, फिर मैं बताऊँगा—यह व्यापार मैं करता ही नहीं।

श्रोता—हम चाहती हैं कि जैसे हमने कष्ट सहे हैं, वैसे हमारी बहुएँ कष्ट न सहें। परन्तु आजकलकी बहुएँ ही ऐसी हैं कि हमारी बात ही नहीं मानतीं और तंग करती हैं! अब हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—बेटे और बहूको प्रेमसे अलग कर देना चाहिये। उनको स्वतन्त्र कर देना चाहिये, जबकि स्वतन्त्र होनेमें उनका कल्याण नहीं है। परन्तु उनमें कल्याणकी चाहना है ही नहीं!

मैं अभीतक शासनमें रहना अच्छा मानता हूँ। इससे फायदा होता है। मैंने शासनमें रहकर ही बहुत जीवन बिताया है। जैसे बहू रहे, ऐसे मैं रहा हूँ! जो अच्छे आदमी हैं, हमारा हित चाहते हैं, उनके पास रहनेसे, उनका कहना माननेसे मुफ्तमें फायदा होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अपनी मनमानी करनेवालेका कल्याण नहीं होता।

प्रत्येक काममें दो बातें खास हैं—अपने स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित। कोई भी काम इस भावसे मत करो कि इससे मेरेको क्या फायदा होगा, प्रत्युत इस भावसे करो कि इससे दूसरेको क्या फायदा होगा। जो अपना मतलब सिद्ध करनेमें लगे हैं, वे अपना कल्याण नहीं कर सकते।

***　　***　　***

श्रोता—भगवान् कहते हैं कि मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन नष्ट कर देता हूँ, तो फिर भगवान्‌की कृपा, करुणा क्या काम आयी? अतः इसका तात्पर्य आप बतायें।

स्वामीजी—जो लोग वैद्यके पास जाते हैं, उन सबको वैद्य जुलाब नहीं देता। जिसके पेटमें खराबी होती है, उसीको जुलाब देता है। जुलाब देनेसे रोगी कमजोर पड़ जाता है, फिर दवाई देनेसे वह ठीक हो जाता है। इसी तरह जिसका धन खराब है, उसीका धन भगवान् नष्ट करते हैं। वे सबका धन नष्ट नहीं करते, नहीं तो अम्बरीष-जैसे राजा भगवान्‌के भक्त कैसे होते?

श्रोता—आप अपनी फोटो क्यों नहीं खिचवाते? हमलोग फिर आपको याद कैसे करेंगे?

स्वामीजी—हमें नहीं, भगवान्‌को याद करो। फोटो खिंचवाना इसलिये बन्द किया कि लोग हमें याद करेंगे। हमें याद करनेसे फायदा नहीं है। फायदा भगवान्‌को याद करनेसे है। जो अपनी फोटो खिंचवाता है, वह भगवद्द्रोही है। भगवान्‌के चिन्तनमें बाधा लगा देना ठीक है क्या?

श्रोता—स्त्री विधवा हो जाय तो उसका पुनः विवाह करना उचित है या नहीं?

स्वामीजी—नहीं करना चाहिये। शास्त्रकी आज्ञा नहीं है। विचार करें कि विवाह संज्ञा कब होती है, विवाह किसको कहते हैं? जिसमें कन्यादान होता है। पिताने कन्यादान कर दिया और लेनेवाला मर गया, अब कन्यादान कौन करेगा? और कन्यादानके बिना विवाह कैसे होगा? उसकी विवाह संज्ञा होती ही नहीं! वह विवाह नहीं, व्यभिचार है। पहले 'वेन' नामका एक अधर्मी, दुष्ट राजा हुआ था, उसने विधवा-विवाह शुरू किया। उसकी बातको ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंने स्वीकार नहीं किया। शूद्रोंमें किसी-किसीने स्वीकार किया। अभी कलियुग है, इसलिये अधर्मका खूब प्रचार

हो रहा है। लोगोंकी बुद्धि उल्टी हो रही है। वे वही काम करेंगे, जो शास्त्रविरुद्ध हो—

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥

(मानस, उत्तर० ९८। १)

मनुष्यके कल्याणके लिये हिन्दू संस्कृतिमें ऋषि-मुनियोंने जितना उद्योग किया है, उतना किसीने नहीं किया है।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की पूजा और नामजप करते समय मन स्थिर नहीं रहता, इसके लिये क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—नामजप करना मत छोड़ो। किसी भी तरहसे भगवान्‌का नाम आ जाय, बढ़िया है। मन लग जाय तो बहुत ही बढ़िया है। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखो। उनकी कृपासे मन लगेगा। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

सबसे उत्तम चीज है—भगवान्‌में प्रेम। इस प्रेमको पानेका तरीका एक ही है, और वह है—भगवान्‌में अपनापन। **बड़े-बड़े अनुष्ठानसे, त्यागसे, तपस्यासे प्रेम प्राप्त नहीं होता। प्रेम केवल भगवान्‌में अपनापन होनेसे ही प्राप्त होता है कि 'भगवान् मेरे हैं'।** अपनी चीज सबको अच्छी लगती है। जैसे बालकको अपनी माँ अच्छी लगती है, ऐसे ही भगवान् हमें अच्छे लगने चाहिये। भगवान्‌से हमारा कभी वियोग नहीं होता। यह बात याद रखो कि जिसका संयोग और वियोग होता है, वह चीज हमारी नहीं होती। यह पक्की, अकाट्य, सिद्धान्तकी बात है।

भगवान्‌को हर समय याद करो। भगवान्‌को याद रखनेके समान कोई कीमती बात नहीं है। रात-दिन, सुबह-शाम हर समय भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भागवत ८। १०। ५५)। केवल याद करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

*** *** ***

अवगुणोंको छोड़नेसे लाभ होता है, गुणोंको धारण करनेसे लाभ होता है, और तात्त्विक बातोंको समझनेसे लाभ होता है। अपनी कमीका पता लगे तो उसका त्याग करना है, कोई अच्छी बात मिले तो उसको ग्रहण करना है, कोई तात्त्विक बात मिले तो उसको ठीक तरहसे समझना है—ऐसी लगन लोगोंमें कम दीखती है। जैसे खेतको पहले साफ करते हैं, फिर उसमें बीज डालते हैं तो खेती बढ़िया होती है, ऐसे ही दुर्गुण-दुराचारका त्याग और सद्‌गुण-सदाचारका ग्रहण करके अन्तःकरण शुद्ध किया जाय, फिर तात्त्विक बातोंको समझा जाय तो बहुत जल्दी उन्नति होती है।

जल्दी और सुगमतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय—ऐसी मेरी एक धुन है। मेरेको ऐसी बातें मिली हैं, जिनसे मनुष्य बहुत जल्दी उन्नति कर सकता है। परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं है, खराब आदतको छोड़नेमें कठिनता होती है।

दो बातें होनेसे गीताके अनुसार जीवन बनता है—अपने स्वार्थका त्याग और दूसरोंका हित। आज हमलोग नाशवान् चीजोंके स्वार्थमें फँसे हुए हैं। हमें रुपये, मान, बड़ाई, आदर, सत्कार मिल जाय, लोग हमें अच्छा मानें—यह भाव जिनके भीतर भरा रहता है, वे गीताके मर्मको नहीं समझ सकते।

सबसे पहली बात यह है कि हम परमात्माके अंश हैं, इसलिये हमें परमात्मा अच्छे लगने चाहिये। शरीर आदि जड़ वस्तुएँ संसारकी हैं। इसलिये संसारकी वस्तुओंको संसारकी ही सेवामें लगाना है। इस बातसे कामना त्याग बहुत सुगमतासे हो जायगा। कारण कि हम अपनी चीज संसारमें लगायें तो कामना करें; परन्तु संसारकी ही चीज संसारमें लगायें तो कामना किस बातकी? ऐसे ही परमात्माकी चीज परमात्मामें लगा दी तो कामना किस बातकी?

मूलमें हम परमात्माके अंश हैं और हमारा सम्बन्ध परमात्माके साथ है—ऐसा समझनेसे सब बातें सुगम हो जायँगी।

***　　　***　　　***

स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनों ही शरीर हमारे नहीं हैं। संसारकी रत्तीभर भी कोई चीज हमारी नहीं है। केवल परमात्मा ही हमारे हैं। परमात्माके समान हमारा कोई हुआ नहीं, कोई है नहीं, कोई होगा नहीं, होना सम्भव ही नहीं। **आपको जँचे या न जँचे, पर बात यही सच्ची है। आपको न जँचे तो भी मेरे कहनेसे मान लो कि भगवान् हमारे हैं।** जो मिलता है और छूट जाता है, वह हमारा नहीं है—यह पहचान है। सच्ची बात रहेगी, नकली सब छूट जायगी।

भगवान् जैसे सन्त-महात्माके हैं, वैसे ही हमारे हैं। उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता। जैसे एक माँके कई बालक हों तो प्रत्येक बालकके लिये माँ पूरी-की-पूरी है। माँके हिस्से नहीं होते। ऐसे ही हरेक भाई-बहनके लिये भगवान् पूरे-के-पूरे हैं। माँमें पक्षपात रह सकता है, पर भगवान्में पक्षपात है ही नहीं। माँमें अनजानपना रहता है, पर भगवान्में अनजानपना है ही नहीं, वे सब समझते हैं। माँ भूल जाती है, पर भगवान् नहीं भूलते। माँ हर समय साथ नहीं रहती, पर भगवान् हर समय हमारे साथ रहते हैं। माँ सब जगह नहीं रहती, पर भगवान् सब जगह रहते हैं। हम कहीं भी चले जायँ, नरकोंमें भी चले जायँ तो भी भगवान् हमारे साथ रहते हैं।

जिस समय आप भगवान्को याद करते हैं, उस समय आपका सम्बन्ध भगवान्के साथ होता है, आपकी स्थिति भगवान्में होती है।

जैसे मीराबाईने कहा कि ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई',*** ऐसे आप सब-के-सब कह सकते हैं। ऐसा कहनेका सबको अधिकार है। पापी-से-पापी भी भगवान्को अपना कह सकता है। **जो भगवान्को अपना मान लेता है, वह संसारसे ऊँचा उठ जाता है, सन्त-महात्मा हो जाता है। उसको शान्ति मिल जाती है, आनन्द मिल जाता है।** उसको किसी चीजकी परवाह नहीं रहती। इसलिये भगवान्को अपना मानकर मस्त हो जाओ। **'मैं भगवान्का हूँ'—इस बातको भूलो मत तो भगवान् जरूर मिलेंगे। अपने-आप सत्संग मिलेगा, सन्त-महात्मा मिलेंगे।**

***　　　***　　　***

भगवान्ने मनुष्यको अपना कल्याण करनेकी स्वतन्त्रता दी है। अगर भगवान् मनुष्यको परतन्त्र कर दें तो फिर उसका कल्याण कैसे होगा? कल्याणका मौका कहाँ मिलेगा? शास्त्र, सत्संग, गुरु, सन्त-महात्मा आदि किस काम आयेंगे? सब व्यर्थ हो जायँगे! जैसे किसीको बन्दूक दी जाती है तो अपनी रक्षाके लिये दी जाती है, दूसरेको मारनेके लिये नहीं। अगर वह उस बन्दूकसे किसीको मारता है तो उसको दण्ड होता है। इसी तरह भगवान्ने मनुष्यको अपना कल्याण करनेके लिये स्वतन्त्रता दी है, पाप करनेके लिये नहीं।

श्रोता—मेरी एक बच्ची है, और मेरे पति कुछ कमाते नहीं हैं! मैं बड़ी दु:खी हूँ और तलाक

देनेकी सोच रही हूँ। मुझे क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—तलाक देनेसे क्या कमाई हो जायगी? बच्चीका विवाह हो जायगा? भाई लोगोंको सोचना चाहिये और निकम्मे न रहकर काम करना चाहिये। हम साधु लोगोंको सब चीजें मुफ्तमें मिलती हैं। भोजन, कपड़ा, मकान, यात्राके लिये टिकट आदि सब मुफ्तमें मिलते हैं। अगर हम कुछ भी न करें तो भी हमें रोटी मिलेगी, फिर भी हमारा इतना काम रहता है कि समय नहीं मिलता! आप लोगोंको रविवारके दिन छुट्टी मिलती है, पर हमें किस दिन छुट्टी मिलती है? बारह महीनोंमें हमें कभी छुट्टी मिलती ही नहीं! आप तो गृहस्थ हो, आपको तो कभी निकम्मा रहना ही नहीं चाहिये। **निकम्मा, आलसी आदमी पापीसे भी नीचा होता है।** वह मनुष्य कहलानेलायक नहीं है। हम कह सकते हैं, समझा सकते हैं, और हम क्या कर सकते हैं?

जो अपने स्त्री-बच्चोंका पालन नहीं कर सकता, उसको विवाह कभी नहीं करना चाहिये। जो विवाह करके मेरे पास आते हैं, उनको मैं कहा करता हूँ कि तुम गरम रोटी खाया करो। जो बापकी कमाई खाते हैं, वे ठण्डी रोटी खाते हैं, और जो खुद कमाकर खाते हैं, वे गरम रोटी खाते हैं। किसी रामायणमें यह बात नहीं आती कि रामजीने भरतको समाचार दिया हो कि सीताको रावण ले गया है, सहायता करो। रामजीने अपने पुरुषार्थसे सुग्रीवको राज्य दिलाया, स्त्री दिलायी, तब उससे सहायता ली। इसलिये अपनी भुजाओंके बलपर विवाह करना चाहिये। यदि अपनी स्त्री और बच्चोंका पालन करनेकी शक्ति नहीं है तो विवाह करनेका कोई अधिकार नहीं है। दूसरा मेरी सहायता करे, यह आशा बिल्कुल मत रखें—**'आशा हि परमं दुःखम्'** (श्रीमद्भागवत ११। ८। ४४)।

सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरोंके हितके लिये कर्म करना चाहिये। दुनियाका एक भी आदमी उद्धारके बिना रह जाय, तबतक काम करना किसीका छूटता नहीं, चाहे वह महात्मा ही क्यों न हो! **जबतक एक भी प्राणी बन्धनमें है, तबतक मनुष्यका, सन्तोंका कर्तव्य समाप्त नहीं होता।**

जो लाभ देखकर काम करता है, वह पारमार्थिक उन्नति कर सकता ही नहीं। शास्त्रकी आज्ञाको देखना चाहिये, लाभ-हानिको नहीं।

*** *** ***

सन्तोंकी वाणीमें मेरेको ऐसी विशेष बातें मिली हैं, जो अभीतक शास्त्रोंमें भी नहीं आयी हैं! उनमेंसे एक बात है कि **परमात्माकी प्राप्ति जड़ताकी सहायतासे नहीं होती। यह बहुत ही मार्मिक बात है, मामूली बात नहीं है!** परन्तु इस बातको हरेक आदमी समझेगा नहीं, विचार करनेवाला ही समझेगा। जड़के द्वारा चिन्मयताकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु जड़के त्यागसे चिन्मयताकी प्राप्ति जरूर होती है। शास्त्रमें प्रायः जड़ताकी सहायताकी ही बात आती है। लोग जैसे जड़ चीजोंकी प्राप्ति करते हैं, ऐसे ही उपायसे परमात्माकी प्राप्ति करना चाहते हैं। परन्तु ऐसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। जड़ चीज है—पदार्थ और क्रिया। शरीरादि सम्पूर्ण वस्तुएँ 'पदार्थ' हैं और कहना, सुनना, समझना, विचार करना आदि सब 'क्रिया' है। ये पदार्थ और क्रिया परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक तो हैं, पर ये प्राप्ति नहीं करा सकते। इनसे ऊँचा उठनेपर ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। मैंने उद्योग करके देखा है। इस विषयमें मेरा अनुभव भी है। मैंने इस विषयको *'साधन और साध्य'* पुस्तकमें विस्तारसे लिखा है, आप पढ़कर देखो।

*** *** ***

सबसे विलक्षण चीज है—भगवान्‌के साथ सम्बन्ध। सम्बन्ध जोड़नेसे बहुत जल्दी उन्नति होती है। भगवन्नामका जप, ध्यान, कीर्तन आदि निरन्तर नहीं होते, बीचमें अन्तर पड़ता है; परन्तु भगवान्‌के सम्बन्धमें अन्तर नहीं पड़ता। जैसे नींद लेनेसे विवाहका सम्बन्ध मिट नहीं जाता, ऐसे ही नींद लेनेसे अथवा भूल जानेसे भगवान्‌का सम्बन्ध मिट नहीं जाता। यह नित्य-निरन्तर अटल रहता है। जप आदि करनेमें थकावट भी होती है, पर सम्बन्धमें थकावट होती ही नहीं। यह सम्बन्ध तत्काल होता है और सदाके लिये होता है, जैसे विवाह। आप तोड़ो, तभी टूटता है। आप भगवान्‌को अपना मान लो तो इस सम्बन्धको भगवान् भी तोड़ नहीं सकते। सूरदासजीने कहा है—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥
हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥

आपके पास दो कीमती चीजें हैं—समय और सम्बन्ध। **समयको भगवान्‌में लगाओ और सम्बन्ध भगवान्‌से जोड़ो।** हम भगवान्‌के अंश हैं, इसलिये भगवान्‌के साथ हमारा स्वाभाविक ही नित्य-सम्बन्ध है। आपने सम्बन्ध तोड़ा है, भगवान्‌ने नहीं। आप जब सम्बन्ध जोड़ोगे, तब जुड़ जायगा। सम्बन्ध जोड़नेमें आप स्वतन्त्र हैं।

जिस तरह कोई साधु हो जाता है, उसी तरह आप भगवान्‌के हो जाओ। कोई असली साधु हो जाता है तो दस-पन्द्रह वर्ष बीतनेपर भी घरवालोंका कोई पत्र, समाचार नहीं आये तो उसके मनमें विचार नहीं होता कि घरवाले ठीक हैं कि बेठीक हैं, मर गये कि जीवित हैं, धनी हैं कि निर्धन हैं, सुखी हैं कि दुःखी हैं? इतना ही नहीं, घरवाले सब-के-सब एक साथ मर जायँ तो भी उसको चिन्ता-शोक नहीं होते। अगर चिन्ता-शोक होते हैं तो वह असली साधु नहीं हुआ। **जो घरवालोंमें मोह रखते हैं, वे असली साधु नहीं हुए।** कोई साधु होता है तो मानो नया जन्म हो गया। जैसे आप लोगोंमें जिसका जन्म पहले हुआ हो, वह बड़ा माना जाता है, ऐसे ही हमारे साधुओंमें बड़ा उसको माना जाता है, जो पहले साधु हुआ हो। साधु होनेपर उसका नाम, गोत्र सब बदल जाता है। जो उसको पुराने नामसे कहते हैं, वे उसका तिरस्कार, अपमान करते हैं।

आपने भगवान्‌के होते हुए भी अपनेको भगवान्‌का नहीं माना और संसारके नहीं होते हुए भी अपनेको संसारका मान लिया, यह बहुत बड़ी भूल है। आप संसारका काम करो, पर भगवान्‌के होकर करो। आप किसी बैंक, रेलवे, फैक्टरी आदिमें काम करते हैं तो उसीके कर्मचारी कहलानेपर भी क्या आप पिताके नहीं होते? क्या आप पिताको छोड़कर कर्मचारी होते हो? इसी तरह आप संसारका कोई भी काम करो, अपनेको भगवान्‌का मानते हुए ही करो। आप कैसे ही हों, हो भगवान्‌के ही। **भगवान् हमारे परमपिता हैं—यह आप अभी-अभी स्वीकार कर लो।** हम साक्षात् भगवान्‌के बेटा-बेटी हैं। यह कोई नयी बात नहीं है। आप सदासे ही भगवान्‌के हो—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान् भी कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७), ***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** (मानस, उत्तर० ८६। २)। भगवान्‌को आप चाहे जैसे मान लो, वे वैसे ही हैं, पर आपके भीतर सन्देह नहीं रहना चाहिये।

अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो अपना सम्बन्ध भगवान्‌से मानो और अपना समय भगवान्‌को दो। समय देनेका तात्पर्य है—हरेक काम भगवान्‌के लिये करो।

कोई पूछे कि आप कौन हो, तो आपके भीतर सबसे पहले यह बात आनी चाहिये कि मैं भगवान्‌का हूँ। मैं भगवान्‌का हूँ—यह घरके भीतर गड़ा हुआ धन है, जिसको न जाननेके कारण आप गरीब होकर दुःख पा रहे हैं!

*** *** ***

मनुष्यके दो खास काम हैं—भगवान्‌को याद करना और अपनी शक्तिके अनुसार दीन-दुखियोंकी, गरीबोंकी, अरक्षितोंकी, अपाहिजोंकी, अभावग्रस्तोंकी, माता-पिता आदि पूज्यजनोंकी सेवा करना, उनको सुख पहुँचाना। जितना आप सुखपूर्वक कर सकते हो, उतनी ही आपपर जिम्मेवारी है।

कोई काम करो, कहीं जाओ, भगवान्‌को अवश्य याद कर लो। भगवान्‌को याद करनेमात्रसे मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है—**'यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते........॥'** (महाभारत, अनुशासन० १४९)। भगवान्‌को याद करनेसे उनकी कृपासे सब काम सिद्ध होते हैं। लक्ष्मणजी रामजीको नमस्कार किये बिना मेघनादको मारने गये तो मूर्च्छित हो गये (मानस, लंका० ५२), और रामजीको नमस्कार करके गये तो मेघनादको मार दिया—***'रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत'*** (मानस, लंका० ७५)। **भगवान्‌को याद रखनेसे विजय और भूल जानेसे पराजय होती है। इसलिये हरेक काम भगवान्‌को याद करके करो।**

संसारके काममें विजय दीखती है, विजय होती नहीं, पर भगवान्‌के भजनमें सदा विजय ही होती है, पराजय होती ही नहीं। **जैसे वृक्षके मूलमें पानी देनेसे पूरे वृक्षको पुष्टि मिलती है और अन्न-जल देनेसे पूरे शरीरको शक्ति मिलती है, ऐसे ही भगवान्‌को याद करनेसे दुनियामात्रको ताकत मिलती है। यह गुप्त बात है, हर कोई बताता नहीं!** भगवान्‌को याद करना सब बातोंका सार है। भगवान्‌को याद करनेसे दुःख नहीं रहता और भगवान्‌के विमुख होनेसे सुख नहीं रहता—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(मानस, सुन्दर० ३२। २)

जैसे धनी आदमीके पास धनका बल रहता है, ऐसे ही सब भाई-बहनोंके पास इस बातका बल रहना चाहिये कि 'हम भगवान्‌के हैं'।

*** *** ***

आप चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोना-जगना, खाना-पीना आदि जो भी काम करें, भगवान्‌के लिये ही करें तो आपको सुगमतापूर्वक भगवत्प्राप्ति हो जायगी। गीतामें भगवान्‌ने साफ कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे। इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे कर्मबन्धनसे और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे तू मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने-सहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे सर्वथा मुक्त हुआ तू मुझे

ही प्राप्त हो जायगा।'

पैदल चलें तो एक-एक कदम भगवान्‌के अर्पण करें। यहाँ आयें तो भगवान्‌का काम, जायँ तो भगवान्‌का काम, बैठें तो भगवान्‌का काम, सुनें तो भगवान्‌का काम, सुनायें तो भगवान्‌का काम। हरेक काम प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के लिये करें तो सब-का-सब भजन हो जायगा। केवल भाव बदलना है। यह संसारमें रहते हुए ही परमात्माको प्राप्त करनेकी युक्ति है। संसारका त्याग करके एकान्तमें रहकर भजन करनेवाले सन्त जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, उसी तत्त्वको आप गृहस्थमें रहते हुए ही प्राप्त कर सकते हैं। **भगवान्‌का काम करनेवाले संसारमें रहते हुए भी संसारमें नहीं रहते, किन्तु भगवान्‌में रहते हैं।**

जैसे 'क्रिया' अपनी नहीं है, ऐसे ही 'पदार्थ' भी अपने नहीं हैं। हम संसारमें आये थे तो साथमें कुछ लाये नहीं थे, और जायँगे तो शरीर भी साथ नहीं जायगा। हमारे पास जो कुछ है, सब भगवान्‌का दिया हुआ है। अतः क्रिया और पदार्थ—दोनोंको ही भगवान्‌के अर्पण कर दो। एकनाथजी महाराजने भागवतके एकादश स्कन्धकी जो टीका लिखी है, उसमें वर्णन आया है कि घरमें झाड़ूसे फूस-कचरा इकट्ठा करके बाहर फेंके तो वह भी भगवान्‌के अर्पण कर दे। वह भी भजन हो जायगा!

***   ***   ***

सभी भाई-बहन आजसे अपने-आपको बदल दें कि हम संसारी नहीं हैं, हम भगवान्‌के हैं। वास्तवमें हम पहलेसे ही भगवान्‌के थे, पर हमारा उधर ध्यान नहीं था। अब उधर हमारा ध्यान चला गया। अर्जुनने भी गीताके अन्तमें भगवान्‌से यही कहा कि आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और स्मृति प्राप्त हो गयी अर्थात् भूल मिट गयी और याद आ गयी कि मैं भगवान्‌का हूँ—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'** (गीता १८। ७३)। वह कृपा हम सबपर है। **कलियुगमें भगवान्‌की विशेष कृपा होती है। अन्य युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें भगवान् जल्दी मिलते हैं। अन्य युगोंमें वर्षोंतक भजन-ध्यान करनेपर जो प्राप्ति होती है, वह कलियुगमें दिनोंमें हो जाती है!** कारण कि इस समय भगवान्‌को कोई पूछता नहीं! जिसको कोई नहीं पूछता, वह वस्तु सस्ती हो जाती है। जिस वस्तुके ग्राहक ज्यादा होते हैं, वह वस्तु मँहगी होती है। आज भगवान् निकम्मे बैठे हैं; क्योंकि लोग राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदिमें लगे हुए हैं!

हम भगवान्‌के हैं और संसारमें आकर भगवान्‌का ही काम करते हैं—ऐसा मान लें। आप शौच-स्नान, सन्ध्या-वन्दन आदि सब काम भगवान्‌का ही करते हैं। आप स्नान करते हैं तो भगवान्‌का काम, कपड़े धोते हैं तो भगवान्‌का काम, माताएँ-बहनें रसोई बनाती हैं तो भगवान्‌का काम, भोजन करते हैं तो भगवान्‌का काम, कुल्ला करते हैं तो भगवान्‌का काम, जल पीते हैं तो भगवान्‌का काम, व्यापार करते हैं तो भगवान्‌का काम, खेती करते हैं तो भगवान्‌का काम। जो कुछ करते हैं, भगवान्‌का ही काम करते हैं। ऐसा करनेसे आपका जीवन महान् पवित्र हो जायगा! आप सन्त हो जायँगे! आपके हाथका अन्न-जल पवित्र हो जायगा!

***   ***   ***

'परमात्मा है'—इतना याद रहना बहुत लाभकी बात है! यह बहुत सुगम तथा श्रेष्ठ ध्यान है। संसारमें जो 'है'-पना दीखता है, वह परमात्माका ही है, संसारका नहीं। संसार तो एक क्षण भी नहीं टिकता। इसमें खुदमें 'है'-पना है ही नहीं। परमात्माका 'है'-पना ही संसारमें दीखता है। 'है'-रूपसे सब जगह परमात्मा ही है। **अगर परमात्मा न हो तो संसार दीखे ही नहीं।** जैसे आकाशमें बादल छा जाते हैं, बिजली चमकती है, वर्षा होती है, पर आकाश ज्यों-का-त्यों अटल, निर्विकार

रहता है। उस 'है'-रूप परमात्माका अंश ही यह जीवात्मा है। इसीलिये कहा जाता है कि मुक्ति होती नहीं, मुक्ति है। बन्धन (भूल)-के मिटनेको मुक्ति होना कहते हैं। वास्तवमें बन्धन अनित्य है। एक बार बन्धन मिटनेके बाद पुनः बन्धन नहीं होता—**'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव'** (गीता ४। ३५)

परमात्मा स्वतः-स्वाभाविक है। उसका अनुभव करनेके लिये पहले दृढ़तासे मान लें कि 'परमात्मा है'। पीछे माना हुआ अनुभवमें आ जायगा। **संसारकी सत्ताको लेकर ही दुःख है। संसारकी सत्ता हटते ही दुःख हट जायगा, आनन्द रह जायगा।** इसका पता कैसे लगे? जो सत्संग नहीं करते, उनका धन आदि नष्ट हो जाय तो वे बड़े दुःखी हो जाते हैं। परन्तु सत्संग करनेवालोंमें दुःख, चिन्ता, भय आदि कम होते हैं। जितने-जितने कम होते हैं, उतना-उतना उनको चेत, होश हुआ है। सुख स्वतः है, दुःख बनावटी है।

***　　　***　　　***

आपके द्वारा किसीका अहित नहीं होना चाहिये। **दूसरेके अहितकी बात सोचना पारमार्थिक मार्गमें बड़ी भारी बाधा है। यह दूसरेका नुकसान नहीं है, प्रत्युत अपना नुकसान है।** दूसरेका नुकसान तो उतना ही होगा, जितना उसके प्रारब्धमें है, पर अपना नुकसान नया होगा। दूसरेके नुकसानमें उसके पाप नष्ट होंगे, जिससे उसका हित होगा; परन्तु हमारा नया कर्म (पाप) बनेगा, जिससे हमारा अहित होगा। इसलिये **वास्तवमें अहित उसीका होता है, जो दूसरेका अहित करता है।**

अगर आप अपना जीवन शुद्ध, निर्मल बनाना चाहते हैं तो किसीका भी बुरा न करें। **बुराई न करना भलाईका बीज है। बुराई छोड़नेमात्रसे आप भले हो जाओगे।** एक गहरी बात है कि 'करने' में तो परिश्रम होता है, पर 'न करने' में परिश्रम नहीं होता। भला करनेमें तो परिश्रम है, पर किसीका बुरा न करनेमें कोई परिश्रम नहीं है। 'करने' की अपेक्षा 'न करना' सुगम होता है। 'न करने' में न तो परिश्रम होता है, न पैसे खर्च होते हैं। किसीका बुरा करना, किसीका बुरा चाहना और किसीको बुरा समझना—ये तीन बातें आप बिल्कुल न करें। केवल यह सावधानी रखनी है कि हमारेसे किसीका अहित न हो जाय। **किसीका भी बिगाड़ होता है, वह अपना ही होता है।** किसीका बुरा नहीं करेंगे, किसीका बुरा नहीं चाहेंगे और किसीको बुरा नहीं समझेंगे—इन तीन बातोंका आप नियम ले लो तो आपका 'कर्मयोग' सिद्ध हो जायगा। आपका सत्संग करना सफल हो जायगा। आप सत्संग करते हो। सत्संग करनेवालेसे सब लोग अच्छाईकी आशा रखते हैं।

किसीको बुरा समझना भी उसका अहित करना है। दूसरेको बुरा माननेमात्रसे आपका अन्तःकरण मैला होता है। जो हमारा बुरा करे, उसका भी बुरा नहीं करना है। **यह मार्मिक बात है कि किसीने हमारा बुरा किया है, वह हमारा बुरा नहीं हुआ है, प्रत्युत उससे हमारे पाप कटे हैं, हम शुद्ध हुए हैं। इसलिये हमारा बुरा कोई कर नहीं सकता।**

जो किसीका बुरा करना चाहता है, वह अपना ही बुरा करता है। किसीका बुरा चाहनेसे उसका बुरा हो जाय, यह निश्चित नहीं है, पर आपका बुरा हो जायगा, आपका अन्तःकरण अशुद्ध हो जायगा, यह निश्चित है। अगर दुष्ट लोगोंकी चाहना पूरी हो जाती, उनका वश चलता तो वे संसारमें किसीको सुखी नहीं रहने देते। परन्तु उनका वश उसीपर चलता है, जिसका प्रारब्ध खराब आया हो।

दूसरेको शाप देनेसे उसको शाप लगे चाहे न लगे, पर आपका अन्तःकरण जरूर मैला हो जायगा,

इसमें सन्देह नहीं है। द्वारका जाते समय बीचमें भगवान् श्रीकृष्णको उत्तंक मुनि मिले। उत्तंक मुनिने कहा कि 'महाराज, आपने कौरवों-पाण्डवोंका युद्ध नहीं होने दिया, यह आपने बहुत ठीक काम किया!' भगवान्ने कहा कि 'युद्ध तो हो गया और कौरव मारे गये!' यह सुनकर उत्तंकने कहा कि 'आपके रहते युद्ध हो गया! यह आपने ठीक नहीं किया। मैं आपको शाप दूँगा!' भगवान्ने कहा कि 'इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है; अतः शाप देनेसे मेरेको तो शाप लगेगा नहीं, पर आपका पुण्य नष्ट हो जायगा' (महाभारत, आश्व० ५४)।

सन्तलोग अपना अन्तःकरण शुद्ध रखनेके लिये बड़े तत्पर रहते हैं। एक साधु थे। उनकी मान-बड़ाई ज्यादा होने लगी तो उनसे द्वेष रखनेवाले कुछ लोग लाठी लेकर उनको मारने आये। साधुने तुरन्त एक चादर ओढ़ ली और आँखें मीच लीं। साधुको कई चोटें आयीं। लोगोंने साधुसे पूछा कि आपने चादर क्यों ओढ़ी? क्या चादर ओढ़नेसे लाठीकी मार नहीं पड़ती? वे साधु बोले कि अगर मैं उनको देख लेता और पहचान लेता तो उनके प्रति मेरे मनमें बुरा भाव आ जाता कि ये मेरा बुरा करनेवाले हैं! मैं उनको देख न सकूँ, इसलिये मैंने चादर ओढ़ ली।

*** *** ***

सत्संग अलग चीज है और व्याख्यान, कथा अलग चीज है। **सत्‌के साथ सम्बन्ध हो जाय—इसको 'सत्संग' कहते हैं।** संसारमें जितना दुःख है, वह असत्‌के संगका फल है। असली सत्संग हो जाय अर्थात् सत्‌के साथ प्रेम हो जाय तो फिर दुःख नहीं होगा, विकार नहीं होगा, जन्म-मरण नहीं होगा, प्रत्युत स्वतः आनन्द रहेगा। कारण कि सत्‌में विकृति नहीं होती; सत्‌का अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६) और अभाव हुए बिना दुःख नहीं होता। अतः सत्‌का संग होनेसे दुःख सदाके लिये मिट जाता है। उस सत्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ जानेका नाम ही 'सत्संग' है। सत्‌के साथ सम्बन्ध तभी जुड़ता है, जब असत्‌का त्याग कर देते हैं। त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** (गीता १२। १२)।

एक मार्मिक बात है कि सांसारिक पदार्थोंकी चाहना करनेपर तो वे आते नहीं, पर चाहना छोड़ दें तो वे गरज करेंगे। सन्त-महात्मा कुछ नहीं चाहते तो सब उनको भोजन, वस्त्र आदि देना चाहते हैं। उनकी सेवामें रुपया लग जाय तो मानते हैं कि हमारा रुपया सफल हो गया! जिसके भीतर चाहना है, उसके पास लाखों-करोड़ों-अरबों रुपये हों तो भी वह दरिद्र है—**'को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः'** (प्रश्नोत्तरी ५)।

जो सर्वोपरि परमात्मा हैं, वे हमारे हैं, फिर अन्यकी जरूरत ही क्या है? दुःख इस बातका है कि भगवान्‌को अपना न मानकर संसारको अपना मानते हैं! जो संसारको अपना मानता है, वह दुःख पायेगा ही; क्योंकि संसार रहता नहीं। भगवान्‌के भक्तके पास कोई अभाव आता ही नहीं। **चाहना होनेपर वस्तु बड़ी तंगीसे, कठिनतासे मिलती है। चाहना न हो तो वस्तु खुली मिलती है।** मनमें लेनेकी इच्छा होती है तो ताला लग जाता है। चोरोंके लिये ताला लगता है, सन्तोंके लिये नहीं। सन्तोंके लिये सभी चीजें खुली रहती हैं। योगदर्शनमें आया है—

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

(योगदर्शन, साधन० ३७)

'अस्तेय (चोरीके अभाव)-की दृढ़ स्थिति होनेपर योगीके सामने सब प्रकारके रत्न प्रकट हो जाते हैं।'

जो पासमें कुछ रखता है, उसको वस्तुएँ तंगीसे मिलती हैं। जो साधु पासमें कुछ नहीं रखता, उसके लिये खजाना खुल जाता है! वस्तुएँ उसके पास अपने-आप आती हैं।

जब मनुष्य भगवान्‌को अपना मान लेता है, तब उसकी दरिद्रता मिट जाती है। **आप भगवान्‌को अपना मान लोगे तो दरिद्रता आपके पड़ोसमें भी नहीं रहेगी!** परन्तु संसारको अपना मानोगे तो दरिद्रता कभी मिटेगी नहीं। आप धनी आदमीको बड़ा सुखी समझते हैं, पर वास्तवमें वह बड़ा दु:खी है! उसपर दया आनी चाहिये! धनी आदमी साधुसे, ब्राह्मणसे भी डरते हैं कि ये कुछ माँग न लें! वे राजकीय आदमियोंसे भी डरते हैं, चोर-डाकुओंसे भी डरते हैं, यहाँतक कि बेटे-पोतोंसे भी डरते हैं कि ये धन नष्ट कर देंगे! अब उनको सुख, शान्ति कैसे मिलेगी?

अगर आपका भगवान्‌में प्रेम होगा तो गृहस्थमें भी मौजसे रहोगे, और संसारमें प्रेम होगा तो रोना पड़ेगा ही, रोये बिना रह सकते नहीं!

*** *** ***

परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है—यह बड़ा उत्तम ध्यान है। जैसे आकाश (पोलाहट) सब जगह परिपूर्ण है, ऐसे ही परमात्मा सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण है—इस बातको सब समयमें याद रखें। यह बढ़िया ध्यान है, जो हर समय, सब काम करते हुए भी हो सकता है। जैसे समुद्रमें डुबकी लगायें तो सब तरफ जल परिपूर्ण है, ऐसे ही पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, ऊपर और नीचे—इन दसों दिशाओंमें परमात्मा समान रीतिसे परिपूर्ण है।

कोई भी विद्या न सीखनेपर बुद्धि जैसे खाली रहती है, ऐसे ही सब विद्याएँ सीखनेपर भी बुद्धि खाली रहती है। बुद्धिकी जगह कभी रुकती नहीं; ऐसा नहीं होता कि अब बुद्धिमें और जाननेकी जगह नहीं रही। इसी प्रकार परमात्माके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्ड होनेपर भी परमात्मामें जगह रुकती नहीं। तीखी-से-तीखी सुईकी नोक टिके, इतनी जगह भी परमात्माके बिना खाली नहीं है। उसी परमात्माके आप अंश हैं। वह परमात्मा हमारा है—इस प्रकार परमात्मासे सम्बन्ध जोड़ लें। परमात्माके सिवाय दूसरी कोई चीज हमारी थी नहीं, है नहीं, होगी नहीं, हो सकती नहीं। **वह परमात्मा सब जगह है—यह बात दिनमें बार-बार याद करनी चाहिये।**

*** *** ***

गंगाजल दिव्य जल है। यह महान् पवित्र है। सब लोगोंको रोजाना सुबह गंगाजलका चरणामृत लेना चाहिये। उसका असर दिनभर रहता है। मेरे विद्यागुरुने कानपुरकी एक बात बतायी कि एक मुसलमानने गलेमें एक छोटी-सी शीशी बाँध रखी थी। उससे पूछा कि इसमें क्या है? तो उसने कहा कि इसमें गंगाजल है। सुनकर आश्चर्य हुआ कि मुसलमानका गंगाजलसे क्या सम्बन्ध! इसको तो हिन्दू मानते हैं। उस मुसलमानसे इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि एक दिनकी बात है, मैंने देखा कि कोई हिन्दू लोटा-धोती लेकर गंगामें स्नानके लिये जा रहा था। वहाँ मुझे दो यमदूत दिखायी दिये। वे यमदूत पहले मेरे दोस्त थे और उनकी बहुत पहले मौत हो चुकी थी। उनको देखकर मैं डर गया तो वे बोले कि हम मरनेके बाद यमराजके दूतोंमें भरती हो गये हैं, तुम हमसे डरो मत। यह जो आदमी लोटा-धोती लेकर जा रहा है, यह अब मरनेवाला है। इसीको लेनेके लिये हम आये हैं। मैंने कहा कि यह तो बिल्कुल ठीक है, यह कैसे मरेगा? उन यमदूतोंने कहा कि तुम खुद देख लेना। गंगाके किनारेकी रेतपर एक साँड़ खेल रहा था, रेत उछाल रहा था। उन दोनों यमदूतोंमेंसे एक यमदूत छोटा-सा बनकर उस साँड़के सींगपर बैठ गया। साँड़ भागते हुए आया और उसने अपने सींगोंसे उस आदमीकी छातीपर वार करके उसको मार दिया। उसके मरनेके

बाद वे यमदूत मेरेसे बोले कि हम तो उसको लेनेको आये थे, पर ले नहीं जा सके! अब यह यमराजके पास नहीं जायगा। कारण यह हुआ कि साँड़के सींगमें गंगाकी रेत लगी थी, जो उसके पेटमें चली गयी। इसलिये यह नरकोंमें नहीं जा सकता। इस घटनाका मेरेपर इतना असर पड़ा कि मैंने एक शीशीमें गंगाजल भरकर गलेमें बाँध लिया कि न जाने कब मौत आ जाय। मरते समय गंगाजल भीतर चला जायगा तो यमराजके पास नहीं जाना पड़ेगा।

***   ***   ***

देवताओंके शरीरमें भोग भोगनेकी विशेष शक्ति होती है। वह शक्ति मनुष्योंमें नहीं है। देवताओंके शरीर दिव्य होते हैं। मनुष्योंके शरीर दिव्य नहीं होते। जैसे मनुष्यको मैलसे भरे सूअरके शरीरसे दुर्गन्ध आती है, ऐसे ही देवताओंको मनुष्यके शरीरसे दुर्गन्ध आती है। परन्तु भगवत्प्राप्तिका अधिकार मनुष्यशरीरमें ही है। अगर मनुष्यशरीर पाकर भी भगवत्प्राप्ति नहीं की तो मनुष्यशरीरका क्या लाभ हुआ? मेरा कल्याण हो जाय—यह इच्छा मनुष्योंमें ही होती है। इसलिये मनुष्योंको विशेषतासे भगवान्‌में लगना चाहिये। मनुष्य भगवान्‌का भजन भी कर सकता है और दूसरोंका उपकार भी कर सकता है।

जो मनुष्य सच्चे हृदयसे भगवान्‌का भजन करता है, उसके द्वारा दुनियाका बड़ा भारी उपकार होता है। वैसा उपकार कोई धन आदिसे नहीं कर सकता। मैंने देखा है कि श्रीरामचरितमानसके पाठमें जितने लोग आते हैं, उतने सत्संगमें नहीं आते। गोस्वामीजी महाराजकी वाणीमें इतना रस है, आनन्द है कि जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, रामायणका अर्थ नहीं समझते, वे भी रामायणके पाठसे मस्त हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी-जैसे सन्तोंके द्वारा आज भी लोगोंका बड़ा उपकार हो रहा है, जो करोड़पति-अरबपति भी नहीं कर सकते! धनीलोग दूसरोंको अन्न, जल, वस्त्र, मकान आदि दे सकते हैं, पर वे कल्याण नहीं कर सकते।

***   ***   ***

विचार करें कि अपना कौन है? आज प्राण चले जायँ तो अपना कौन रहेगा और अपने साथमें क्या रहेगा? बिना स्वार्थके अपना हित करनेवाला कौन है? सिवाय भगवान्‌के कोई अपना नहीं है। हम सब उनके ही अंश हैं। उनके सिवाय आफतमें रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। जैसे माँ कृपा करके बालकका पालन करती है, पर बालकके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं, जिससे माँकी सहायता कर सके। ऐसे ही भगवान् हम सबकी माँ हैं। हमारे पास ऐसी कोई चीज नहीं है, जिससे भगवान्‌की सहायता कर सकें। माँके बिना बालक बेचैन हो जाता है, रोने लग जाता है तो उससे माँ वशमें हो जाती है। ऐसे ही हम भगवान्‌के लिये व्याकुल हो जायँ तो भगवान् वशमें हो जायँगे। सर्वसमर्थ भगवान्‌के रहते हुए हम दुःख पा रहे हैं; क्योंकि उधर हमारी वृत्ति नहीं है।

भगवान्‌को याद करनेमात्रसे वे प्रसन्न हो जाते हैं—‘**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**’। भगवान्‌से एक ही चीज माँगो कि ‘हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं’। यह एक मन्त्र है, जिससे भगवान्‌की स्मृति होगी। स्मृति होनेसे आपमें शान्ति, आनन्द, दया, क्षमा, उदारता आदिका ठिकाना नहीं रहेगा। सम्पूर्ण दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जायगा। केवल उनको हर समय याद रखो। आपका हित करनेवाला संसारमें इतना सस्ता कौन है?

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥

(विनयपत्रिका १६२)

भगवान्‌को याद रखनेमात्रसे सब ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ पासमें आ जाती हैं। भगवान्‌का भजन करनेवाले भक्तमें भगवान्‌की सब शक्ति उतर आती है।

*** *** ***

कलियुग उनके लिये खराब है, जो भगवान्‌का भजन-स्मरण नहीं करते। भगवान्‌का भजन-स्मरण करनेवालोंके लिये तो कलियुग बहुत बढ़िया है! रामायणमें आया है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(मानस, उत्तर० १०३ क)

अगर भाई-बहन अभी तत्परतासे लग जायँ तो भगवान्‌की प्राप्ति बहुत जल्दी हो जाय! भगवान्‌के भजनमें लगनेसे, सत्संग करनेसे हमारी वृत्तियाँ ठीक हो गयीं, हमें इतना लाभ हो गया—ऐसा अनुभव बहुत कम होता है—***'अनुभव भगवद्‌भजन का भाग्यवान् को होय'***। परन्तु आज कलियुगमें ऐसी बात है कि अगर सत्संग सुनानेवाला और सुननेवाला—दोनों ठीक हों तो दोनोंको बड़ा भारी लाभ होता है। सत्संग करनेके लाभका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। कलियुगके समयमें भजन-स्मरणका असर ज्यादा होता है।

*** *** ***

लोग जैसे संसारमें झूठ-कपटसे धन कमाते हैं, ऐसे ही वे समझते हैं कि झूठ-कपटसे कल्याण भी हो जायगा, पर झूठ-कपटसे कल्याण नहीं होता। वे समझते हैं कि किसी तरह झूठ-कपटसे स्वामीजीके पैरोंमें हाथ लगानेसे कल्याण हो जायगा, पर ऐसा करनेसे कल्याण होना दूर रहा, उल्टे बाधा लगेगी, अपराध होगा! जबर्दस्ती पैर छूनेसे, डाका डालनेसे, चोरी करनेसे कल्याण नहीं होता, प्रत्युत दण्ड होता है। **आध्यात्मिक उन्नति सन्तोंकी प्रसन्नतासे होती है, जबर्दस्ती नहीं होती।** जब भैंस भी राजी हुए बिना दूध नहीं देती, फिर सन्त-महात्मा राजी हुए बिना कल्याण कैसे कर देंगे?

पारमार्थिक मार्गमें झूठ-कपटसे काम नहीं होता। यहाँ सत्संग-स्थलमें डण्डे इसलिये लगाये हुए हैं कि आप उसके पार नहीं जायँ। आड़ (डण्डे) पशुओंके लिये लगायी जाती है, मनुष्योंके लिये नहीं। मनुष्योंके लिये इसलिये लगायी जाती है कि मनुष्य मानते नहीं, जबर्दस्ती करते हैं। उनका सब कामोंमें अन्याय करनेका स्वभाव पड़ गया है। इसलिये आप जो भी आचरण करें, ठीक तरहसे, विधि-विधानसे, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार करें। मनमाना आचरण करनेसे कल्याण नहीं होगा। परन्तु आजकल उल्टी रीति चल रही है और पशुओंकी तरह रहनेकी शिक्षा दी जा रही है। श्रेष्ठ पुरुषोंको आदर्श न मानकर पशुओंको आदर्श माना जा रहा है! उल्टी बातोंको ठीक माननेकी आदत पड़ गयी है। रामायणमें कलियुगका वर्णन करते समय आरम्भमें ही यह बात आयी है—

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥

(मानस, उत्तर० ९८। १)

पहले क्षत्रिय राज्य करते थे, आज जिसको ज्यादा वोट मिले, वह राज्य करता है, चाहे वह कैसा ही स्वभाववाला क्यों न हो! अयोग्य आदमी ऊँचे पदपर बैठ जाते हैं। शास्त्रमें लिखा है कि जहाँ अपूज्योंका पूजन होता है और पूज्यजनोंका तिरस्कार होता है, वहाँ तीन बातें होंगी—अकाल

पड़ेगा, चोर-डाकुओंका भय होगा और मृत्यु होगी—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रजायन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(स्कन्दपुराण, मा० के० ३। ४८)

आप मर्यादा छोड़ोगे तो प्रकृतिकी मर्यादा भी बिगड़ेगी, जिससे अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, तूफान, बाढ़, भूकम्प आदि प्रकृतिक प्रकोप होंगे।

*** *** ***

श्रोता—महाभारत ग्रन्थको घरमें रखना अथवा पढ़ना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं है। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने घरमें ही महाभारतको पढ़ा है, संक्षिप्त किया है और प्रेसमें छपवाया है। यह मेरे सामनेकी बात है। इससे कोई हानि नहीं होती। अमावस्या, पूर्णिमा आदिके दिन महाभारतको पढ़नेका माहात्म्य बताया गया है। आपको वहम हो तो पहले शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व पढ़ो, फिर शुरूसे महाभारत पढ़ो।*

*** *** ***

जैसे हम प्यासे मर रहे हैं और गंगाजी भी पासमें है, पर हम गंगाजीतक जायँ ही नहीं, उसका जल पीयें ही नहीं तो गंगाजी क्या करे? ऐसे ही अनेक विलक्षण महात्मा हुए हैं, भगवान्‌के अनेक अवतार हुए हैं, पर हमारी मुक्ति नहीं हुई तो इसका कारण यह था कि हमने चेत नहीं किया। इसलिये अपना उद्धार करनेके लिये आपको चेत करनेकी आवश्यकता है। संसारके पदार्थ प्रारब्धसे मिलते हैं, पर परमात्माकी प्राप्ति नया काम है, जिसको आप कर सकते हैं। यह काम अपने-आप होनेवाला नहीं है, प्रत्युत लगनसे होनेवाला है। **लगन नहीं होगी तो अच्छे महात्मा मिलनेपर भी आप लाभ नहीं ले सकोगे।** यदि एक दिन भी आप सावधान होकर भगवान्‌में मन लगाओ तो वह दिन वर्षभरमें आपको अलग दीखेगा!

अभी सत्संग मिला है तो इससे लाभ ले लो। ऐसा मत सोचो कि यह अवसर सदा रहेगा। जैसे सावनमें हरी-हरी घास होती है तो गधा समझता है कि यह सदा रहेगी, पर यह सदा नहीं रहेगी, ऐसे ही सत्संगका यह मौका सदा नहीं रहेगा।

मौका चूक जाय तो फिर नहीं मिलता। इसलिये मौका मिल जाय तो जल्दी लाभ ले लो। लोग रुपयोंसे लाभ समझते हैं, पर **रुपयोंसे लाभ नहीं होता, रुपयोंको सेवामें लगानेसे लाभ होता है।** आपके पास रुपये हैं तो उनके द्वारा सेवा करके लाभ ले लो। दुःखी मिले तो सेवा करके लाभ ले लो। सत्संग मिले तो सत्संग करके लाभ ले लो। नींद आये तो सो जाओ, नींद न आये तो भजन करो। रातमें नींद खुल जाय तो भजन करनेमें लग जाओ, अच्छी पुस्तकें पढ़नेमें लग जाओ। इस तरह हरदम सावधान रहो; 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारो। हरदम भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आप लाभ उठाओ तो आपके द्वारा दूसरोंको भी लाभ होगा। जैसे सिगरेट पीनेवाला कइयोंको सिगरेट पीना सिखा देता है, ऐसे ही भजन करनेवाला कइयोंको

---

* **शालग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद। अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः॥**

(स्कन्दपुराण, वैष्णव० वैशाख० २२। ९६)

'मानद! जिसके घरमें शालग्राम शिला अथवा महाभारतकी पुस्तक हो, उसे कलियुग बाधा नहीं दे सकता।'

भजनमें लगा देता है।

*** *** ***

चरण छूनेसे, चरण-रज लेनेसे मैं राजी नहीं हूँ, पर मेरी बात मानो तो मैं राजी हूँ। आप समझते हैं कि जैसे हम झूठ-कपटसे धन कमाते हैं, ऐसे ही झूठ-कपटसे उद्धार हो जायगा; जबर्दस्तीसे, चोरीसे उद्धार हो जायगा। ऐसे उद्धार नहीं होगा। उद्धार होगा दूसरेके मनकी प्रसन्नतासे।

आजकल गाय और हिन्दू—इन दोनोंके ऊपर बड़ी भारी आफत आयी हुई है! परिवार-नियोजन हिन्दुओंपर बड़ी भारी आफत है! इससे बड़ा भारी नुकसान है! आप मेरी बातपर ध्यान दें, मेरा तात्पर्य हिन्दुओंकी वृद्धि करना नहीं है, प्रत्युत कल्याण करना है। कारण कि मुक्तिका मार्ग जितना हिन्दुओंके शास्त्रोंमें बताया गया है, उतना किसी देशकी भाषामें नहीं बताया गया है। मैंने इस विषयमें खोज की है। **जनताको बढ़ाना या घटाना मेरा काम नहीं है। मेरा काम कल्याण करना है।** हिन्दूधर्ममें कल्याणकी बहुत सुगम-सुगम बातें बतायी गयी हैं। वैसी बातें मैंने किसी धर्ममें सुनी नहीं हैं। जीवका कल्याण कैसे हो—इसपर हिन्दुओंके ऋषियों-मुनियोंने जितना ध्यान दिया है, उतना किसीने नहीं दिया है। मनुष्यका उद्धार कैसे हो—इस विषयमें मेरेको बहुत सुगम बातें मिली हैं, और फिर भी मैं इस विषयमें खोज कर रहा हूँ।

कल्याणके लिये खास चीज है—लगन। जैसे अन्नकी भूख लगे, जलकी प्यास लगे, ऐसे भगवान्‌की लगन लगे तो भगवान्‌का मिलना सुगम हो जायगा।

श्रोता—हिन्दू समाजमें एकता कैसे रहे?

स्वामीजी—यह बात बड़ी मुश्किल है! यदि हिन्दू समाज एकता रखता तो उसमें आँच नहीं आ सकती थी। हिन्दुओंमें जो शूरवीरता, दैवी सम्पत्ति मिलती है, वह औरोंमें नहीं मिलती, पर वह एकता नहीं रखता, यह उसमें बड़ी भारी कमी है!

आपलोग बालकोंको ईसाईयोंके स्कूलोंमें भेजते हो, जिससे वे भीतरसे ईसाई बन जाते हैं। मैं कहता हूँ कि आपलोग अपने स्कूल बनाओ और उसमें बालकोंको अपने धर्मकी, गीता-रामायणकी शिक्षा दो। उसमें अच्छे शिक्षकोंको रखो। आपके बालक ठीक होंगे, तभी देशकी उन्नति होगी।

हमारे हिन्दू भाई पैसा कमानेमें बड़े तेज हैं। व्यापार करनेमें, पैसा कमानेमें मारवाड़ी जातिके सिवाय दूसरा नहीं है, पर वे इस तरफ ख्याल नहीं करते कि स्त्रियाँ किधर जा रही हैं, बालकोंकी क्या दशा हो रही है। लड़के-लड़कियाँ उद्दण्ड हो रहे हैं। वे माँ-बापका कहना नहीं मानते। माँ-बापका कहना नहीं मानना बड़ा भारी पाप है, अन्याय है!

*** *** ***

श्रोता—राग-द्वेष कैसे नष्ट हों?

स्वामीजी—राग-द्वेषको मिटानेका उपाय भगवान्‌ने बताया है—**'तयोर्न वशमागच्छेत्'** (गीता ३। ३४)। राग-द्वेष हो जायँ तो घबराओ मत, पर इनके वशीभूत मत होओ अर्थात् इनके वशमें होकर क्रिया मत करो। क्रिया करनेसे ये पुष्ट होते हैं। जैसे किसी पहलवानको खुराक न दी जाय तो वह अपने-आप कमजोर हो जाता है, ऐसे ही राग-द्वेषके वशीभूत होकर क्रिया न करनेसे राग-द्वेषको खुराक नहीं मिलेगी और वे कमजोर पड़ जायँगे। मेरेमें राग-द्वेष नहीं हैं—ऐसे अभिमानके भी वशीभूत नहीं होना है।

जब राग-द्वेष हो जायँ, क्रोध आ जाय, तो आप चुप हो जाओ। मुँहमें पानी भर लो। पानीको

न थूको, न निगलो। बादमें उसको थूक दो। यह स्थूल उपाय है। उनके वशमें मत होओ, यह सूक्ष्म उपाय है।

भगवान्‌को याद करो। भगवान्‌को याद करना सम्पूर्ण दोषोंके नाशका उपाय है। राग-द्वेष हो जायँ तो आर्त होकर 'हे नाथ! 'हे मेरे नाथ!' पुकारो। जैसे डाकू लूटते हों तो आदमी पुकारता है, ऐसे आर्त होकर भगवान्‌को पुकारो। ऐसा करनेसे जरूर फर्क पड़ेगा। **भगवान्‌से कहनेपर हरेक दोष दूर होता है।**

राग-द्वेषसे बड़ी हानि होती है! जब राग होता है, तब द्वेष पैदा हो जाता है। **नाशवान् पदार्थोंमें राग होनेसे अविनाशी (भगवान्)-के साथ द्वेष हो जाता है, पर साधकको इसका पता नहीं लगता।** जब भोग अच्छे लगते हैं, तब भगवान् अच्छे नहीं लगते। अतः थोड़ा भी राग उत्पन्न हो तो 'हे नाथ! 'हे मेरे नाथ!' पुकारो। अवगुणोंका नाश करनेके लिये और सद्‌गुणोंको लानेके लिये—दोनोंके लिये भगवान्‌को पुकारो। उनकी कृपासे ही अवगुणोंका नाश और सद्‌गुणोंकी रक्षा होती है। **चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम 'हे नाथ! 'हे मेरे नाथ!' पुकारते रहो तो भगवान् सब तरहसे रक्षा करेंगे।** जब अपने उद्योगसे राग-द्वेष दूर न हों, तब दुःखी होकर भगवान्‌को पुकारो। भगवान्‌की कृपासे बड़ी सरलतासे सब काम हो जायगा।

मैं राग-द्वेषको जीत सकता हूँ—ऐसा अभिमान जिसके भीतर होता है, वह भगवान्‌का सहारा नहीं ले सकता। जबतक मनुष्य अपना बल समझता है, तबतक वह परास्त होता रहता है। गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं—

हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

(विनयपत्रिका ८९। ४)

अतः पहले अपना बल लगाकर इन दोषोंको दूर करो। जब दूर नहीं हों, तब निर्बल होकर भगवान्‌को 'हे नाथ! 'हे मेरे नाथ!' पुकारो। इसके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। पर अपनेमें बलका अभिमान नहीं होना चाहिये। अपने बलका अभिमान होगा तो सच्ची प्रार्थना कर सकोगे नहीं, देरी लगेगी। अपनेमें बल, बुद्धि, विद्या, साधन, वर्ण, आश्रम आदिका अभिमान होगा तो यह उपाय काम नहीं देगा।

भगवान्‌को पुकारनेमें हार स्वीकार मत करो, भले ही वर्ष लग जायँ। अन्तमें आपकी विजय जरूर होगी, इसमें सन्देह नहीं है। अपना समझकर भगवान्‌को पुकारो। नकली प्रार्थनाको भी भगवान् असली मानकर स्वीकार कर लेते हैं। अपने बलसे निराश और भगवान्‌के बलपर विश्वास—ये दो बातें होंगी तो जरूर सफलता मिलेगी।

***　　　　***　　　　***

श्रोता—ऐसा सुना है कि गुरुके बिना कल्याण नहीं होता, इसलिये आप गुरुके विषयमें बतायें।

स्वामीजी—गुरुके बिना मुक्ति नहीं होती, यह एकदम सच्ची बात है। परन्तु सच्चा गुरु अथवा सन्त वह होता है, जो अपना कल्याण कर चुका है और जिसके भीतर दूसरेके कल्याणके सिवाय दूसरी कोई इच्छा नहीं है, जिसमें अपने स्वार्थकी गन्ध भी नहीं है, जो स्वप्नमें भी हमारेसे कोई चाहना नहीं रखता, जिसका संसारसे कुछ लेना-देना नहीं है, सिवाय उद्धारके संसारसे कोई मतलब नहीं है। परन्तु ऐसा गुरु बहुत दुर्लभ है।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम्॥

‘शिष्यके धनका हरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं, पर शिष्यके हृदयका ताप हरण करनेवाले गुरु दुर्लभ हैं।’

गुरुकी जितनी महिमा की जाय, उतनी थोड़ी है। पर यह सच्चे गुरुकी महिमा है, नकली गुरुकी नहीं। नकली गुरु धोखा देता है। रामायणमें आपने कपटी मुनि और कालनेमिकी कथा पढ़ी ही है।

भोग भोगनेकी इच्छा और रुपयोंका संग्रह करनेकी इच्छा—इन दो इच्छाओंसे मनुष्यका पतन होता है। ऐसे मनुष्यको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उनका संसारमें भी अच्छा यश नहीं होता। परन्तु आज केवल रुपयोंके लिये ही बातें बनाते हैं, सत्संग सुनाते हैं! **गुरु बनानेसे कल्याण हो जायगा—यह बात मुझे जँचती नहीं।** शरणानन्दजी महाराजकी पुस्तकोंमें दो-तीन जगह यह बात आयी है कि गुरु मिल जायगा तो आपको बड़ी मुश्किल हो जायगी! उसमें आप फँस जाओगे। फिर निकलना मुश्किल हो जायगा! इसलिये **अच्छी बातें सुनो, उनको काममें लाओ, पर जहाँतक बने, गुरु मत बनाओ।** आपका चेला है रुपया और रुपयेका चेला है गुरु, तो वह गुरु आपका पोता-चेला हुआ, फिर वह आपका कल्याण कैसे करेगा? रुपयेकी चाहनावाला कल्याण नहीं कर सकता। आपके मनमें दया आये, प्रेम आये तो उसको रुपया दे दो, पर गुरु मत बनाओ। गुरुके विषयमें जैसी मेरी धारणा है, वैसी बात मैंने *‘क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?’*—इस पुस्तकमें लिखी है। उसको आप पढ़ें।

खास बात है—भगवान्‌को अपना समझना। भगवान्‌के समान हमारा हित करनेवाला दूसरा कोई नहीं है—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

भगवान्‌में स्वार्थकी गन्ध भी नहीं है। **स्वार्थका त्यागी आदमी ही दूसरेका हित कर सकता है।**

***　　　***　　　***

दो बातें सभी भाई-बहनोंके लिये बड़े कामकी हैं—दीन-दुःखी, अपाहिज, अरक्षित, दरिद्र आदिको सुख पहुँचाओ और भगवान्‌का नाम लो, उनको याद करो। भीतरसे बार-बार पुकारो—‘हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं’। यह इतनी बढ़िया चीज है, जो आपका उद्धार कर देगी।

अपना सुख चाहनेवाला दुःखसे वंचित रह सकता ही नहीं। जो संसारका सुख चाहता है, उसको दुःख भोगना पड़ेगा ही, यह नियम है। इस बातका मेरेको खूब अनुभव है! भाई हो, चाहे बहन हो, जो दुनियाका, भोगोंका सुख चाहता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। यह मेरी खूब देखी हुई, आजमाइश की हुई, लोगोंपर देखी हुई बात है। इसपर मैंने खूब विचार किया है। **रुपयोंसे सुविधा हो सकती है, पर सुख नहीं हो सकता। रुपयों जैसी निकम्मी चीज कोई नहीं है—यह मेरा निर्णय है।** रुपयोंसे खरीदी हुई चीज काम आती है, पर रुपया खुद कुछ काम नहीं आता। भोगोंसे सुख चाहनेवाला सांगोपांग दुःख पाता है। सुख देनेकी चीज है, लेनेकी नहीं।

भगवान्‌के भजनमें लग जाओ तो उन्नति जरूर होगी—यह नियम है। आप भगवान्‌का नामजप करो, कीर्तन करो, भगवान्‌की बातें सुनो, भक्तोंके चरित्र पढ़ो, गीता-रामायण पढ़ो, विनयपत्रिका पढ़ो, आपको शान्ति जरूर मिलेगी। पहले गीता याद कर लो। फिर एकान्तमें बैठकर गीताका उल्टा पाठ करो—**'यत्र योगेश्वरः कृष्णो.......'** से लेकर **'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे.......'** तक उल्टा पाठ करो तो समाधि लग जायगी, आनन्द हो जायगा! मैंने करके देखा है, आप भी करके देखो। आपको जरूर शान्ति मिलेगी। चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आपको शान्ति मिलेगी।

*** *** ***

सत्संग सुननेसे अपने जीवनमें परिवर्तन होना चाहिये। अगर सत्संग सुनकर भी भोग और संग्रहमें ही लगे रहें तो सत्संग सुनने और न सुननेमें फर्क क्या हुआ? **अगर आपके जीवनमें, आपके विचारोंमें परिवर्तन नहीं हुआ तो आपने सत्संगसे क्या लाभ उठाया?** आप सत्संग अर्थात् 'सत्' का संग करते हो तो आपको सत्‌की तरफ चलना चाहिये कि असत्‌की तरफ? सत्‌की तरफ चलें तो सत्संगका उपयोग है। अगर सत्‌की तरफ न चलें तो सत्संगका क्या उपयोग हुआ?

भोग भी असत् है और रुपया भी असत् है। परिवार-नियोजन केवल भोगके लिये है। आज मर जायँ तो भोगा हुआ भोग क्या काम आयेगा? इकट्ठा किया हुआ रुपया क्या काम आयेगा? आप खुद विचार करो। भोग और संग्रह तो सदा साथ रहेंगे नहीं, केवल भोगोंकी आसक्ति और रुपयोंका लोभ साथ रहेगा। आसक्ति और लोभ बढ़ाकर अपना अन्तःकरण अशुद्ध कर लिया, क्या यह सत्संगका उपयोग हुआ? आपके विचार शुद्ध हो जायँ, आपका विवेक जाग्रत् हो जाय, आप दुर्गुण-दुराचारसे हट जायँ तो आपका सत्संग सार्थक हो गया।

*** *** ***

एक 'स्व' है और एक 'पर' है। प्रकृतिकी सम्पूर्ण वस्तुएँ 'पर' हैं। 'पर' अपना नहीं है, 'स्व' अपना है। आप 'पर' की तरफ चलोगे तो 'स्व' कैसे मिलेगा? आप शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिसे अपना लाभ सोचते हैं, पर इनसे आपका लाभ नहीं होगा। आपका लाभ होगा भगवान्‌की तरफ चलनेसे। 'पर' के द्वारा किसीका कल्याण हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। 'पर' कोई कामकी चीज नहीं है। आपके शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि न आपका भला करनेवाले हैं, न बुरा करनेवाले। ये आपसे तटस्थ रहते हैं। इनके द्वारा आपका भला नहीं होगा। इनमें फँसोगे तो पतन जरूर होगा। शरीरादि सब सामग्री केवल दूसरोंके हितके लिये है। मात्र क्रिया दूसरोंके हितके लिये है। कोई भी क्रिया आपके काम आनेवाली नहीं है।

शरीर आपके कामका नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर केवल दूसरोंकी सेवाके लिये हैं। जब सब चीजें दुनियाके हितके लिये हैं, आपके लिये हैं ही नहीं, तो फिर कामना कैसी? कामनाके लिये अवसर ही नहीं है। चीजें संसारकी हैं, उनको संसारमें लगा देना है और जीव परमात्माका है, उसको परमात्मामें लगा देना है। न संसारकी कामना करनी है, न परमात्माकी कामना करनी है। यह सिद्धान्त है। आपका सम्बन्ध परमात्माके साथ है, जड़ चीजोंके साथ नहीं। जो चीज आपकी नहीं है, उसकी कामना करनेका आपको अधिकार ही नहीं है। संसारकी चीज संसारको और परमात्माकी चीज परमात्माको दे दो तो कामना करेगा कौन? कामना करनेवाला रहेगा ही नहीं! इस बातको न समझनेके कारण कामनाका त्याग बड़ा कठिन मालूम देता है।

संसारकी सब चीजें मिली हैं और बिछुड़नेवाली हैं। **मिलने और बिछुड़नेवाली चीज अपनी**

नहीं होती। यह बहुत दामी बात है! परमात्मा अपने हैं। वे कभी हमसे बिछुड़ते ही नहीं। हम नरकोंमें जायँ, स्वर्गमें जायँ अथवा मृत्युलोकमें जायँ, कहीं भी जायँ, परमात्मा सदा हमारे साथमें रहते हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें सदा विराजमान रहते हैं—**'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** (गीता १८। ६१)। इस बातकी तरफ आप ख्याल करो तो आपका जीवन सफल हो जायगा!

*** *** ***

जीव भगवान्‌का अंश है; अतः वह किसी भी तरहसे भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ ले, उसका कल्याण ही होगा। भगवान्‌का सम्बन्ध कल्याण करनेवाला है। जिसने भगवान्‌से वैर किया, उसका (कंस, शिशुपाल आदिका) भी कल्याण हो गया और जिसने भगवान्‌से प्रेम किया, उसका भी कल्याण हो गया, पर जिसने भगवान्‌से कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उसका कल्याण नहीं हुआ। **कोई कहता है कि 'भगवान् मेरे हैं' तो भगवान्‌को बड़ा आनन्द आता है!** वास्तवमें भगवान्‌के सिवाय अपना कोई है ही नहीं। आप सांसारिक चीजोंमें लगकर भले ही भगवान्‌को भूल जाओ, पर भगवान् आपको कभी भूलते नहीं।

श्रोता—भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़नेके बाद क्या कामना रहते हुए भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है?

स्वामीजी—हाँ, कामना रहते हुए भी भगवान् मिल सकते हैं और भगवान्‌के मिलनेपर कामना नहीं रहेगी।

श्रोता—भगवान्‌के मिलनेमें कारण क्या है?

स्वामीजी—प्रेम अर्थात् भगवान्‌की तरफ खिंचाव।

श्रोता—कितना प्रेम होना चाहिये?

स्वामीजी—इतना प्रेम होना चाहिये कि अपनेमें कामना है कि नहीं है, यह याद ही न रहे। सब बातें भूलकर केवल भगवान्‌की ही याद आयें, केवल भगवान् ही मीठे लगें। भगवान् केवल प्रेमको ही देखते हैं, कामना आदिको देखते ही नहीं। भगवान्‌को प्रेमके सिवाय और कुछ दीखता ही नहीं! **जैसे पैसोंका लोभी आदमी कूड़े-कचरेमें, मैलेमें पड़े हुए पैसेको भी उठा लेता है, ऐसे ही भगवान् प्रेमके लोभी हैं!**

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की तरफ चलनेमें विघ्न आता है कि नहीं आता?

स्वामीजी—भगवान्‌की तरफ चलनेमें विघ्न नहीं आते। वास्तवमें हमारा मन ही विघ्न है, हमारी दूसरी इच्छाएँ ही विघ्न हैं। भगवान्‌की तरफसे कोई विघ्न नहीं आता। हम इच्छा करते हैं कि ऐसा हो जाय, यह मिल जाय, यही विघ्न है। **भगवत्प्राप्तिके किसी भी मार्गपर चलो, संसारकी इच्छा ही बाधक होती है।**

ज्ञानमार्गवाला बड़े लड़केके समान है और भक्तिमार्गवाला छोटे बच्चेके समान है। माँकी दोनोंपर समान कृपा होती है, पर वह छोटे बच्चेकी ज्यादा निगाह रखती है, उसकी ज्यादा चिन्ता करती है। भक्तके हृदयमें भगवान्‌से मिलनेकी ज्यादा व्याकुलता रहती है। उस व्याकुलतामें आनन्द बहुत है। दुनियाके लिये रोनेमें और भगवान्‌के लिये रोनेमें बड़ा फर्क है। दुनियाके लिये रोते हैं तो आँसू गर्म होते हैं और भगवान्‌के लिये रोते हैं तो आँसू ठण्डे होते हैं। संसारके लिये रोनेवालेके हृदयमें जलन होती है और भगवान्‌के लिये रोनेवालेके हृदयमें ठण्डक होती है। भगवान्‌के लिये रोना भी

बड़ा मीठा होता है! संसारकी तरफ चलनेमें ही दु:ख है। **भगवान्‌की तरफ चलनेमें सुख-ही-सुख है। भगवान् मिलें तो भी सुख, न मिलें तो भी सुख!**

जैसे भगवान्‌को हनुमान्‌जी बहुत प्यारे हैं, ऐसे ही कलियुगमें भजन करनेवाला भगवान्‌को बहुत प्यारा है।

*** *** ***

हिन्दूधर्म बहुत विलक्षण है। इसमें छोटी-से-छोटी बातसे लेकर बड़ी-से-बड़ी बातका धर्मसे सम्बन्ध है, और धर्मका सम्बन्ध कल्याणके साथ है। जीव अपना उद्धार कर ले, इसके लिये सन्त-महात्माओंने इस पद्धतिकी खोज की है। **हिन्दूधर्ममें छोटे-बड़े जो-जो नियम बताये गये हैं, वे सब कल्याणके साथ सम्बन्ध रखते हैं।** कोई परम्परासे सम्बन्ध रखते हैं, कोई साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं, पर वास्तवमें सबका सम्बन्ध परमात्माके साथ है। इसमें व्याकरण भी एक दर्शनशास्त्र है, जिससे अन्तमें ब्रह्मकी प्राप्ति बतायी है। अत: **इस धर्मका त्याग करना वास्तवमें अपने कल्याणका त्याग करना है, परमात्मप्राप्तिका त्याग करना है!**

आज हिन्दुओंने प्राय: शिखा (चोटी) रखनी छोड़ दी है। यह वास्तवमें कलियुगका प्रभाव है, जिससे सब जीव सुगमतासे नरकोंमें जायँ! शिखा रखना मामूली काम दीखता है, पर यह मामूली काम नहीं है। पहले सब आदमी शिखा रखते थे, पर मेरे देखते-देखते आदमी शिखारहित हो गये! मेरी आप लोगोंसे प्रार्थना है कि आप शिखा धारण करें। शिखाका त्याग न करें। ऐसे हिन्दुओंके सब चिह्न छूट जायँगे तो बड़ी दुर्दशा होगी!

मेरा विषय लौकिक नहीं है। एक व्याख्यान होता है, एक सत्संग होता है। मेरा विषय सत्संगका है, व्याख्यानका नहीं। सत्संगके विषयमें वे बातें हैं, जिनसे जीवका कल्याण हो जाय। इनके साथ-साथ मैं वे बातें भी कहता हूँ, जो कल्याणमें सहायक हैं।

*** *** ***

एक बड़े रहस्यकी सार बात है, जो मेरेको सन्तोंसे मिली है। वह बात शास्त्रकी पढ़ाई करनेपर भी मेरेको नहीं मिली। हमारे सन्तोंने एक जगह लिखा है कि मनुष्यके द्वारा कोई भी पाप हो जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्तमें तीन बातें बतायीं—पहली बात, मनमें यह बात होनी चाहिये कि मैंने पाप किया है। दूसरी बात, इस बातका दु:ख होना चाहिये कि समझदार होकर, साधक होकर मैंने यह पाप किया! तीसरी बात, ऐसी प्रतिज्ञा करे कि अब आगे मैं यह पाप कभी नहीं करूँगा। इसके बाद बताया कि खास प्रायश्चित्त क्या है? यह आपको बताता हूँ।

जो वास्तवमें अपना धर्म नहीं है, संसारका धर्म है, उसको आदर देना और जो खास अपना धर्म है, उसकी उपेक्षा करना—यह नरकोंमें जानेकी खास चीज है। इसका अर्थ यह हुआ कि दो चीजें हैं—एक परमात्माका अंश (अविनाशी, चेतन) है और एक प्रकृतिका अंश (नाशवान्, जड़) है। परमात्माके अंशका धर्म न्यारा है और प्रकृतिके अंशका धर्म न्यारा है। अविनाशी तत्त्वको छोड़कर नाशवान्‌को ग्रहण करना 'परधर्म' है—**'परधर्मो भयावह:'** (गीता ३। ३५)। **चेतनका धर्म 'स्वधर्म' और प्रकृतिका धर्म 'परधर्म' है। परमात्माकी तरफ चलना 'स्वधर्म' है और संसारकी तरफ चलना 'परधर्म' है।** मनुष्यने संसारके धर्मको तो अपना मान लिया, पर अपने धर्मको भूल गया—यह मूल भूल हुई है।

आपका कल्याण शरीर आदिसे नहीं होगा, प्रत्युत स्वयंसे होगा। शरीर-संसार निरन्तर हमसे बिछुड़

रहे हैं। वे कभी अपने साथ रहते नहीं, रह सकते नहीं; परन्तु परमात्मा कभी हमसे अलग होते नहीं, हो सकते नहीं। सर्वसमर्थ परमात्मा भी चाहें कि मैं किसीसे अलग हो जाऊँ तो अलग नहीं हो सकते! आप उस परमात्माके अंश हैं। **मूल भूल यह है कि जो अपना नहीं है, उस (शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि) को अपना मान लिया और जो अपना है, उस परमात्माको अपना नहीं माना। इस एक भूलमें सब भूल है।** गणितमें एक अंककी भी भूल हो जाय तो सब-का-सब रद्दी हो जाता है, एक भी नम्बर नहीं मिलता। इसलिये कम-से-कम आप इतना मान लें कि 'हम परमात्माके हैं और परमात्मा हमारे हैं'।

*** *** ***

संसारमें अपनी चीज कोई है ही नहीं। इसलिये **कोई भी कामना करना बेईमानी है।** जो केवल कामनाकी पूर्तिके लिये ही भगवान्‌का भजन करता है, उसका कल्याण नहीं होता; क्योंकि उसने भगवान्‌को भगवान् समझा ही नहीं। उसका इष्ट काम्य पदार्थ है, भगवान् नहीं। उसके लिये भगवान् नोट छापनेकी मशीनकी तरह केवल कामनापूर्तिका ही एक माध्यम हैं। परन्तु भगवान्‌के अर्थार्थी और आर्त भक्त उनसे अलग हैं। वे कुछ भी चाहते हैं तो भगवान्‌से ही चाहते हैं। दूसरा कोई देना चाहे तो वे लेंगे नहीं। उनमें कामना मुख्य नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌का भजन मुख्य है—**'चतुर्विधा भजन्ते माम्'** (गीता ७। १६)। वे अपना सम्बन्ध भगवान्‌से मानते हैं। उनका इष्ट भगवान् हैं, धन नहीं। वे धन चाहते हैं अथवा दु:ख दूर करना चाहते हैं—इतनी उनमें कमी है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकत जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥

(कवितावली ७। २८)

'संसारमें किसीसे कुछ माँगना नहीं चाहिये। यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ (भगवान् श्रीराम) से मनमें ही माँगो, जिनसे माँगते ही याचकता (कामना, दरिद्रता) जल जाती है, जो बरबस जगत्‌को जला रही है।'

*** *** ***

श्रोता—परमात्मतत्त्व सबको प्राप्त है और हमारा स्वरूप परमात्मस्वरूप है, इसका ज्ञान हो जानेके बाद क्या भजनकी, भक्तिकी आवश्यकता नहीं रहती?

स्वामीजी—अपनेको दो-चार रत्न मिल जायँ तो क्या फिर धन नहीं कमाते? क्या लखपति, करोड़पति अथवा अरबपति धन नहीं कमाते? क्या वे धन कमाना छोड़ देते हैं? क्या भगवान् नाशवान् धनसे भी रद्दी हैं? क्या धन मिलनेपर हम जीना छोड़ देते हैं? आपने भगवान्‌को समझा नहीं, तभी ऐसा प्रश्न पैदा होता है। भगवान् तो प्राणोंसे भी प्यारे हैं, वे छोड़े कैसे जायँ? **चाहे हमारी मुक्ति हो जाय, कोई कामना नहीं रहे, तो भी हम भजन करेंगे। भजन तो भगवान्‌का प्यार है, उसको कैसे छोड़ेंगे?** भगवान् शंकरको मुक्ति करनी है या तत्त्वज्ञान करना है, क्या प्राप्त करना बाकी है? पर वे भी दिन-रात राम-राम जपते हैं—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

(मानस, बाल० १०८। ४)

*** *** ***

जीव भगवान्‌का अंश है। अगर उसको भगवान् अच्छे, प्यारे लगने लग जायँ तो सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा। एक भगवान्‌का आकर्षण है और एक सांसारिक पदार्थोंका आकर्षण है। भगवान्‌का आकर्षण स्वाभाविक है, पर पदार्थोंका आकर्षण हमारा बनाया हुआ है। हमने ही उनसे सम्बन्ध जोड़ा है। पदार्थोंमें खींचनेकी शक्ति नहीं है। परन्तु भगवान्‌में खुदमें आकर्षण है, इसलिये उनका नाम 'कृष्ण' है। पदार्थोंमें जो खिंचाव दीखता है, वह भी वास्तवमें भगवान्‌का ही है, पर हम उसको भगवान्‌का न मानकर संसारका मान लेते हैं।

पदार्थोंमें आकर्षण अपने सुखके लिये होता है, पर भगवान्‌का आकर्षण भगवान्‌के लिये होता है। **भगवान्‌की तरफ आकर्षण किसी भी तरहसे हो, वह कल्याण करनेवाला होता है।** कंसका भयसे और और शिशुपालका द्वेषसे भगवान्‌में आकर्षण हुआ तो भी उनका कल्याण हो गया।

कामाद् द्वेषाद् भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥

(श्रीमद्भा० ७। १। २९)

'एक नहीं, अनेक मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्‌में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर वैसे ही भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे।'

किसी तरहसे भगवान्‌में लग जाओ, चाहे भगवान्‌को भगवान् जानते हुए लगो, चाहे भगवान् न जानते हुए लगो, अन्तमें वह कल्याण करेगा ही; जैसे—अग्निको अग्नि जानकर स्पर्श करो, चाहे अग्नि न जानकर स्पर्श करो, वह तो जलायेगी ही; क्योंकि जलाना उसका स्वभाव है। माघ-स्नान और वैशाख-स्नान—दोनोंका समान माहात्म्य है, पर माघ-स्नानमें (अत्यधिक ठण्ड होनेके कारण) कष्ट होता है और वैशाख-स्नानमें आनन्द होता है। भगवान्‌में भय अथवा द्वेषपूर्वक लगना माघ-स्नानकी तरह है और प्रेमपूर्वक लगना वैशाख-स्नानकी तरह है, पर कल्याण करनेमें कोई फर्क नहीं है।

***   ***   ***

सत्संगके अन्तमें जब कीर्तन होता है, तब कुछ भाई-बहन उठ जाते हैं। इसपर मेरेको बड़ा आश्चर्य आता है! कीर्तनमें उठनेसे भगवन्नामका तिरस्कार, अपमान होता है। कीर्तनसे उठकर आप घर जाकर करोगे क्या? इसपर विचार करना चाहिये। घर जाकर इससे बढ़कर क्या काम करोगे? मेरी समझमें आपका ऐसा कोई काम है ही नहीं, जो कीर्तनसे बढ़कर हो। **कीर्तनमें उठनेसे बड़ा भारी अपराध होता है!**

सत्संगके बीचमें भी नहीं उठना चाहिये। बीचमें उठनेसे सत्संगका अपमान, निरादर होता है। सत्संगमें एक-दो व्यक्ति भी उठ जायँ तो वह रस नहीं रहता। इससे अनध्याय होता है, सत्संगमें विघ्न होता है। अगर किसीको उठना ही हो तो वह बीचमें कभी न बैठे। अगर यहाँसे उठकर कोई काम करना है तो वह काम ही करो। अगर वह काम बढ़िया है तो उस काममें ही लगो, यहाँ बैठे ही क्यों हो? अगर आपको बीचमें उठना ही हो तो बीचमें, सामने मत बैठो। किनारेमें एक तरफ बैठो। मेरेको पता ही नहीं लगे कि कौन उठकर गया। मेरे सामनेसे कोई उठकर चला जाय तो जो बातें मैं कह रहा हूँ, उनमें बाधा लग जाती है; अच्छी बातें उपजती ही नहीं! मैं तो अपने साथ जबर्दस्ती करके बातें कहता हूँ!

सत्संगमें रस तभी आता है, जब सत्संग सुननेवाले उत्कण्ठित हो जायँ। श्रोताओंकी उत्कण्ठा

हो तो ऐसी बातें पैदा होती हैं कि मेरेको भी आश्चर्य आता है कि ऐसी बातें मेरेको पता ही नहीं हैं!

*** *** ***

भगवान्‌के सम्मुख हो जाय तो आनन्द-ही-आनन्द है और संसारके सम्मुख हो जाय तो दु:ख-ही-दु:ख है। हमारे पास भले ही खरबों रुपये हों, पर इससे शान्ति नहीं मिल सकती। संसारकी चीजोंको अपना समझते हैं और भगवान्‌को अपना नहीं समझते—यह मूल भूल है। इस भूलको मिटाओ। भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई अपना है नहीं—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। यह सार बात है।

भगवान् हरदम आपके साथ रहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५) 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ', पर इसकी तरफ आपकी दृष्टि नहीं है। जो सदा आपके साथ रहनेवाले नहीं हैं, उनकी आप आशा रखते हैं! संसारकी आशावाला कभी सुखी नहीं हो सकता। **कम-से-कम, कम-से-कम इस संसारकी आशा छोड़ दें कि ये हमारा कहना मानेंगे, हमारा साथ देंगे, हमारी सहायता करेंगे। बाहरसे तो कहे (जताये) नहीं, पर भीतरसे जाने कि किसीसे कोई मतलब नहीं है। इस बातको हृदयमें पकाओ। दूसरे हमारे विरुद्ध होते हैं, हमारा कहना नहीं मानते हैं, वे क्रियात्मक उपदेश दे रहे हैं; मानो यह कह रहे हैं कि तुम हमारी आशा मत रखो।**

*** *** ***

हमारे सामने दो चीजें हैं—क्रिया और पदार्थ। ये दोनों ही असत् हैं। परन्तु क्रिया और पदार्थपर ही ज्यादा विश्वास हो रहा है! इससे बहुत अनर्थ हो रहा है! **वास्तवमें क्रिया और पदार्थ केवल दूसरोंके हितके लिये हैं, हमारे लिये नहीं हैं।** हमारे लिये तो केवल परमात्मा हैं, जिनके हम अंश हैं। अगर सब काम दूसरोंकी सेवाके लिये किया जाय तो सब महान् सुखी हो जायँगे।

कर्मयोगसे तत्त्वज्ञान, परमात्मप्राप्ति हो जाती है। इसमें दो बातें आवश्यक हैं—अपने स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित। **अगर स्वार्थका त्याग करके दूसरोंके हितके लिये ही सब काम करें तो सब कर्मयोगी हो जायँगे।** मेरेको सुख मिले—इस भावसे बड़ा भारी अनर्थ हो रहा है! अगर यह भाव मिट जाय तो सब सुखी हो जायँगे। सबका हित कैसे हो, सब सुखी कैसे हों, सबका कल्याण कैसे हो, सब भगवान्‌में कैसे लगें, सब जीवन्मुक्त कैसे बनें—यह भाव हो जाय तो सब काम ठीक हो जायगा।

भगवान् हमारे हैं और उनका संसार सेवा करनेके लिये है—यह एकदम सच्ची बात है। भगवान्‌को याद रखनेसे और संसारकी सेवा करनेसे हमारा कल्याण हो जायगा। भगवान् हमारे हैं और हमारे लिये हैं। यह शरीर हमारे लिये नहीं है, प्रत्युत दूसरोंकी सेवाके लिये है।

क्रिया और पदार्थ—ये दोनों प्रकृतिके हैं। इनको दूसरोंकी सेवामें लगाना है। इन दोनोंसे हमें सम्बन्ध-विच्छेद करना है। **जितने सन्त-महात्मा हुए हैं, क्रिया और पदार्थके द्वारा ही उन्नति माननेवाले हुए हैं। इनसे ऊँचे उठनेवाले सन्त बहुत कम हुए हैं।** हमें क्रिया और पदार्थका सहारा न लेकर केवल भगवान्‌का सहारा लेना है। भगवान्‌के समान अपना कोई नहीं है। अत: क्रिया और पदार्थकी प्रधानता न होकर भगवान्‌की प्रधानता होनी चाहिये।

*** *** ***

भगवान् हमारे खास माता-पिता हैं। ऐसे माता-पिता आपको मिलेंगे नहीं। ऐसे माता-पिता दूसरे

हैं ही नहीं, फिर मिलेंगे कैसे? भगवान् कहते हैं—‘**पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः**’ (गीता ९। १७) ‘इस सम्पूर्ण जगत्का पिता, धाता, माता और पितामह भी मैं ही हूँ।’ **आश्चर्यकी बात है कि आपके मनमें अपने माता-पितासे मिलनेकी नहीं आती!** माता-पितापर बालकका स्वतः-स्वाभाविक हक लगता है। जीवमात्र भगवान्का पुत्र है। कपूत-से-कपूत हो, तो भी वह पूत तो है ही! चिन्ता माता-पिता करते हैं, बालक नहीं। बालक तो मौज करता है। इसलिये अपनेपर कोई भार मत लो। सब भार भगवान्पर सौंप दो। हर समय याद रखो कि हम भगवान्के हैं। आप दूसरेका चेला बन जाते हो तो क्या भगवान्का होना उससे कम है? **दूसरेका होनेमें धोखा भी हो सकता है; क्योंकि दूसरेका कुछ पता नहीं कि वह कैसा है। पर आप भगवान्के हो जाओ तो धोखा नहीं होगा।** भगवान्के तो हम सदासे हैं, केवल उधर हमने ध्यान नहीं दिया।

*** *** ***

प्रेमकी प्राप्तिके लिये मैंने बहुत-सी बातें सुनी हैं, पर सबसे श्रेष्ठ बात यह सुनी है कि अपनेपनसे प्रेम होता है। सब बालकोंको माँ इसलिये अच्छी लगती है कि वह ‘मेरी माँ’ है। माँ कुरूप हो, उसके पास अच्छे कपड़े-गहने भी नहीं हों, तो भी वह अच्छी लगती है। ऐसे ही हमें अपने परमपिता परमात्मा प्यारे लगने चाहिये। **यह हमारी गलती है कि हमारे पिता तो परमात्मा हैं, पर अच्छा लगता है संसार!** नित्य रहनेवाले अविनाशी परमात्मा अच्छे न लगें, पर नित्य बदलनेवाला नाशवान् संसार अच्छा लगे—यह हमारी बहुत बड़ी गलती है। इसका सुधार करना चाहिये। हमारेसे सुधार न हो तो भगवान्से कहना चाहिये।

संसार इसलिये अच्छा लगता है कि संसारकी चीजोंको हमने अपना मान लिया। संसारकी कोई भी चीज हमारे साथ नहीं रहती—यह हम जानते हैं, पर इस जानकारीका हम आदर नहीं करते। शरीर संसारका अंश होनेके कारण संसारमें स्थित है, पर हम परमात्माके अंश होते हुए भी संसारमें स्थित हो जाते हैं! यह हमारी बड़ी गलती है। इसलिये इसको सुधारनेकी जिम्मेवारी हमारेपर आ गयी। अगर हम परमात्मासे विमुख नहीं होते तो उनके सम्मुख होनेकी जिम्मेवारी हमारेपर नहीं आती और हम मौजसे रहते!

हम भगवान्के अंश हैं, भगवान् हमारे हैं—यह बात सत्संगके द्वारा मालूम होती है। भगवान् हमारे हैं—यह समझमें नहीं आये तो भी स्वीकार कर लें। भगवान् पहले समझमें नहीं आते; क्योंकि हमारी समझ छोटी है, भगवान् बहुत बड़े हैं; इसलिये वे हमारी समझके अन्तर्गत नहीं आते। परन्तु संसार कितना ही बड़ा हो, वह हमारे सामने तुच्छ है। इसलिये भगवान् माननेका विषय है, संसार जाननेका विषय है। अपने माता-पिताको हम मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते। भगवान् हमारे हैं—इसको मान लें, और संसार हमारा नहीं है—इसको जान लें। **यदि संसारको जान लें तो भगवान्को माननेकी शक्ति आ जायगी, और भगवान्को मान लें तो संसारको जाननेकी शक्ति आ जायगी।**

*** *** ***

अपना एक ही इष्ट और एक ही मन्त्र रखना चाहिये। दूसरे मन्त्रकी महिमा सुनकर अपने मन्त्रको मत बदलो। कोई कुछ भी कहे, लोभमें मत पड़ो। भगवान्के जिस नाममें आपकी श्रद्धा हो, जो नाम आपको प्यारा लगे, उसीको जपनेसे आपको लाभ होगा। भगवान्के किसी भी नाममें कम शक्ति नहीं है। सब नाम कल्याण करनेवाले हैं।

श्रोता—भजन करते समय संसारकी बातें बहुत याद आती हैं। ऐसे समयमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' करना चाहिये। आर्त होकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌की कृपासे ठीक होगा, यह विश्वास रखो। कोई भी आफत हो तो भगवान्‌को पुकारो। भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है।

आप सच्चे हृदयसे भजनमें लग जाओ। आपको कोई बाधा नहीं लगेगी। सब काम ठीक होगा। कोई काम बिगड़ेगा नहीं; जैसे—आपके घरमें विवाह होता है तो काम-धंधा भी चलता रहता है, बन्द नहीं होता। भजन बाधक नहीं होगा, प्रत्युत सहायक होगा। भगवान्‌को याद रखनेसे बुद्धि शुद्ध, निर्मल होती है। **परीक्षाके दिनोंमें विद्यार्थियोंने रामचरितमानसका नवाह पाठ करते हुए परीक्षा दी और पास हो गये—ऐसा मैंने देखा है!**

संसारका काम तो एक दिन बिगड़ेगा ही। इसको आजतक कोई सुधार नहीं सका। भगवान्‌में लग जाओ तो कोई नुकसान नहीं होगा। एक किसान था। उसके घर सन्त आ गये तो उन्होंने कहा कि तुम माला फेरो। किसानने माला फेरी तो उसकी भैंस मर गयी। दूसरे सन्त आये तो उन्होंने भी कहा कि तू भजन कर। किसान बोला कि महाराज, आप भजनकी बात करते हैं, मैं जो एक माला फेरता हूँ, उसको भी छोड़नेका मन करता है; क्योंकि मेरी एक भैंस मर गयी। सन्त बोले कि माला छोड़ेगा तो सभी भैंसें मर जायँगी! भगवान्‌में लगनेसे एक भैंस मर गयी, नेगचार पूरा हो गया! अब और नहीं मरेगी। भगवान्‌का नाम जहर थोड़े ही है कि उससे भैंस मर जाय!

तुलसी सीताराम कहु दृढ़ राखहु बिस्वास।
कबहूँ बिगरे ना सुने रामचन्द्र के दास॥

***   ***   ***

श्रोता—मैं भगवान्‌की हूँ और भगवान् मेरे हैं—यह मैं रोज भगवान्‌से प्रार्थना करती हूँ। पर यह बात मनमें कब पक्की होगी कि मैं भगवान्‌की हो गयी और भगवान् मेरे हो गये?

स्वामीजी—यह बात वास्तवमें भीतरसे माननेकी है, कहनेकी या रटनेकी नहीं है। तुम एक ही रातमें ससुरालकी कैसे हो जाती हो? माँ, बाप, भाई, बहन, भौजाई आदि किसीने भी 'बीनणीं' नामसे नहीं कहा, पर ससुरालमें 'बीनणीं' नामसे पुकारते ही नींदसे उठ जाती हो! इस मान्यताको बदलनेमें कितने दिन लगे? क्या 'मैं बीनणीं हूँ' इसको रटना पड़ा? ऐसे ही कोई साधु हो जाता है अथवा दूसरेकी गोद चला जाता है तो उसकी मान्यता बदल जाती है। अत: कुछ करनेकी जरूरत नहीं है, केवल भीतरसे माननेकी, स्वीकार करनेकी जरूरत है। स्वीकृति एक ही बार तत्काल होती है, और जबतक खुद मिटायें नहीं, मिटती नहीं।

जैसे बालक माँको मानता है, ऐसे आप भगवान्‌को मान लो। इससे आपके जीवनमें फर्क पड़ेगा, भीतरसे एक बड़ा सन्तोष होगा, शान्ति मिलेगी। **आप रात-दिन नामजप करो और भगवान्‌से बार-बार कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।** पाँच मिनटमें, सात मिनटमें, दस मिनटमें, आधे घण्टेमें, एक घण्टेमें कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। एक घण्टेसे अधिक समय न निकले। निहाल हो जाओगे! इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि है ही नहीं। यह सभीके लिये बहुत बढ़िया चीज है। आपका लोक और परलोक सब सुधर जायगा। भगवान् सुग्रीवसे कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(मानस, किष्किन्धा० ७। ५)

इस तरह भगवान् सब काम करनेको तैयार हैं। आप विचार करके देखो, भगवान्‌ने मनुष्यजन्म

दिया है, सत्संग दिया है, सत्संगमें अच्छी-अच्छी बातें दी हैं तो यह हमें उनकी कृपासे मिला है, अपने उद्योगसे नहीं मिला है। इतना काम जिसने किया है, वही आगे भी काम करेगा! हमारे द्वारा प्रार्थना किये बिना, माँगे बिना जब भगवान्‌ने अपने-आप इतना दिया है, तो फिर 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' ऐसी प्रार्थना करनेपर क्या वे हमें छोड़ेंगे? अपने-आप कृपा करेंगे! जरूर कृपा करेंगे!

***　　　　***　　　　***

हरेक भाई-बहन विचार करे कि यह मकान, यह कुटुम्ब, ये भोग, ये रुपये हमारे साथ कितने दिन रहनेवाले हैं? और भगवान्‌का आश्रय ले लें तो वह कितने दिन रहनेवाला है? भगवान् तो सदाके लिये हमारे साथ रहनेवाले हैं। महान् लाभके लिये थोड़ा लाभ छोड़ना, बड़ी चीजके लिये छोटी चीज छोड़ना सुगम होता है। एक तरफ हजार रुपये मिलते हों और एक तरफ एक रुपया मिलता हो तो क्या एक रुपया छोड़नेमें जोर आता है? आप भगवान्‌का आश्रय ले लो तो सदाके लिये मौज रहेगी! ये सांसारिक वस्तुएँ तो थोड़े दिनोंके लिये हैं और एक दिन याद भी नहीं रहेंगी। अगर याद रहती हों तो बताओ इस जन्मसे पहले आप कहाँ थे? आपका कुटुम्ब, रुपये, मकान आदि क्या थे? नहीं बता सकते तो यही दशा इस कुटुम्ब, रुपये, मकान आदिकी होगी! आप खुद सोचो, एक सहारा थोड़े दिन रहनेवाला है और एक सहारा सदा रहनेवाला है, दोनोमें कौन-सा बढ़िया है? एक रुपया और हजार रुपये तो एक जातिके (नाशवान्) हैं, पर संसार और भगवान् एक जातिके नहीं हैं। संसार जड़ तथा नाशवान् है, पर भगवान् चेतन तथा अविनाशी हैं। संसारका सहारा एकतरफा है। आप उसका सहारा लेते हो, पर वह आपको सहारा नहीं देता। परन्तु भगवान् सबको सहारा देते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

संसारका सहारा इस एक जन्ममें भी सदा साथ नहीं रहेगा, पर भगवान्‌का सहारा सदा साथ रहेगा, चाहे किसी योनिमें जाओ, किसी लोकमें जाओ। आप खुद सोचते नहीं, दूसरेकी बात मानते नहीं, तीसरा कोई उपाय है नहीं! इससे नुकसान किसका है? इसलिये अनन्यभावसे भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाओ, सदाके लिये मौज हो जायगी! दुःख सदाके लिये और सर्वथा मिट जायगा!

***　　　　***　　　　***

श्रोता—कोई व्यक्ति भक्तिरसमें डूबता है और दुनियासे उदास होता है तथा मौन रहना चाहता है, एकान्तमें रहना चाहता है, तो लोग कहते हैं कि यह पागल हो गया है!

स्वामीजी—बहुत अच्छी बात है! लोग पागल कहें तो बहुत ही आनन्दकी बात है! लोग अच्छा समझें तो उसमें नुकसान है! लोग पागल समझें तो उसमें नुकसान नहीं है, फायदा-ही-फायदा है! कोई आदमी पासमें नहीं आयेगा, भजनमें बाधा नहीं देगा। इस मार्गमें तो अकेले रहनेमें बहुत मौज है!

श्रोता—अपने घरका ही आदमी हमारी उन्नतिमें बाधक बनता है तो क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—बाधा माननी नहीं चाहिये। पक्का रहना चाहिये। वे आपपर कृपा कर रहे हैं, आपका मोह मिटा रहे हैं! फिर भी आप मोह नहीं छोड़ते!

श्रोता—मोक्ष मृत्युके समय ही प्राप्त होता है या पहले भी प्राप्त होता है?

स्वामीजी—मोक्ष अभी-अभी प्राप्त हो सकता है! मोक्ष क्या है? सब चाहना छोड़ी, मोक्ष हुआ! संसारकी चाहना ही मोक्षमें बाधक है।

*** *** ***

श्रोता—परमात्माकी प्राप्तिका उपाय क्या है?

स्वामीजी—उपाय है—असली भीतरकी लगन। जैसे प्यास लगे तो जल याद आता है, भूख लगे तो अन्न याद आता है, ऐसे भगवान्‌की याद आये। आप पापी, दुराचारी कैसे ही हों, एक भगवान्‌की लगन लग जाय तो सब ठीक हो जायगा। एक भगवान्‌के सिवाय कोई चाहना न हो तो भगवान् मिल जायँगे। कारण कि मनुष्यशरीरका प्रयोजन ही भगवान्‌को प्राप्त करना है। सब काम करते हुए भी भीतर लगन भगवान्‌की ही रहे।

हाथ काम मुख राम है, हिरदै साची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥

हरदम भगवान्‌से प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌के दर्शनके बिना हरदम बेचैनी रहे, कहीं भी मन नहीं लगे, कोई बात सुहाये नहीं। भगवान्‌के सिवाय और कोई बात याद ही नहीं आये। **वास्तवमें भगवान् हमारे भीतर हैं। उनको बार-बार 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो और समझो कि भगवान् मेरे भीतर हैं; उनसे मैं कह रहा हूँ और वे सुन रहे हैं, मुझे देख रहे हैं। एक जन्मकी माँ भी पुकारनेसे आ जाती है, फिर भगवान् तो सदाकी माँ हैं! वे जरूर आयेंगे!**

भगवान्‌को प्रकट करनेके लिये, उनका प्रेम प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌को अपना मानना बहुत जरूरी है। जैसे बालक कहता है कि माँ मेरी है, ऐसे भगवान् मेरे हैं। भगवान्‌में मेरापन प्रेमका मन्त्र है, जिससे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। आपके भीतर यह भाव आना चाहिये कि मेरी माँ मेरेको गोदमें क्यों नहीं लेती?

*** *** ***

श्रोता—भगवान् सभीके हृदयमें विराजमान हैं, फिर भी मनुष्यके द्वारा गलत काम क्यों होता है?

स्वामीजी—क्या आपने भगवान्‌से प्रार्थना की है कि महाराज, मेरे द्वारा गलत काम न हो? भगवान्‌का जबर्दस्ती करनेका स्वभाव बिल्कुल नहीं है। अच्छे सन्त-महात्मा भी बात कह देते हैं, पर जबर्दस्ती नहीं करते। हरेकको बात कहनेमें भी वे संकोच करते हैं। विशेष कृपा होती है, तब कहते हैं। भगवान्‌ने अठारह अक्षौहिणी सेनामें केवल अर्जुनको ही उपदेश दिया, दूसरोंको क्यों नहीं दिया? चोर-डाकू जबर्दस्ती करते हैं। आपके घर साधु आयेगा तो भिक्षाके लिये आवाज दे देगा, आप नहीं बोलो तो चल देगा। परन्तु डाकूको नहीं बोलो तो क्या वह चल देगा?

भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें रहते हैं। उनके बिना कोई प्राणी-पदार्थ है ही नहीं। वे स्वतः-स्वाभाविक सबमें परिपूर्ण हैं। पर वे विधि-निषेध करनेके लिये सबमें परिपूर्ण नहीं हैं। जैसे गायके

भीतर रहनेवाला घी गायके काम नहीं आता, ऐसे ही भगवान् सबमें व्यापक रहते हुए भी काम नहीं आते। प्रार्थना करनेपर वे काम आते हैं। अगर भगवान् विधि-निषेध करें तो सब शास्त्र निरर्थक हो जायँगे, गुरु निरर्थक हो जायगा, शिक्षा निरर्थक हो जायगी!

श्रोता—भगवान्‌के प्रेमके अलावा भी उनकी प्राप्तिका कोई उपाय है क्या?

स्वामीजी—हाँ, कर्मयोग और ज्ञानयोग उपाय है। भगवान्‌में प्रेम होना भक्तियोग है।

श्रोता—संसारके सम्बन्धका जो प्रभाव है, वही मन है और परमात्माके सम्बन्धका जो प्रभाव है, वही साधन है—इसे समझना चाहते हैं।

स्वामीजी—मन कोई तत्त्व नहीं है। प्रभाव पड़नेसे ही मन अच्छा या मन्दा होता है। प्रभाव पड़े बिना मन क्या करे? मन न भजन करता है, न संसारका काम करता है। इसपर प्रभाव पड़ता है, तभी काम करता है। इसपर संसारका प्रभाव पड़ता है तो यह संसारकी तरफ जाता है, भगवान्‌का प्रभाव पड़ता है तो भगवान्‌की तरफ जाता है।

*** *** ***

श्रोता—यहाँ प्रतिदिन बड़ी संख्यामें गोहत्या हो रही है! आपसे प्रार्थना है कि गोरक्षाके लिये प्रेरणा करें।

स्वामीजी—वास्तवमें किसी भी जीवको कष्ट देना शास्त्र-निषिद्ध है। आपको कोई मारे तो आपको अच्छा लगता है क्या? अच्छा नहीं लगता तो किसीको भी मत मारो। **आपको जो बुरा लगे, वह दूसरोंके प्रति मत करो—यह धर्मका सार है।** किसी भी जीवका नाश मत करो। किसीकी भी हिंसा करना पाप है, अन्याय है। जैसे आपको प्राण प्यारे हैं, ऐसे सबको प्राण प्यारे हैं। जीवोंकी हत्या करनेसे अन्तमें दु:ख पाना पड़ेगा। यहाँ बच जाओ तो यमराजके यहाँ दु:ख पाना पड़ेगा।

सब पशुओंमें गायके द्वारा दूसरोंका बहुत ज्यादा हित होता है, इसलिये उसकी हत्याका बहुत ज्यादा पाप है। गायकी तो हवा लगनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है! जो बड़े-बड़े रोगी हैं, वे रोजाना जाकर सुबह और शाम दोनों समय गायको सहलायें, प्यार करें, पैर दबायें तो उनका रोग मिट जायगा, आप करके देख लो! गायकी रक्षा करनेसे बहुत लाभ होता है। मनुष्य गायकी रक्षा करे तो वह भी मनुष्यकी रक्षा करती है। ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं। इसलिये गायको मारना बहुत बड़ा पाप है। हिंसाका परिणाम बहुत खराब होता है। आप गायोंको बचानेका उद्योग करो, नहीं तो देशकी बड़ी दुर्दशा होगी! बड़ा भारी उपद्रव होगा! आप गायोंकी रक्षा करो तो आपका देश सुरक्षित होगा।

जो गायको मारते हैं, मछलियोंको मारते हैं, अण्डा खाते हैं, मांस खाते हैं, ऐसे लोग सत्संगमें नहीं आते। सत्संग उनको सुहाता नहीं। सत्संग उनके विरुद्ध पड़ता है। अगर वे सत्संगमें आयेंगे तो उनको नींद आ जायगी! वे सुनेंगे ही नहीं, सुन सकते ही नहीं! एक मेरे परिचित सज्जन थे। वे मांस खाते थे। उन्होंने मेरेसे कहा कि आप हमारे यहाँ आते नहीं! मैंने कहा कि तुम्हारे हृदयमें मरे हुए मुर्देका जितना आदर है, उतना आदर हमारा नहीं है, फिर हम क्यों आयें? मुर्देको हाथ भी लग जाय तो कपड़ोंसहित स्नान करना चाहिये। तुम्हारी तो थालीमें मसान (श्मशान) है! जब उनका अन्त समय आया, तब (मरते समय) उनको भगवान्‌का नाम सुनाया तो उनको गुस्सा आ गया, वे चिढ़ गये! तात्पर्य है कि जो पाप करते हैं, उनको भगवान्‌का नाम सुहाता नहीं, वे सत्संग करते नहीं। उनका अन्त:करण मैला हो जाता है। मैले अन्त:करणवालेको मैली बात ही अच्छी लगती

है। बाँकुड़ाकी बात है। एक बंगाली नदीके किनारे बैठा मछलियाँ पकड़ रहा था। बद्रीदासजीने उससे पूछा कि इससे कितना पैसा पैदा होता है? उसने लगभग चार आना बताया। बद्रीदासजीने उससे कहा कि उतना पैसा हम तुझे दे देंगे, तुम हमारे यहाँ बैठकर राम-राम करो। वह राम-राम नहीं कर सका और 'होरे-होरे' (हरि-हरि) करने लगा। वह दो दिन आया, तीसरे दिन आया ही नहीं! जाकर देखा तो वह पुन: मछलियाँ पकड़ रहा था! उससे पूछा कि तू नामजप करने आया नहीं? वह बोला कि ना बाबा, यह काम हमसे नहीं होता!

*** *** ***

गायको हम माता मानते हैं। अत: उसका दूध पीनेमें दोष नहीं है। गायका दूध पीयेंगे, तभी गायकी रक्षा होगी! परन्तु उसके बछड़ा-बछड़ीको दूध न पिलाकर खुद दूध पी लेना ठीक नहीं है। यह अन्याय है! अगर बछड़ीको गायका पर्याप्त दूध पिलाया जाय तो गाय बननेपर उसका दूध भी ज्यादा होगा। बछड़ीको कम दूध दोगे तो आगे उसका दूध ज्यादा नहीं होगा। अत: बछड़ा-बछड़ीको दूध पिलाकर ही खुद दूध पीना चाहिये। दूसरी बात, दूध दुहनेसे गायका दूध बढ़ता है। यदि दूध न दुहें, केवल बछड़ा-बछड़ी ही दूध पियें तो गायका दूध स्वत: ही कम होगा। यदि गायको ठीक खिलाया जाय और तीन समय दूध दुहा जाय तो दूध ज्यादा होगा।

*** *** ***

हमें दो बातोंपर विचार करना है—हमें क्या चाहिये? और हमें क्या करना है? हमारी चार तरहकी चाहना है—धनकी चाहना, धर्मकी चाहना, सुखभोगकी चाहना और कल्याणकी चाहना। इन चार चाहनाओंकी पूर्तिके लिये हमारे पास दो ही साधन हैं—प्रारब्ध और पुरुषार्थ। इन दोनोंमें एक-एक साधनके द्वारा दो-दो चाहनाओंकी पूर्ति होती है। **धर्म और मुक्ति—इन दोनोंकी पूर्ति 'पुरुषार्थ' से होती है, तथा धन और भोग—इन दोनोंकी पूर्ति 'प्रारब्ध' से होती है।** इस विषयको ठीक तरहसे न जाननेके कारण लोग दु:ख पा रहे हैं। तात्पर्य है कि धन और भोगकी प्राप्तिमें प्रारब्ध (भाग्य) मुख्य है, पुरुषार्थ (उद्योग) गौण है; और धर्मका अनुष्ठान करनेमें तथा परमात्माकी प्राप्ति करनेमें पुरुषार्थ मुख्य है, प्रारब्ध गौण है। इसलिये आप यह नियम तो लेते हैं कि रोजाना अमुक संख्यामें नामजप, पाठ आदि करके फिर भोजन करेंगे, पर यह नियम कोई नहीं लेता कि रोजाना अमुक संख्यामें रुपये कमाकर ही हम भोजन करेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि पैसा कमानेमें उद्योग मुख्य नहीं है। इसी तरह हम तो रोजाना भोग भोगेंगे, रोजाना हलवा-पूड़ी खायेंगे, भले ही बीमार पड़ जायँ—ऐसा नियम कोई नहीं लेता। यह अनुभवसिद्ध बात है। पैसा कमाने और भोग भोगनेमें आप स्वतन्त्र नहीं हो, पर भजन-ध्यान-सत्संग करनेमें आप स्वतन्त्र हो; क्योंकि यह नया काम है।

*** *** ***

अपनेको जो वस्तु, योग्यता, बल आदि मिले हैं, ये वास्तवमें हमारे नहीं हैं, और हमारे पास रहेंगे भी नहीं। ये संसारके हैं और सबकी सेवाके लिये हैं। तात्पर्य है कि हमारे पास जो वस्तु, योग्यता, बल, विद्या, अधिकार आदि हैं, वे सब दूसरोंकी सेवाके लिये हैं, हमारे लिये नहीं हैं। हमारे लिये वास्तवमें वह है, जिसके हम अंश हैं—*'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'* (मानस, उत्तर० ११७। १)। आप ये दो विभाग कर लें कि शरीर, वस्तु, योग्यता आदि सब संसारके लिये हैं और भगवान् मेरे लिये हैं।

एक बहुत मार्मिक बात है कि स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर परमात्मप्राप्तिमें न साधक हैं, न बाधक हैं। ये तटस्थ हैं। एक परमात्माके सिवाय संसारमें कोई चीज हमारी नहीं है। एक बड़ी

पक्की, सच्ची, सिद्धान्तकी बात है कि जो चीज हमें मिलती है और बिछुड़ जाती है, सदा हमारे साथ नहीं रहती, वह हमारी नहीं होती। वह केवल सेवाके लिये है। इस बातको आप याद रखो। मेरेसे पूछो तो बहुत वर्षोंके बाद यह मार्मिक बात मुझे मिली है!

मनुष्योंमें एक धारणा बैठी हुई है कि हम तो संसारी आदमी हैं, परमात्मासे बहुत दूर हैं, और परमात्मा बहुत उद्योग करनेसे तथा समय लगानेसे मिलेंगे। वास्तवमें यह बात नहीं है। हम परमात्माके साक्षात् अंश हैं। परमात्मा हमारे हैं और हम परमात्माके हैं। वे परमात्मा पहलेसे ही सभीको मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ेंगे नहीं। उन परमात्माको अपना मान लें। परमात्मा हमारे भीतर हैं, वे बाहर दौड़नेसे नहीं मिलते। पापी-से-पापीके हृदयमें भी परमात्मा हैं और सन्त-महात्मा, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, भगवत्प्रेमी भक्तके हृदयमें भी परमात्मा हैं; और वे परमात्मा अपने हैं। वे कभी हमें छोड़ेंगे नहीं। आप कृपा करके उन्हें अपना मान लो तो निहाल हो जाओगे!

***　　　　***　　　　***

तत्त्वका अनुभव बताया नहीं जा सकता। जैसे, कोई मिस्त्री खाये तो वह यह नहीं बता सकता कि मिस्त्री कैसी मीठी होती है; बताशे जैसी मीठी होती है या पिण्डखजूर अथवा गुड़ जैसी? वह कोई भी उपमा देकर मिस्त्रीका स्वाद नहीं बता सकता। मिस्त्रीका स्वाद मिस्त्री लेनेसे ही पता लगता है। अगर हम अनुभवकी व्याख्या करें तो यह कहेंगे कि **तत्त्वका अनुभव होनेपर हमारे मनमें किसी भी वस्तुका खिंचाव नहीं रहता।** बढ़िया-से-बढ़िया पदार्थमें भी मन खिंचता नहीं। रसबुद्धि निवृत्त हो जाती है। जैसे भोजन करनेपर तृप्ति हो जाती है, अन्न-जलकी आवश्यकता नहीं रहती, ऐसे ही परमात्माका अनुभव होनेपर सर्वथा तृप्ति हो जाती है। भोजन करनेके कुछ समय बाद फिर भूख लग जाती है, पर तत्त्वका अनुभव होनेपर सदाके लिये तृप्ति हो जाती है। कुछ करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। उस अनुभवको वाणीसे कैसे बतायें?

***　　　　***　　　　***

श्रोता—कारणशरीर क्या होता है?

स्वामीजी—तीन शरीर हैं—स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर। स्थूलशरीरमें 'क्रिया' होती है, सूक्ष्मशरीरमें 'चिन्तन' होता है और कारणशरीरमें 'स्थिरता' होती है। सूक्ष्मशरीर सत्रह तत्त्वोंका होता है—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि। मनुष्यका स्वभाव (आदत) और अज्ञान (अनजानपना) कारणशरीरमें रहते हैं। परमात्मप्राप्ति स्थिरतासे भी अलग है। चंचलता और स्थिरताका जो ज्ञान (बोध) है, वह स्वयंमें रहता है। तात्पर्य है कि **परमात्माकी प्राप्ति होनेपर स्थूल, सूक्ष्म अथवा कारण—किसी भी शरीरके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता।**

समाधि कारणशरीरमें होती है, जिसमें व्युत्थान होता है। जबतक समाधि और व्युत्थान दोनों होते हैं, तबतक वह साधक है, सिद्ध नहीं है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर व्युत्थान नहीं होता। वह सहजावस्था होती है, जिसमें कारणशरीरसे भी सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

श्रोता—झूठ बोलना पाप है, पर बिना झूठ बोले व्यापार होता नहीं?

स्वामीजी—ऐसी बात नहीं है। बिना झूठ बोले भी व्यापार हो सकता है।

श्रोता—व्यापारमें झूठसे कमाया हुआ धन काममें लेनेसे पूरे परिवारको दोष लगेगा या केवल कमानेवालेको दोष लगेगा?

स्वामीजी—मुख्य दोष कमानेवालेको लगेगा। परिवारको कुछ अंशमें दोष लगेगा। अगर परिवारवाले

कहते हैं कि तुम पाप करो, तो पापमें सहमत होनेके कारण वे भी पापके भागीदार हो जायँगे।

श्रोता—लोभ कैसे मिटे?

स्वामीजी—लोभ दानसे मिटता है। अपनी बढ़िया-से-बढ़िया चीज दूसरेके काम आ जाय तो उसमें प्रसन्नता हो। दूसरा कोई चीज ले ले तो मनमें प्रसन्नता होनी चाहिये। यह प्रसन्नता बढ़ जानेसे लोभ मिट जायगा।

***　　　　　***　　　　　***

अपनी गलतियोंको सहनेसे परमात्मप्राप्तिमें बाधा लगती है। संसारमें विघ्न देनेवाले तो बहुत मिल जायँगे, पर साथ देनेवाला कोई नहीं मिलेगा। इसलिये हरदम सावधान रहनेकी बहुत आवश्यकता है। **जिस चीजसे परमात्माकी प्राप्तिमें बाधा लगती है, विलम्ब होता है, उसको सहना नहीं चाहिये। उसका बिल्कुल, बिना विलम्ब किये त्याग कर देना चाहिये।** उसमें चाहे लाखों, करोड़ों रुपये लगते हों, परवाह मत करो। परमात्माकी प्राप्ति रुपयोंसे आँकी नहीं जा सकती। परमात्मप्राप्तिके समान संसारमें कुछ है ही नहीं।

जो भोग और संग्रहमें लगे हुए हैं, वे परमात्माकी प्राप्ति नहीं कर सकते। अत: भोग तथा संग्रहके विषयमें कोई बात करना चाहे तो उससे हाथ जोड़ लो। उसकी बात मत सुनो। उसमें अपना समय बर्बाद मत करो। अपने सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगे रहो। अन्तमें सब काम ठीक हो जायगा। **आपको दीखता है कि भगवान् सुनते नहीं, पर भगवान् आपकी एक-एक बात सुनते हैं।** उनको 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर पुकारो। वे आपके हृदयकी पुकारको सुनते हैं। उनके सिवाय आपकी पुकारको सुननेवाला कोई नहीं है। आजतक जिसने सँभाला है, वही आगे भी सँभालेगा। इसलिये निश्चिन्त रहो।

ऐसे कलियुगके समयमें भगवान्‌की तरफ वृत्ति हो जाय, उनका चिन्तन हो जाय, उनको प्राप्त करनेकी मनमें आ जाय तो समझो कि भगवान्‌की कृपामें भी विशेष कृपा हो गयी!

***　　　　　***　　　　　***

श्रोता—पहले तो भगवान्‌का भजन करनेका समय मिल जाता था, पर आजकल समय नहीं मिलता!

स्वामीजी—पहले समय मिलता था, अब नहीं मिलता, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। वास्तवमें भजन करनेकी इच्छा नहीं है, नीयत नहीं है। वास्तवमें भगवत्प्राप्तिके लिये नया काम कुछ करना ही नहीं है! भगवत्प्राप्तिके लिये समयकी जरूरत नहीं है। हम भगवान्‌के हैं और भगवान्‌का काम करते हैं—यह मान लो। मैं 'पंचामृत' बताया करता हूँ—

१) हम भगवान्‌के ही हैं।

२) हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्‌के ही दरबारमें रहते हैं।

३) हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्‌का ही काम करते हैं।

४) शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्‌का ही प्रसाद पाते हैं।

५) भगवान्‌के दिये प्रसादसे भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

—ये पाँच बातें मान लो तो आप बिल्कुल भगवान्‌का नाम मत लो, कल्याण हो जायगा! समयकी जरूरत नहीं है। अपने-आपको बदलनेके बाद समयकी जरूरत नहीं रहती। अपनेको तो संसारी मानते

हैं और भगवान्‌का भजन करना चाहते है तो वह पूरा भजन नहीं होता। **समय लगाते हैं तो वह पूरा भजन नहीं होता! अपने-आपको लगा देते हैं तो पूरा भजन होता है।** साधकका पूरा समय ही साधन है। वह चौबीस घण्टे जो कुछ करता है, वह भगवान्‌का ही काम होता है। भगवान् संसारके मालिक हैं तो हमारे भी मालिक भगवान् हुए। अतः उनके लिये ही हम सब काम करते हैं। उपर्युक्त **'पंचामृत' की एक-एक बात कल्याण करनेवाली है।** भावकी जरूरत है, समयकी नहीं। आप भाव बदल दो तो सब समय भगवान्‌का भजन हो जायगा। भाव बदल दो तो दुनिया बदल जायगी—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)! भगवत्प्राप्तिके समान सरल कोई काम है ही नहीं!

***　　　　***　　　　***

श्रोता—हम किसीका बुरा करते नहीं, पर दूसरा हमारा बुरा करे तो क्या करें?

स्वामीजी—उससे हमें अपने कल्याणमें मदद मिलेगी! वे बुरा करेंगे तो हमारेको दुःख होगा। उस दुःखसे हमारा पाप कटेगा, हम पवित्र होंगे। वास्तवमें हमारा बुरा कोई कर ही नहीं सकता। **दुनिया सब मिलकर भी हमारा कल्याण नहीं कर सकती और अकल्याण भी नहीं कर सकती।** दीखनेमें बुरा दीखता है, पर वास्तवमें हमारा भला ही होता है, हमारे पाप नष्ट होते हैं। दुःखसे अन्तःकरण शुद्ध होता है—इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। किसीको मियादी बुखार हो जाय तो बादमें उसको भगवान्‌की बात सुनाओ तो वह बहुत जल्दी गद्‌गद हो जायगा!

श्रोता—बुराई करनेवालेके प्रति हम बुराई करना नहीं चाहते, पर बुराई करनेसे उसकी बुराई कम होती दीखती है, इसलिये बुराई कर लेते हैं।

स्वामीजी—अगर बुराई करनेसे बुराई कम होती तो बुराई मिट जाती, पर वास्तवमें बुराई करनेसे बुराई बढ़ती है। दूसरेकी बुराईके बदले बुराई करनेपर बुराई दुगुनी होती है। बुरा बने बिना बुराई होती ही नहीं। चोर बने बिना चोरी होती ही नहीं। हत्यारा बने बिना हत्या होती ही नहीं। मनुष्य पहले बुरा बनता है, फिर बुराई करता है, और बुराई करनेसे बुराई दृढ़ हो जाती है।

श्रोता—पाठ आदि करते समय मन स्थिर नहीं रहता, इधर-उधर घूमता रहता है!

स्वामीजी—बस, एक ही बात याद रखो, भगवान्‌को कह दो कि 'हे नाथ, देखो, मेरा मन चला गया!' यह नियम बना लो कि जब पता लगे कि मन दूसरी ओर चला गया, तभी भगवान्‌को कह दो। आप निःसन्देह पवित्र हो जाओगे। आपका जीवन पवित्र हो जायगा! कितनी सुगम, सरल बात है!

***　　　　***　　　　***

आपने परमात्माकी प्राप्तिको कठिन मान रखा है, पर वास्तवमें यह कठिन नहीं है। **परमात्मप्राप्ति कठिन है—आपकी इस मान्यताके कारण परमात्मप्राप्ति कठिन है, और इस मान्यताको छुड़ाना कठिन है!** परमात्मा तो अपने हैं। अपनी माँकी गोदीमें जानेमें क्या कठिनता है? इसमें क्या अपनी किसी योग्यता, विद्या, बुद्धि, बल, धन, आदिकी जरूरत पड़ती है? केवल अपनेपनकी जरूरत है। संसारमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। संसारकी चीजको अपनी मानकर भगवान्‌को कठिन मान लिया! अपने केवल भगवान् हैं, जो सदा हमारे साथमें रहते हैं। आप स्वर्ग, नरक, चौरासी लाख योनियाँ आदि कहीं जाओ, भगवान् सदा साथमें रहते हैं—**'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः'** (गीता १५। १५) 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ'; **'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः'** 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित आत्मा हूँ'। परमात्माके सिवाय और कोई चीज आपके साथ

रहती ही नहीं, और भगवान् आपका पिण्ड छोड़ते नहीं! **ऐसा कोई समय नहीं है, जिस समय भगवान् आपके साथ न हों।** परन्तु उस तरफ आपकी दृष्टि नहीं रहती। भगवान् सबके साथ हर समय रहते हैं और बड़ी कृपा करके रहते हैं।

नीच-से-नीच, पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारी, नरकोंमें रहनेवाले जीव भी कह सकते हैं कि भगवान् हमारे हैं। भगवान् उनको 'ना' नहीं कह सकते कि मैं तेरा नहीं हूँ। ऐसा भगवान् कभी कह सकते भी नहीं! अपने अंशको भगवान् कैसे कहें कि तू मेरा नहीं है? ऐसे भगवान्को आप अपना नहीं मानते—यही आपकी गलती है!

*** *** ***

श्रोता—हमारा बुरा तभी होता है, जब हमारे मनमें कोई बुराई होती है। हमारे मनमें बुराई न हो तो दूसरा कोई हमारा बुरा कर नहीं सकता—यह बात समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—मेरा अनुमान है कि यह बात इसलिये समझमें नहीं आयी कि आप अपने-आपको भला समझते हैं और लोग आपका बुरा करते हैं! आप सर्वथा बुराई-रहित नहीं हुए हैं। सर्वथा बुराई-रहित हुए बिना यह बात समझमें नहीं आती। जो सर्वथा बुराई-रहित है, उसके साथ कोई बुराई कर नहीं सकता। अगर कोई बुरा करता है तो उसका (बुराई करनेवालेका) ही बुरा होता है, हमारा बुरा हो सकता नहीं। दूसरा बुरा करता है तो हमारे भीतर कुछ-न-कुछ बुराई है। अभी नहीं है तो पहले हुई है, किसीके प्रति द्वेष हुआ है।

सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय।
जाकी जैसी भावना, तैसो ही फल होय॥

जिसका स्वभाव ही दूसरोंका बुरा करनेका है, वह हमारा बुरा कर सकता है, पर वास्तवमें हमारा बुरा होता नहीं। हमारा बुरा तब होता है, जब हमारे भीतर कोई-न-कोई बुराई होती है।

*** *** ***

एक 'याद' करना होता है और एक 'स्वीकार' करना होता है। अभ्यास करनेमें, याद करनेमें तो देरी लगती है, पर स्वीकार करनेमें देरी नहीं लगती। स्वीकार करना तत्काल होता है, और जबतक अस्वीकार न करे, तबतक मिटता नहीं। याद किया हुआ तो भूल भी सकते हैं। विवाहमें पति-पत्नी एक-दूसरेको स्वीकार कर लेते हैं तो वह सदाके लिये हो जाता है। स्वीकार करनेपर याद रखना नहीं पड़ता और भूलता है नहीं! अगर भूलता है तो असली स्वीकार किया नहीं। स्वीकार करनेपर याद अपने-आप आती है, करनी नहीं पड़ती। ऐसे ही भगवान्को अपना मान लेनेपर उनकी याद अपने-आप आती है। जैसे, मैं अमुक वर्ण, आश्रम आदिका हूँ—यह याद नहीं करना पड़ता। ब्राह्मणको 'मैं ब्राह्मण हूँ' अथवा साधुको 'मैं साधु हूँ'—यह याद नहीं करना पड़ता, माला नहीं फेरनी पड़ती। इस प्रकार स्वीकृति जल्दी होती है और मिटती भी नहीं। परन्तु याद करनेमें देरी भी लगती है और भूल भी जाते हैं।

आप भगवान्के अंश हो, पर आपने स्वीकार नहीं किया है। भगवान्ने तो किसी जीवको अस्वीकार किया ही नहीं। कोई जीव मेरा नहीं है—यह भगवान् कह सकते ही नहीं! इसलिये कृपा करो कृपानाथ! आप एक-एक भाई, एक-एक बहन स्वीकार कर लो कि 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं'। आप गलती यही करते हो कि भगवान्के होते हुए भी इस सत्यको स्वीकार नहीं करते हो। स्वीकार कर लो तो आपका दु:ख, जलन मिट जाय! स्वीकार करना-न करना आपके हाथकी

बात है। इसमें आप बिल्कुल स्वतन्त्र हो। स्वीकृति स्वयंसे होती है। इसमें मन-बुद्धिकी भी जरूरत नहीं है। आप मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके मालिक हो।

***   ***   ***

आपकी कृपासे हमारे भीतर भगवान्‌की बातें भीतर पैदा होती हैं। मैंने गीताके विषयमें कई बातें जानीं हैं, पर जानीं हैं आपकी कृपासे, अपने बलसे नहीं! एक विद्यार्थी काशी पढ़ने गया। उसको पत्र लिखा कि क्या करते हो, तो उसने लिखा कि मैं अध्यापक हूँ, पढ़ाता हूँ। पीछे कुछ वर्षोंके बाद फिर उससे पूछा तो उसने कहा कि अब मैं पढ़ता हूँ! तात्पर्य है कि दूसरोंको पढ़ानेसे अपनी असली पढ़ाई होती है। इस तरह आपलोग मेरेको गीता सिखाते हैं। मैंने आपलोगोंसे गीता सीखी है! गीताकी कई बातें मैं भूल जाता हूँ, पर आपलोगोंसे कहने लगता हूँ तो याद आ जाती हैं। आपलोग सामने आकर बैठ जाते हो तो कुछ-न-कुछ कहना ही पड़ता है, और जब कहने लगता हूँ, तब बातें पैदा हो जाती हैं।

कलकत्तेमें मैंने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) से पूछा कि अकेला बैठे रहनेसे भाव पैदा नहीं होते, पर सुननेवालोंको देखनेसे भाव पैदा होते हैं, यह क्या बात है? अगर यह मान-बड़ाईकी इच्छा है तो फिर इसमें तो हम फँस जायँगे! सेठजीने उत्तर दिया कि दोनों बातें हैं। अच्छी बातें पैदा होती हैं तो यह न्याय है, तुम्हारी महिमा नहीं है। सुननेवाले सुनना चाहते हैं तो सुनानेवालेके भीतर बातें पैदा होती हैं—यह न्याय है, उचित है। यदि साधक अभिमान कर ले कि मैं बढ़िया सुनाता हूँ तो यह मान-बड़ाई है, जो गलती है। **सुननेवाले प्रेमसे, आदरसे सुनते हैं तो बड़ी अच्छी-अच्छी बातें पैदा होती हैं। वे अच्छी बातें भगवान्‌की कृपासे पैदा होती हैं। परन्तु उनको भगवान्‌का दिया हुआ न मानकर यह माने कि मैं बढ़िया बातें सुनाता हूँ तो यह अभिमान है।**

आपलोग भी आपसमें एक-दूसरेको सत्संगकी बातें सुनाया करो। इससे आपको भी लाभ होगा। सुनानेसे ज्यादा लाभ होता है, यह हमने देखा है। शरणानन्दजी महाराजने एक बात कही थी कि जो अच्छा सुनाता है, उसकी उम्र बढ़ जाती है! लोग चाहते हैं कि इनसे बढ़िया बातें मिलती रहें। इसलिये सुननेवालोंकी सद्भावनाके कारण वह जल्दी नहीं मरता। इस कारण मेरी उम्र ज्यादा दीखती है! इसलिये सुनानेमें बहुत फायदा है; परन्तु अभिमान आनेसे गड़बड़ हो जाता है!

संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

(मानस, उत्तर० ७४। ३)

शरणानन्दजीमें यह विशेषता थी कि वे अच्छी बातोंको अपनी मानते ही नहीं थे। अच्छी बातें हमारी नहीं हैं, भगवान्‌की हैं और भगवान्‌की कृपासे आती हैं। विचार करें, इतने आदमी जो चाहते हैं, वह बात सिद्ध होगी या हम जो चाहते हैं, वह सिद्ध होगी? अच्छी बातें भगवान्‌से होती हैं, गड़बड़ी हमारेसे होती है।

***   ***   ***

एक ऐसी बढ़िया बात है कि आप मान लें तो निहाल हो जायँगे! केवल स्वीकार करना है, और कुछ नहीं करना है। आप पापी-पुण्यात्मा कैसे ही हों, यह मान लें कि हम भगवान्‌के हैं। भगवान् कहते हैं कि जीवमात्र मेरा अंश है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। **आप भले ही कुछ नहीं हों, सन्त-महात्मा नहीं हों, भजनानन्दी नहीं हों, शुद्ध नहीं हों, पर जीव तो हो ही! कपूत क्या पूत नहीं होता? मल-मूत्रसे भरा बच्चा क्या माँका बेटा नहीं होता?** मूलमें

आप निर्दोष हैं, दोष पीछेसे आये हुए हैं। स्नानघरमें जब आप साबुन लगाते हो तो काँचमें देखनेपर क्या आप मानते हो कि मेरा चेहरा खराब हो गया?

आप दृढ़ताके साथ भगवान्‌को अपना स्वीकार कर लें तो इसका महान् फल होगा, आपका जीवन सफल हो जायगा! इससे मेरे चित्तमें बहुत प्रसन्नता होगी और आपको भी प्रसन्नता होगी, आनन्द होगा! इस बातको स्वीकार करनेमें लाभ-ही-लाभ है, नुकसान कोई है ही नहीं! यह कोई मामूली बात नहीं है। यह वेदोंका, गीताका, रामायणका भी सार है! आप नहीं मानो तो भी सच्ची बात सच्ची ही रहेगी, कभी झूठी नहीं हो सकती। आप अपनी तरफसे मान लो, फिर आपके माननेमें कोई कमी रहेगी तो उसे भगवान् पूरी करेंगे। पर एक बार स्वीकार करके फिर आप इसे छोड़ना मत। मैं भगवान्‌का हूँ—यह मानते रहो तो आप अपने-आप शुद्ध, निर्मल हो जाओगे। जो लोहेका सोना बना दे, उस पारससे भी क्या भगवान् कमजोर हैं? भगवान्‌के सम्बन्धसे जैसी शुद्धि होती है, वैसी अपने उद्योगसे नहीं होती। **वर्षोंतक सत्संग करनेसे जो लाभ नहीं होता, वह भगवान्‌को अपना मान लेनेसे एक दिनमें हो जाता है!**

*** *** ***

एक काम 'करते' हैं, एक 'होता' है। दोनों अलग-अलग हैं। आप व्यापार करते हो, नफा-नुकसान होता है। खेती करते हो, धान्य होता है। 'करना' अपना होता है और 'होना' भगवान्‌का होता है। अगर होना अपने हाथमें होता तो कोई व्यापारमें नुकसान नहीं होने देता। अगर हम यह मान लें कि जो होता है, वह भगवान्‌के मंगलमय विधानसे, भगवान्‌की कृपासे ही होता है तो हरदम आनन्द, प्रसन्नता रहे! **जो होता है, वह ठीक ही होता है, बेठीक नहीं होता।** भगवान् कहते हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति**' (गीता ५। २९) 'जो मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी जानता है, वह शान्तिको प्राप्त हो जाता है'। ऐसे परम सुहृद् भगवान् हमारा अहित कैसे कर सकते हैं? उनके द्वारा किसीके अहितका काम हो सकता ही नहीं। जो होता है, वह मंगलमय ही होता है। मौत आये तो उसमें भी मंगल है। जीना चाहते हैं, इसलिये मौतसे डर लगता है। जीना न चाहें तो मौतसे डर किस बातका? **भीतरकी चाहना छोड़ दें तो सब काम ठीक हो जायगा, चिन्ता मिट जायगी। अपनी कोई चीज नहीं मानें तो भय मिट जायगा।** हमारा चाहा हुआ होता नहीं—इसका अर्थ यह है कि हम अचाह हो जायँ।

हमें दुःख होता है तो यह अपना बनाया हुआ है, प्रारब्धका नहीं है। प्रारब्धसे तो मनके अनुकूल या प्रतिकूल घटना घट जाती है, पर 'ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये'—यह दुःख खुदका बनाया हुआ है। जो प्रतिकूल परिस्थिति आती है, वह हमारी बनायी हुई नहीं है, पर 'मेरे अनुकूल परिस्थिति रहे'—यह भाव अपना बनाया हुआ है। इसलिये प्रतिकूल परिस्थिति आनेसे दुःख होता है। जैसी भगवान्‌की मरजी हो, वैसी परिस्थिति रहे—यह भाव होनेसे दुःख नहीं होगा। चाहना रखनेसे काम बढ़िया नहीं होता है। चाहना छोड़ दो तो आपका काम बढ़िया होगा, घटिया नहीं होगा। सदा मौज रहेगी!

*** *** ***

एक अलौकिक, विलक्षण शक्ति है, जो सबमें परिपूर्ण है। केश-जितनी जगह भी उससे खाली नहीं है। परन्तु बहुत-से लोग उसको जानते नहीं। जैसे रेतमें चीनी मिली हुई हो तो वह सबको दीखती नहीं, पर चींटी उसे पकड़ लेती है, ऐसे ही जिसकी सूक्ष्म बुद्धि होती है, वह भगवान्‌की कृपासे उस विलक्षण तत्त्वको देख लेता है। उस विलक्षण तत्त्वको 'परमात्मा' कहते हैं। कम-से-

कम आपको यह मान लेना चाहिये कि परमात्मा है, और वह हमारा है। सांसारिक वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको जितना अपना मानोगे, उतना परमात्मामें अपनापन दीखेगा नहीं। **जब यह ठीक अनुभव हो जायगा कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी वस्तु भी अपनी नहीं है, शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-अहम् भी अपने नहीं हैं और अपने लिये भी नहीं है, तब असली तत्त्व समझमें आयेगा।**

यद्यपि शास्त्रमें मनुष्यशरीरको बड़ा दुर्लभ बताया गया है और उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है, पर वास्तवमें वह महिमा विवेकशक्तिकी है। तात्पर्य है कि सत्-असत्, नाशवान्-अविनाशी, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि दो चीजोंको अलग-अलग समझनेकी जो शक्ति है, उस शक्तिको लेकर मनुष्यशरीरकी महिमा है। उस विवेकका आदर करते हुए शरीर-संसारको अपना और अपने लिये न समझें। तीनों शरीरोंसे होनेवाली क्रिया, चिन्तन और समाधि भी अपनी और अपने लिये नहीं है। **क्रिया, चिन्तन और समाधिसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर जिसकी प्राप्ति होती है, वह तत्त्व ही अपना और अपने लिये है।** उसी परमात्मतत्त्वके हम अंश हैं। मनुष्य जबतक शरीर-संसारको अपना और अपने लिये मानता रहेगा, तबतक वह बातें सुन लेगा, सीख लेगा, सुना देगा, व्याख्यान दे देगा, पर उस तत्त्वको ठीक नहीं समझेगा।

एक विलक्षण बात है कि अनन्त ब्रह्माण्ड मिलकर भी आपको कुछ दे नहीं सकते, आपकी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकते, पर आप मात्र ब्रह्माण्डका कल्याण कर सकते हैं! आप इतने बड़े हैं! पर यह बात समझमें नहीं आयेगी। संसार हमारा नहीं है और हमारे लिये नहीं है—ऐसा अनुभव होनेके बाद समझमें आयेगी। इसे समझनेमें वर्ण, आश्रम, बुद्धिमानी, विद्या आदि कारण नहीं हैं। ये सब जड़-विभागमें हैं। जड़के द्वारा चेतनको प्राप्त करना असम्भव है। परन्तु जड़तामें महत्त्वबुद्धि होनेसे यह बात समझमें नहीं आती।

*** *** ***

एक क्रिया है और एक पदार्थ (शरीरादि) है। क्रिया और पदार्थके द्वारा जो उन्नति होती है, वह लौकिक है। परमात्मा अलौकिक हैं। आप क्रिया और पदार्थ—दोनोंसे ऊँचे उठ जाओ; क्योंकि ये दोनों ही उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं। **ये क्रिया और पदार्थ आपके कामके हैं ही नहीं। ये दुनियाके कामके हैं। इनके द्वारा दूसरोंकी सेवा करो। सेवाके सिवाय ये कोई कामके नहीं हैं।** ये जड़, नाशवान् हैं और आप परमात्माके चेतन अंश हो। नाशवान् वस्तु अविनाशीके क्या काम आयेगी? उसमें आसक्ति करोगे तो पतन होगा। जड़ताके द्वारा तत्त्वज्ञान अथवा भक्ति प्राप्त नहीं होगी—यह एकदम पक्का सिद्धान्त है। **क्रिया और पदार्थके साथ सम्बन्ध ही बन्धन है।**

आपके दो ही काम हैं—भगवान्‌का भजन करना और दूसरोंकी सेवा करना। भजन, सेवाके लिये ही अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करो। ज्यादा-से-ज्यादा लोगोंको सुख-आराम कैसे पहुँचे, इसमें अपनी बुद्धि लगाओ। आपका धन दीन-दुःखियोंकी, गायोंकी सेवामें लग जाय तो अपना बड़ा भाग्य समझो। सेवा करो, पर सम्बन्ध किसीसे मत जोड़ो। सम्बन्ध पतन करनेवाला है। एक भगवान्‌के सिवाय किसीसे सम्बन्ध मत जोड़ो।

*** *** ***

भगवान्‌की चाह तबतक जरूरी है, जबतक संसारकी चाह है। तात्पर्य है कि संसारकी चाह मिटानेके लिये भगवान्‌की चाह जरूरी है। संसारकी चाह नहीं है तो भगवान्‌की भी चाह मत करो। कारण कि चाहना रखनेसे यह दोष आता है कि भगवान् दूर हैं। चाहना उस वस्तुकी होती है, जो दूर है, हमारे पास नहीं है। जो हमारे पास है, उसकी चाहना कैसी? संसारकी चाहना करना

संसारके साथ मिलना है, और भगवान्की चाहना करना भगवान्से दूर होना है। परन्तु यह सूक्ष्म बात है, जो हरेकके कामकी नहीं है।

भगवान्की चाहना भी दूसरी चाहना मिटानेके लिये है। अतः जबतक संसारकी चाहना है, तबतक भगवान्की चाहना बढ़ाओ। भगवान्की चाहना इतनी जोरदार करो कि सब चाहना मिट जाय। सब चाहना मिट जाय तो फिर भगवान्की चाहना भी छोड़ दो। काठके काँटेको निकालनेके लिये लोहेका काँटा काममें लेते हैं। **संसारकी सब चाहना मिटते ही भगवान्की चाहना पूरी हो जायगी अर्थात् भगवान् मिल जायँगे!** संसारकी इच्छा छूट जायगी तो भगवान् बिना बुलाये अपने-आप आ जायँगे! आ नहीं जायँगे, आये हुए हैं! कोई ऐसा कण नहीं है, जिसमें भगवान् परिपूर्ण न हों। परन्तु संसारकी चाहनाके कारण ही वे दीख नहीं रहे हैं। भगवान्की प्राप्तिमें भोग और संग्रहकी चाहना ही आड़ है।

इसी प्रकार संसारके चिन्तनको मिटानेके लिये भगवान्का चिन्तन करना है। जबतक संसारका चिन्तन होता है, तबतक संसारका चिन्तन छोड़कर भगवान्का चिन्तन करो। हरदम 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्को पुकारो। संसारकी चाहनाको छोड़ना हो तो भगवान्को पुकारो। दुर्गुणोंको छोड़ना हो तो भगवान्को पुकारो। सद्गुणोंको लाना हो तो भगवान्को पुकारो। संसारका चिन्तन आ जाय तो भगवान्को पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। जो होगा, भगवान्की कृपासे होगा, अपने बलसे नहीं। बच्चेपर आफत आ जाय तो माँको पुकानेके सिवाय वह और क्या करे? **थोड़ा भी संसारका चिन्तन है, आकर्षण है तो रात-दिन भगवान्को पुकारो।** संसारके चिन्तनसे रहित होते ही भगवान् अपने-आप मिल जायँगे।

*** *** ***

गीताकी सार बात है—शरणागति। केवल भगवान्के शरण हो जाओ—**'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)। इसको भगवान्ने सबसे अत्यन्त गोपनीय कहा है—**'सर्वगुह्यतमम्'** (गीता १८। ६४)। यह पद गीताभरमें एक ही बार आया है। यह इतनी बढ़िया, इतनी सुगम, इतनी ऊँची बात है कि क्या बतायें! इसमें एक तात्त्विक बात है। आप थक जाते हो तो नींद लेते हो। नींद लेनेपर थकावट मिट जाती है। चलते-चलते थक जाते हो तो थोड़ी देर ठहरकर विश्राम लेते हो। विश्राम लेते ही शक्ति आ जाती है। तात्पर्य है कि काम करनेसे शक्ति खर्च होती है और विश्राम (कुछ न करने) से थकावट मिटती है तथा शक्ति प्राप्त होती है। इसी तरह **भगवान्के शरण होनेसे परम विश्राम मिलता है।**

कर्मयोगका पूर्वार्ध है—'कर्म करना' और उत्तरार्ध है—'कुछ न करना'। गीतामें भी आया है कि जो योगमें आरूढ़ होना चाहता है, उसके लिये निष्कामभावसे कर्म करना कारण है, और योगारूढ़ होनेके बाद शान्ति अर्थात् कुछ न करना परमात्मप्राप्तिमें कारण है—**'योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते'** (गीता ६। ३)। आप दिनमें कई बार काम-धंधा करना छोड़कर थोड़ी-थोड़ी देर (आधा मिनट, एक मिनट या दो मिनट)-के लिये भगवान्के शरण होकर चुप, शान्त हो जाओ। किसीका भी चिन्तन मत करो, भगवान्का भी नहीं। फिर काममें लग जाओ। इससे आपका भजन बहुत बढ़िया होगा। आपका संसारका काम (व्यापार, खेती, रसोई बनाना आदि) भी बढ़िया होगा! **अगर सत्संग सुननेसे पहले चुप, शान्त हो जाओ तो सत्संगकी बातें ठीक समझमें आयेंगी, और सत्संगके बाद शान्त हो जाओ तो सत्संगकी बातोंका पालन करनेकी शक्ति आ जायगी।**

*** *** ***

कुछ वर्षोंसे, लगभग दस वर्षोंसे कलियुगका प्रभाव जोरोंसे बढ़ रहा है। लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है! किसीने चोटी न रखनेकी आज्ञा भी नहीं दी, केवल कलियुगके प्रभावमें आकर लोगोंने चोटी रखनी छोड़ दी! मैंने ऐसे ब्राह्मणोंको देखा है, जिनका जनेऊ तो है, पर चोटी नहीं है! अगर आप भगवान्‌के शरण हो जाओ तो ठीक है, नहीं तो बड़ी मुश्किल है! आपको चोटी रखनेको कौन कहेगा और क्यों कहेगा? नल-दमयन्तीकी कथा कलियुगका प्रभाव दूर करनेवाली है—

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्॥

(महाभारत, वन० ७९। १०)

आप एक बार शान्तिसे बैठकर नल-दमयन्तीकी कथा पढ़ो। सेठजीने उसका संक्षेप करके लिखा है। कलियुगका प्रभाव दूर होते ही आपको चेत हो जायगा कि चोटी कटवाकर हमने गलती की। ज्यादा अन्तःकरण अशुद्ध हो तो मैं नहीं कह सकता, पर कुछ अन्तःकरण शुद्ध होगा तो पढ़ते ही आपके मनमें भाव पैदा होगा।

कलियुगसे बचनेके लिये 'हम भगवान्‌के हैं'—इस प्रकार भगवान्‌के शरण हो जाओ। जो भगवान्‌के चरणोंके शरण हो गया, उसका कलियुग कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

***　　　　***　　　　***

जितने सन्त हुए हैं, उनमें प्रायः करके सन्तोंने क्रिया और पदार्थका त्याग नहीं किया है। क्रिया और पदार्थ प्रकृतिका कार्य है। वास्तवमें प्रकृतिके कार्यमात्रसे उपराम होना चाहिये। परन्तु सन्तोंकी वाणीमें क्रिया और पदार्थका त्याग नहीं आता है। **चिन्मयताकी प्राप्तिमें जड़ताका अर्थात् क्रिया और पदार्थका सर्वथा त्याग होना चाहिये।** जैसे सब संसार त्याज्य है, ऐसे ही क्रिया और पदार्थ भी त्याज्य है।

दो विभाग हैं—'है' अर्थात् चेतन-विभाग और 'नहीं' अर्थात् जड़-विभाग। क्रिया और पदार्थ 'नहीं'-विभागमें हैं; क्योंकि ये उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं। परमात्मा और उसका अंश जीवात्मा 'है'-विभागमें हैं। प्रकृतिके कार्यमात्रसे 'है' अलग है। **'नहीं' में 'है' नहीं है; परन्तु 'है' इतना विलक्षण है कि वह 'नहीं' में भी है!** 'नहीं' एकदेशीय होता है, पर 'है' एकदेशीय नहीं होता। साधकको 'है' का ही आदर करना है, उसीमें स्थिति करनी है। हमारी एकता 'है' के साथ है। **क्रिया, पदार्थ, शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण, जीवन, योग्यता, विद्या, बल आदि (जड़-विभाग)-के साथ हमें एकता प्रतीत होती है, पर वास्तवमें इनके साथ हमारी बिल्कुल एकता नहीं है।** चेतन-विभाग सदा ही सबको प्राप्त है और जड़-विभाग सदा ही अप्राप्त है।

क्रिया-विभाग प्रकृतिका है और अक्रिय-विभाग परमात्माका है। अगर परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना हो तो सबसे पहले क्रिया-रहित, शान्त रहनेका स्वभाव बना लें। अपना यह विचार ठीक तरहसे होना चाहिये कि क्रिया हमारा स्वरूप नहीं है। हमारा स्वरूप क्रियाका प्रकाशक है, साक्षी है, ज्ञाता है। जब आपने माँसे जन्म लिया, तब छोटे-से थे। फिर अन्न-जल लेते हुए इतने बड़े हो गये। पर आप स्वयं न छोटे हुए, न बड़े हुए। शरीरको जाननेवालेमें क्या फर्क पड़ा? **शरीरका होनापना शरीरका नहीं है, प्रत्युत चेतनका है, जो शरीरमें दीख रहा है।**

***　　　　***　　　　***

जो व्यक्ति खुद तो जानता नहीं और दूसरा बताये तो उसकी बात मानता नहीं, उसकी बड़ी

दुर्दशा होती है! एक विद्यार्थी पढ़नेके लिये गया तो उसके पिताजीने पत्र लिखकर गुरुजीसे पूछा कि मेरा लड़का पढ़नेमें कितना होशियार है? गुरुजीने उत्तर दिया कि तुम्हारा लड़का बहुत होशियार है, सिर्फ दो बातकी कमी है, खुदमें तो अक्ल नहीं और दूसरेकी मानता नहीं! अब बाकी क्या रहा! ऐसे व्यक्तिका उद्धार कैसे होगा? वह मनमें समझता है कि मैं बड़ा समझदार हूँ, और इस अभिमानके कारण वह दूसरेकी बात नहीं मानता। यह दशा आज लोगोंकी हो रही है!

आप स्वयं विचार करें, आपको उत्पत्ति-विनाशशील वस्तु अच्छी लगती है या अविनाशी वस्तु अच्छी लगती है? आप नाशवान्‌की तरफ झुकते हैं या अविनाशीकी तरफ? यह मैं आपको स्वयं सोचनेके लिये कहता हूँ, आज्ञा नहीं देता हूँ। यह आप स्वयं सोचो कि हमारे मनमें श्रद्धा, पूज्यभाव, आदर किसकी तरफ है, नाशवान्‌की तरफ या अविनाशीकी तरफ? अगर अविनाशीकी तरफ है तो विनाशीसे मन हट जायगा, यह निश्चित बात है। जिसके प्रति आदर है, सच्चा स्नेह है, वह वस्तु अवश्य मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

(मानस, बाल० २५९। ३)

अगर हृदयमें संसारका महत्त्व है तो पारमार्थिक उन्नति नहीं होगी। अगर आपकी वृत्ति अविनाशीकी तरफ है, उसी तरफ चलनेका विचार है तो आपकी उन्नति जरूर होगी, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये एक-एक भाई, एक-एक बहन यह विचार करे कि हम महत्त्व किसको देते हैं?

अगर आप चोटी रखें तो मुझे क्या लाभ है? और चोटी न रखें तो मुझे क्या हानि है? फिर भी मैं आपको चोटी रखनेको क्यों कहता हूँ—इसपर आप विचार करें। मेरे मनमें विचार आता है कि आपके भीतर अपने धर्मका इतना तिरस्कार है तो क्या दशा होगी! आप कलियुगके अनुयायी बन गये, कलियुगके विचारोंसे सहमत हो गये, तो मैं क्या कर सकता हूँ? इतनी बात है कि मुझे प्रसन्नता नहीं होगी। **कोई मेरी बात न माने तो उसका नुकसान हो जाय—ऐसा मैं नहीं चाहता। भगवान्‌से भी प्रार्थना करता हूँ कि मेरी बात न माननेवालेका नुकसान कभी न हो!**

***　　　***　　　***

'सन्त' नाम उसीका होता है, जो भगवान्‌को प्राप्त कर ले। सन्त कई होते हैं, पर जिसकी दृष्टिमें एक भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है, ऐसे सन्तको भगवान्‌ने दुर्लभ महात्मा बताया है—**'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः'** (गीता ७। १९)। आपको समझमें नहीं आये तो भी आप भी ऐसा मान लें कि जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सब कुछ भगवान् ही हैं और भीतरसे ऐसी रटन भी लगा दें तो यह बड़े आनन्दकी बात है!

परमात्मा सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण हैं, फिर भी अपनेको दुःख होता है तो वह दुःख वास्तवमें है नहीं, प्रत्युत अपना बनाया हुआ है, जैसे कोई अँधेरेमें भूत-प्रेतकी कल्पना करके मुफ्तमें दुःख पाये! अपना बनाया हुआ होनेके कारण अपनेपर जिम्मेवारी है कि इस दुःखको मिटा दें। सत्संग करनेसे दुःख, चिन्ता-शोक मिट जाते हैं।

अनेक रूपोंमें बने हुए सब कुछ भगवान् ही हैं—इस तरफ ख्याल करें तो सब निहाल हो जायँ! बालक अक्षर सीखता है तो पहले क्रमसे 'क, ख, ग......' सीखता है। कोई 'ग' लिखकर पूछे कि यह क्या है? तो बालकको सोचना पड़ता है कि पहले 'क' है, फिर 'ख' है, तो यह 'ग' हुआ। पर अब आपको सोचना नहीं पड़ता। इस तरहसे आप सब रूपोंमें भगवान्‌को देखें।

पहले सिद्धान्तसे इस बातको मान लें कि सृष्टिके समय एक परमात्मा ही अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं—'**सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति**'(छान्दोग्य० ६। २। ३), फिर परमात्माके सिवाय दूसरा कहाँसे आये? ऐसा कहीं नहीं आया है कि भगवान्‌ने सृष्टि-रचनाके लिये कहींसे माल मँगाया हो।

*** *** ***

भगवान्‌ने कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

'जो मनुष्य अन्तकालमें भी मेरा स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर जाता है, वह मेरे स्वरूपको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।'

यहाँ प्रश्न होता है कि जब अन्तकालमें ही स्मरण करनेसे काम बन जाय, फिर सब समय स्मरण करनेकी क्या जरूरत है? जब अन्तकाल आयेगा, तब भगवान्‌का स्मरण कर लेंगे। इसका उत्तर है कि अन्तकालका समय कौन-सा होगा, यह किसीको पता नहीं है। ये जो चौबीस घण्टे हैं, इसीमें अन्तकालका समय आयेगा। इसलिये चौबीस घण्टे ही भगवान्‌का स्मरण होता रहे तो फिर कभी प्राण चले जायँ, कोई भय, चिन्ता नहीं! मानो आपका बीमा हो गया! भगवान्‌ने भी आगे कहा है—'**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च**' (गीता ८। ७) 'इसलिये तू सब समयमें मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर'। **अभी स्मरण करते हैं, उसमें भी मन ठीक तरहसे भगवान्‌में नहीं लगता है, फिर अन्तकालमें जब अनेक तरहकी पीड़ा होगी, तब भगवान्‌में मन कैसे लगेगा? इसलिये अभीसे सावधान रहें और भगवान्‌का स्मरण करें तो अन्तकालमें भी स्मरण हो सकता है।**

अर्जुनके सामने तो युद्ध था, पर हमलोगोंके सामने अपने-अपने घरका काम है। अत: घरका काम भी करें और भगवान्‌का स्मरण भी करें। कोई भी काम सब समय नहीं हो सकता, पर भगवान्‌का स्मरण सब समय हो सकता है। सब समय स्मरण तब होगा, जब आप इस बातको मुख्यता देंगे, इसे अपने जीवनका मुख्य विषय बना लेंगे। **भगवान्‌का स्मरण मुख्य है, अन्य काम गौण हैं।** साधु, वृद्ध, रोगी और विधवाके लिये तो भगवत्स्मरणके सिवाय अन्य कोई जरूरी काम है ही नहीं! पर यह बात उनके लिये है, जो अपना कल्याण, भगवत्प्राप्ति चाहते हैं।

मनुष्यशरीर किसलिये मिला है, विचार करें। **भगवान् एकसे अनेक किसलिये हुए? केवल प्रेमके लिये। एक भगवान् कृष्ण ही राधा और कृष्णरूपसे दो किसलिये बने? केवल प्रेमके लिये। नहीं तो एकसे दो होनेकी क्या आवश्यकता थी?** भगवान्‌से प्रेम करना असली काम है। वह असली काम अब नहीं करोगे तो कब करोगे? आपने यह निगरानी की है कि चौबीस घण्टोंमें आपको ज्यादा स्मरण किसका होता है? भगवान्‌का स्मरण कितना होता है? इसकी निगरानी आपके सिवाय कौन करेगा? अगर सब समय भगवान्‌का स्मरण होगा तो अन्तकालमें भी भगवान्‌का स्मरण होगा; पागलपनमें, सन्निपातमें भी भगवान्‌का स्मरण होगा! इसलिये आपसे निवेदन है कि सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ और बार-बार कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

*** *** ***

गीतामें आया है—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

(गीता ६। ३)

'जो योग (समता)-में आरूढ़ होना चाहता है, ऐसे मननशील योगीके लिये कर्तव्यकर्म करना कारण कहा गया है, और उसी योगारूढ़ मनुष्यका शम (शान्ति) परमात्मप्राप्तिमें कारण कहा गया है।'

यहाँ आया 'शम' शब्द बड़ा विलक्षण है, जिसका अभीतक ठीक तरहसे विवेचन नहीं हुआ है। 'शम' का गहरा अर्थ होता है—कुछ न करना, चुप होना, शान्त होना। **सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिमें तो 'कर्म' कारण है, पर परमात्माकी प्राप्तिमें 'शम' अर्थात् 'कुछ न करना' कारण है। यह वास्तविक जीवनकी बात है।** आप कोई भी काम करें तो काम करनेसे पहले आप क्रियारहित होते हैं और कामकी समाप्तिपर भी आप क्रियारहित होते हैं। तात्पर्य है कि काम करनेसे पहले भी कुछ नहीं करते और काम समाप्त होने बाद भी (दूसरा काम आरम्भ करनेसे पहले) कुछ नहीं करते। वह क्रियारहित अर्थात् शान्त होना यदि थोड़ी देर ज्यादा हो जाय तो उससे काम बहुत बढ़िया होगा। चुप, शान्त रहनेसे एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है।

विश्राम लेनेसे शक्ति आती है और उस शक्तिसे विशेष विकास होता है। जैसे, दिनभर काम करनेसे थकावट होती है और रात्रिमें नींद लेनेसे थकावट दूर होती है, इन्द्रियोंकी शक्तिमें विकास होता है, पुनः काम करनेकी शक्ति आती है। नींदमें तो परवशतासे इन्द्रियाँ शान्त होती हैं, पर वैसी शान्ति यदि जाग्रत् अवस्थामें कर लें, तो उससे विशेष शक्ति पैदा होगी। चलते-चलते थक जाते हैं तो विश्राम करनेपर फिर चलनेकी शक्ति आ जाती है। प्रकृतिमें भी विश्रामके बाद विशेष विकास होता है। जैसे, सृष्टिके अन्तमें प्रलय होता है तो वह ब्रह्माजीकी रात होती है। उसमें विशेष शक्ति आती है, जिससे पुनः सृष्टि बढ़ती है। कलियुगके अन्ततक मनुष्योंकी आयु पन्द्रह वर्षकी हो जाती है, शरीर बहुत छोटा हो जाता है, पर ब्रह्माजीके नींद लेनेके बाद पुनः आयु बढ़ जाती है, शरीर बड़े हो जाते हैं। तात्पर्य है कि चुप होनेसे एक विलक्षण शक्ति आती है, विवेकका विकास होता है, जिससे आगे काम बढ़िया होता है। **इससे सिद्ध यह हुआ कि संसारका काम होता है क्रिया करनेसे, और परमात्माकी प्राप्ति होती है अक्रिय होनेसे।**

परमात्मप्राप्ति स्वतःसिद्ध है। परन्तु हमलोग 'करना' और 'पाना'—इन दोमें उलझे हुए हैं, इसलिये परमात्मप्राप्तिका अनुभव नहीं हो रहा है। करने और पानेसे अलग हो जाओ तो शान्ति मिल जायगी। जैसे समुद्रके ऊपर बड़ी ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं, पर समुद्रके भीतर मील-आधा मील गहरा चले जायँ तो वहाँ कोई क्रिया नहीं है। ऐसे ही संसारमें बड़ी उथल-पुथल होती है, सृष्टि-प्रलय होते हैं, पर परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो जाय तो वहाँ कोई हलचल नहीं है, पूर्ण शान्ति है। यह जीवन्मुक्त अवस्था है। फिर उसमें प्रेम प्रकट होता है। इसे मनुष्यमात्र प्राप्त कर सकता है!

*** *** ***

श्रोता—मेरा यह भ्रम है कि भजन तो भगवान्‌का काम है और बाकी जो काम करती हूँ, वह भगवान्‌का काम नहीं है। यह वहम कैसे मिटे?

स्वामीजी—जैसे आपलोग ससुरालकी हो जाती हो तो फिर ससुरालका काम अपना दीखता है, पीहरका काम अपना नहीं दीखता। ऐसे ही जब आप भगवान्‌की हो जाओगी, तब सब काम भगवान्‌का

ही होगा। ससुरालमें जानेपर सब काम पतिका होता है। माथेपर एक बिन्दी भी लगाती हो तो उसका सम्बन्ध भी पतिसे होता है। पतिके रहनेपर आप सुन्दर श्रृंगार करती हो, पर पतिके न रहनेपर वैसा श्रृंगार नहीं रहता। इसी तरह आप मान लो कि मैं भगवान्‌की हूँ। यह बात भी सच्ची है। पतिका सम्बन्ध तो थोड़े दिनोंका है, पर भगवान्‌का सम्बन्ध तो सदासे और सदाके लिये है। कुँआरी हो, चाहे विवाहित हो, चाहे विधवा हो, भगवान्‌की तो आप हैं ही—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। विचारपूर्वक देखो तो आप हरदम भगवान्‌की ही रहती हो। जब जन्म लेती हो, तब पीहरकी बनती हो और जब विवाह होता है, तब ससुरालकी बनती हो, पर क्या भगवान्‌की बनती हो? भगवान्‌की तो सदासे हो ही! इसलिये आप भीतरसे 'मैं भगवान्‌की हूँ'—ऐसा मान लो तो फिर सब काम भगवान्‌का ही होगा।

*** *** ***

श्रोता—गृहस्थाश्रममें रहते हुए कल्याण हो सकता है क्या?

स्वामीजी—भूखेको भोजन मिलता है और भूखा ही भोजनका अधिकारी होता है। जो जिस चीजका जिज्ञासु होता है, उसको वह चीज मिलती है। विचार करें कि कल्याण किसका होता है? **कल्याण शरीरका नहीं होता, प्रत्युत जीवात्माका होता है। जीवात्मा न ब्रह्मचारी है, न गृहस्थ है, न वानप्रस्थ है, न संन्यासी है। वह न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है। वह न हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न यहूदी है, न पारसी है। जीवात्मा तो परमात्माका अंश है।**

कल्याण उसका होता है, जो कल्याण चाहता है। भोजन उसको भाता है, जो भूखा होता है। आप सच्ची बातपर विचार करो कि क्या ब्राह्मणका कल्याण हो जायगा? क्या साधुका कल्याण हो जायगा? क्या किसी भाई या बहनका कल्याण हो जायगा? कोई ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुआ हो तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? किसीके पास पैसे ज्यादा हों तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? किसीका बल ज्यादा हो तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? मनमें कल्याणकी इच्छा हुए बिना कल्याण कैसे हो जायगा? **भूखके बिना भोजन भी नहीं कर सकते तो क्या लगनके बिना परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी?** कोई किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, धर्म आदिका हो, जो हृदयसे परमात्माको चाहता है, उसको परमात्मा नहीं मिलेंगे तो किसको मिलेंगे? चाहनेसे परमात्मा ही मिलते हैं, संसार नहीं मिलता। **परमात्माकी प्राप्ति न ब्राह्मणको होती है, न साधुको होती है, न पुरुषको होती है, न स्त्रीको होती है, प्रत्युत 'भक्त' को होती है।** वर्ण-आश्रमकी मर्यादा व्यवहारके लिये आवश्यक है। विवाह, भोजन आदिमें वर्ण, जातिका विचार करना चाहिये; क्योंकि उसमें शरीरका सम्बन्ध होता है। दूसरे वर्णमें विवाह होगा तो वर्णसंकर पैदा होगा।

कल्याण स्वयंका होता है; क्योंकि स्वयं कल्याण चाहता है। मुमुक्षुकी मुक्ति होती है। जिज्ञासुको तत्त्वज्ञान होता है। इसी तरह जो पाप करता है, वह नरकोंमें जायगा, चाहे वह किसी वर्ण-आश्रमका हो। अगर ब्राह्मणका ही कल्याण होगा तो 'मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है'—यह शास्त्रकी बात कट जायगी! सब जीव परमात्माके अंश हैं। कोल, भील, किरात भी परमात्माके अंश हैं। साँप, बिच्छू भी परमात्माके अंश हैं। परमात्माके अंशको ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। अपनी माँके पास जानेमें सबका अधिकार है।

*** *** ***

अपनी वृत्तियोंको देखना चाहिये कि हम भगवान्‌में लगे हैं कि संसारमें? आपको संसार प्रिय लगता है कि भगवान् प्रिय लगते हैं। आपकी वृत्ति स्वत:-स्वाभाविक भगवान्‌में जाती है कि संसारमें जाती है? अगर संसारमें जाती है तो जन्म-मरण होगा ही, इसमें सन्देह क्या है! किसीके कहनेसे, प्रेरणा करनेसे, सत्संगमें जानेसे कुछ वृत्ति भगवान्‌में लग जाती है, पर स्वाभाविक आपकी प्रवृत्ति किधर हो रही है? अगर संसारकी तरफ हो रही है, परमात्माकी तरफ नहीं हो रही है तो खतरा है! कल्याण हो जाय—इसका भरोसा नहीं है!

गोस्वामीजी महाराजने पूरी रामायण लिखकर अन्तमें यह वरदान माँगा—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस, उत्तर० १३० ख)

जैसे कामीको सुन्दर स्त्रीका रूप प्यारा लगता है, ऐसे मेरेको रघुनाथजीका रूप प्यारा लगे, और जैसे लोभीको पैसोंकी गिनती प्यारी लगती है, ऐसे मेरेको राम-नामका जप प्यारा लगे। इन दो दृष्टान्तोंमें जो कमी रह गयी, उसकी पूर्ति ***'निरंतर'*** पदसे करते हैं। तात्पर्य है कि कामीको स्त्री और लोभीको धन निरन्तर प्रिय नहीं लगता। जब इन्कम टैक्सकी इन्क्वारी होती है, उस समय लोभी आदमी सोचता है कि अभी घरमें धन नहीं होता तो अच्छा रहता। परन्तु भगवान्‌का नाम कभी प्यारा न लगे, ऐसा नहीं होना चाहिये।

आप अपने जीवनको देखो कि आपको स्वत:-स्वाभाविक प्यारा क्या लगता है? धन प्यारा लगता है कि स्त्री प्यारी लगती है कि पुत्र प्यारा लगता है कि जमीन-जायदाद प्यारी लगती है कि रुपये प्यारे लगते हैं? स्वत:-स्वाभाविक भगवान् प्यारे लगने लग जायँ। **भगवान् प्यारे लगेंगे तो उनकी हर चीज स्वाभाविक प्यारी लगेगी।** उनका नाम भी प्यारा लगेगा, उनका रूप भी प्यारा लगेगा, उनकी लीला भी प्यारी लगेगी, उनका धाम भी प्यारा लगेगा, उनके चरणोंसे निकली हुई गंगाजी भी प्यारी लगेंगी! कोई भगवान्‌के नामका उच्चारण करेगा तो सुनते ही मन उधर खिंचेगा। **भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी चीज प्यारी लगेगी ही। अगर प्यारी नहीं लगती है तो भगवान्‌में प्रेम नहीं है।**

आजकल सिनेमामें, खेल-तमाशेमें बच्चे, बूढ़े, जवान सभीकी बहुत प्रियता हो रही है तो बुद्धि उनमें रहेगी, परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। भगवान्‌में प्रियता होगी तो लाखों-करोड़ों रुपयोंमें भी मन नहीं जायगा। इसलिये हरेक भाईसे और हरेक बहनसे कहना है कि आप अपना स्वभाव, अपना जीवन ऐसा बनाओ कि भगवान् प्यारे लगें, मीठे लगें, अच्छे लगें। **अगर भगवान्‌में मन लगाना पड़ता है और संसारमें मन स्वाभाविक जाता है तो आप भले ही साधु हो गये, पर भगवान्‌के भक्त नहीं हुए!** साधु बन गये, पर रुपये प्यारे लगते हैं तो बनावटी साधु बननेसे क्या भगवान् मिल जायँगे? आपको सिनेमा प्यारा लगता है, खेल प्यारे लगते हैं, भोग प्यारे लगते हैं तो भगवान् कैसे मिलेंगे? क्या भगवान् जबर्दस्ती बीचमें आयेंगे? आपने भगवान्‌की कीमत समझी ही नहीं। आपका मन अपने-आप, बिना चेष्टा किये भगवान्‌में जाना चाहिये। फिर किसीकी ताकत नहीं है कि भगवत्प्राप्ति न होने दे। जैसे नींदमें भी मच्छर काटे तो हाथ स्वत: वहाँ चला जाता है, ऐसे ही हरेक समयमें मन स्वत: भगवान्‌में लगना चाहिये।

भगवान्‌में मन न लगे तो लगाओ। नकलसे भी असल हो जायगी। जैसे, विद्यार्थीका आरम्भमें

पढ़ाईमें मन नहीं लगता, माँ-बाप जबर्दस्ती स्कूल भेजते हैं, पर पीछे उसका पढ़ाईमें मन लगने लगता है।

*** *** ***

आपलोगोंसे प्रार्थना है कि आप कोई भी काम करो तो भगवान्‌को याद करके करो। कुछ भी लिखो तो पहले ऊपर भगवान्‌का नाम लिखो। **जिस पत्रके ऊपर भगवान्‌का नाम नहीं लिखा हो, वह मुझे बिना सिरवाले पिशाचकी तरह दीखता है!** ऊपर भगवान्‌का नाम नहीं है तो मानो सिर नहीं है! कहीं जाना हो तो पहले भगवान्‌का नाम लो। हम कहीं भी जाते हैं तो मोटर रवाना होते ही चार बार '**नारायण**' नामका उच्चारण करते हैं। ऐसा हमारा स्वभाव ही बन गया है। भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। हमारी तो शिक्षा ही ऐसी शुरू हुई है। जब हम वर्णमाला सीखने लगे तो ऊपर सबसे पहले '**श्रीरामजी**' लिखा, उसके बाद 'अ, आ, इ, ई' आदि लिखना शुरू किया। हरेक कामसे पहले भगवान्‌को याद करनेसे बहुत लाभ होता है, जीवन शुद्ध हो जाता है।

*** *** ***

श्रोता—क्या भगवत्प्राप्तिमें प्रारब्ध और पुरुषार्थ कारण हैं?

स्वामीजी—'प्रारब्ध' फलभोगका नाम है और 'पुरुषार्थ' क्रियमाण कर्मका नाम है। परमात्मप्राप्तिमें प्रारब्ध कारण नहीं होता, प्रत्युत पुरुषार्थ कारण होता है। पुरुषार्थ तो केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही करना चाहिये। जैसे आमके बगीचेमें आमके फलके लिये तो पैसे दिये जाते हैं, पर आमके वृक्षकी छाया मुफ्तमें मिलती है। छायाके पैसे नहीं लगते, भले ही दिनभर छायामें बैठे रहें। इसी तरह परमात्मप्राप्तिके लिये पुरुषार्थ किया जाय तो संसारका काम स्वत: सिद्ध होता है। शरीर-निर्वाहकी वस्तुएँ प्रारब्धके अनुसार अपने-आप मिलती हैं। अतः भगवत्प्राप्तिमें पुरुषार्थ मुख्य है। पुरुषार्थमें भी भाव मुख्य है, क्रिया गौण है।

आप जो भी काम करें, सब भगवान्‌के लिये करें तो आपका सब काम भगवत्प्राप्तिमें कारण हो जायगा।

*** *** ***

दो बातें आप अच्छी तरह भीतर जमा लें। पहली बात, परमात्मा अपने शरीरसहित कण-कणमें परिपूर्ण हैं। जैसे मिर्चीमें तीखापन, मेंहदीमें लाली, काठमें अग्नि सब जगह परिपूर्ण रहती है, ऐसे ही परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। दूसरी बात, हम परमात्माके अंश हैं। हम अच्छे-मन्दे, भले-बुरे, ठीक-बेठीक जैसे भी हैं, परमात्माके ही अंश हैं।

जो उपकारके बदले उपकार करता है, वह 'मित्र' होता है। परन्तु दूसरा उपकार करे या अपकार करे, उसको न देखकर जो अपनी तरफसे उपकार ही करता रहता है, वह 'सुहृद्' होता है। वह दूसरेके उपकारकी अपेक्षा नहीं रखता। भगवान् सबके 'सुहृद्' हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९)। उनका प्रत्येक विधान हमारे लिये मंगलमय ही होता है। वे सदा हमारा भला ही करते हैं। हम अपने राग-द्वेषसे ही सुखी-दु:खी होते हैं। भगवान्‌का विधान कभी बेठीक होता ही नहीं। भगवान्‌के भक्त भी सबके सुहृद् होते हैं—'**सुहृदः सर्वदेहिनाम्**' (श्रीमद्भा० ३। २५। २१)। जो भगवान्‌को ठीक समझेगा, वह सन्तको भी ठीक समझेगा और जो सन्तको ठीक समझेगा, वह भगवान्‌को भी ठीक समझेगा। जो भगवान्‌का भक्त होता है, वह भगवान्‌के भक्तका भी भक्त होता है। उसको भगवान्‌की

हर चीज प्यारी लगती है। भगवान्‌के नामका उच्चारण करना ही भजन है—ऐसा कायदा नहीं है। **भगवान् मीठे लगें, उनकी हर चीज मीठी लगे—यह भगवान्‌का सर्वश्रेष्ठ भजन है।**

*** *** ***

पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता आदि सभी अपनी मनचाही करना चाहते हैं। यही गलती है। अगर आपको शान्ति चाहिये तो अपने कर्तव्यका पालन करो और भगवान् जो करें, उसमें प्रसन्न हो जाओ। जो अपनी मनचाही छोड़ देता है, वह सुखी हो जाता है। **जो भगवान्‌की मरजीमें राजी होगा, वह भक्त बन जायगा, सन्त बन जायगा!** यह पक्का विचार कर लें कि भगवान् जो करते हैं, सब ठीक करते हैं। समझमें आये चाहे न आये, पर जो होता है, वह भगवान्‌के मंगलमय विधानसे होता है।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

(मानस, बाल० १२८। १)

करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न—ये दो बातें आप याद रखो; आपको आनन्द-ही-आनन्द होगा! शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार ठीक तरहसे अपना कर्तव्य करो और जो हो जाय, उसमें प्रसन्न रहो। इससे बड़ा भारी लाभ होगा; आध्यात्मिक उन्नति होगी! भगवान् जो करें, वह ठीक है—ऐसा मान लें तो फिर दु:ख कहाँसे आयेगा? किस गलीसे आयेगा?

भगवान्‌की मरजीसे जो होता है, ठीक ही होता है—इस प्रकार भगवान्‌पर विश्वास करनेपर दु:ख नहीं हो सकता। अगर दु:ख होता है तो भगवान्‌पर पूरा विश्वास नहीं किया। **जो भगवान्‌पर विश्वास करता है, वह भगवान्‌के साथ एक हो जाता है।**

आप हरदम प्रसन्न रहो। हरदम प्रसन्न रहना मनकी तपस्या है—**'मन:प्रसाद: ....तपो मानसमुच्यते'** (गीता १७। १६)। प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितिमें भी प्रसन्न रहो।

*** *** ***

श्रोता—कई गुप्त दान करनेकी बात कहते हैं कि पति दान दे तो पत्नीको पता न चले और पत्नी दान दे तो पतिको पता न चले!

स्वामीजी—यह गुप्त दान नहीं होता। यह चोरी होती है! गुप्त दान तो वह होता है कि दान लेनेवालेको पता न चले कि कहाँसे आया? घरवालोंसे छिपाकर देना चोरी है, जिसका दण्ड होगा।

श्रोता—सच्चे सन्तकी पहचान क्या है?

स्वामीजी—सच्चा सन्त वह है, जिसको कुछ नहीं चाहिये, नमस्कार भी नहीं चाहिये, पैसा भी नहीं चाहिये, पदार्थ भी नहीं चाहिये, भोग भी नहीं चाहिये। **जिसको कभी स्वप्नमें भी संसारसे चाहना होती ही नहीं, वही सच्चा सन्त है, सच्चा गुरु है।** वह चिन्मय तत्त्वमें स्थित होता है, जहाँ जड़ताका नामोनिशान ही नहीं है।

श्रोता—भगवान्‌ने गीता सुनाकर अर्जुनका कल्याण थोड़ी ही देरमें कर दिया!

स्वामीजी—कल्याणमें देरी नहीं लगती। भगवान्‌के विश्वासमें देरी लगती है। विश्वास होनेपर देरी नहीं लगती। कल्याण तो खास अपनी चीज है। यह कमाकर धन इकट्ठा करनेकी तरह नहीं है। भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध स्वतन्त्र है, किसीके अधीन नहीं है। बीचमें दूसरेकी आशा रखते हो, दूसरेसे सम्बन्ध जोड़ते हो, यह बाधा होती है। **केवल भगवान् हैं और आप हैं, बीचमें किसी**

दलालकी जरूरत नहीं है। आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌के शरण हो जाओ और 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। स्वप्नमें भी किसीकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌का जो नाम प्यारा लगता हो, उसका जप करो और प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आपका कल्याण जरूर होगा, इसमें सन्देह नहीं।

*** *** ***

श्रोता—अभी तो आपका सत्संग मिलता है, पर जब यह सत्संग नहीं मिलेगा तब?

स्वामीजी—तब आप गीता पढ़ो। मेरेको तो लाभ गीतासे हुआ है। रोजाना नियमसे घण्टा, डेढ़ घण्टा, दो घण्टा गीताकी टीका '**साधक-संजीवनी**' पढ़ो। **'साधक-संजीवनी' को आप पढ़ते रहें तो सत्संग मिलता रहेगा।**

श्रोता—पूजा करते हैं तो मन नहीं लगता!

स्वामीजी—आप हरदम जो काम करते हो, और रागपूर्वक जो काम करते हो, उसके संस्कार ज्यादा पड़ते हैं। आप गीता पढ़ो तो प्रेमपूर्वक, मन लगाकर पढ़ो तो उसका असर पड़ेगा। आप संसारके काम मन लगाकर करते हो, भोगोंको मन लगाकर भोगते हो, इसलिये भगवान्‌में मन लगता नहीं। इसलिये आप भगवत्सम्बन्धी काम मन लगाकर, प्रेमपूर्वक, आदरपूर्वक करो।

यह सबके अनुभवकी बात है कि जिसमें प्रेम होता है, जिसको हम बढ़िया समझते हैं, उसमें मन स्वतः लगता है। **विचार करो कि आपको प्यारा संसार लगता है या भगवान्? जो प्यारा लगता है, उसीमें मन लगेगा।**

श्रोता—कलियुगमें प्रभुकी प्राप्ति, प्रभु-प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है क्या?

स्वामीजी—अन्य युगोंसे भी जल्दी होती है! जिस चीजके ग्राहक कम होते हैं, वह चीज सस्ती हो जाती है। कलियुगमें भगवत्प्रेम, तत्त्वज्ञानके ग्राहक कम हैं, इसलिये ये चीजें सस्ती हैं! जिस परीक्षामें विद्यार्थी बहुत ज्यादा बैठते हैं, उसमें अच्छे नम्बर पानेवाले थोड़े होते हैं। परन्तु जिसमें कम विद्यार्थी होते हैं, उसमें अच्छे नम्बरवाले ज्यादा होते हैं और पास भी ज्यादा होते हैं, नहीं तो संस्था खुद फेल हो जाय!

*** *** ***

सभी भाई-बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि आपको जँचे चाहे न जँचे, समझमें आये चाहे न आये, 'हम भगवान्‌के हैं'—ऐसा मान लें तो आप निहाल हो जायँगे! जो संसार कभी आपके साथ रह सकता ही नहीं, उसको अपना मान लिया—यह मूल भूल है। भगवान्‌से विमुख होना ही सबसे बड़ा पाप है। **भगवान्‌के सम्मुख होते ही सबसे बड़ा पाप नष्ट हो जाता है!** सब दुर्गुण-दुराचार अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। भगवान्‌को अपना माने बिना भजन करनेसे भजनकी वैसी सिद्धि नहीं होती। परन्तु **भगवान्‌को अपना मान लें तो भजन किये बिना स्वाभाविक भजनकी सिद्धि हो जायगी!** मैं भगवान्‌का हूँ—ऐसा भीतरसे मान लें तो आपकी अवस्था बदल जायगी, आपका पूरा परिवर्तन हो जायगा, आपको शान्ति मिल जायगी, आपकी शंका मिट जायगी, सन्देह मिट जायगा! 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इतना भीतरसे मान लो तो संसारका सम्बन्ध स्वतः छूट जायगा। संसारको छोड़नेके लिये आपको प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। १)

जैसे लड़की विवाह होनेके बाद ससुरालकी हो जाती है, पीहरकी नहीं रहती, ऐसे ही आप भगवान्‌के हो जाते हो तो फिर आप संसारके नहीं रहते। अगर आपको भय लगता है तो वास्तवमें आप भगवान्‌के हुए नहीं। भगवान्‌का हो जानेके बाद भय, शंका, सन्देह, चिन्ता, शोक आदि सब निवृत्त हो जायँगे। आपका सब काम स्वत: सिद्ध हो जायगा। बस, एक ही बात मान लें कि **'मैं भगवान्‌का हूँ'**।

आप हृदयसे यह बात स्वीकार कर लें कि हम भगवान्‌के हैं। स्वीकार करनेके बाद जो कमी रहेगी, वह भगवान् अपने-आप पूरी करेंगे। किस ढंगसे करेंगे, वह भगवान् जानें। माँ छोटे बच्चेके कपड़े उतारती है तो वह रोता है, स्नान कराती है तो रोता है, स्नान कराकर पोंछती है तो रोता है! फिर माँ नये कपड़े पहनाकर काजलका टीका लगा देती है। फिर माँ और बच्चा दोनों हँसते हैं! इस तरह आप भगवान्‌के हो जाओ, फिर भगवान् भी हँसेंगे, आप भी हँसोगे! अपना पालन करनेके लिये बच्चेको माँसे कहना नहीं पड़ता।

भगवान्‌का गीतामें अन्तिम उपदेश है—**'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)। मैं भगवान्‌का हूँ —ऐसा आपने मान लिया तो आप सही मार्गपर आ गये, ठीक ठिकाने आ गये!

***　　　***　　　***

वास्तवमें ठीक तरहसे जाननेवाले बहुत कम हैं। जो सत्संग करते हैं, वे भी प्राय: जानते नहीं। जितना जानते हैं, उतना स्वीकार नहीं करते। जैसे बिजलीके द्वारा कितने तरहके कार्य होते हैं, उसकी आदमी गिनती नहीं कर सकता। फिर भी बिजलीके नये-नये आविष्कार होते रहते हैं। ऐसे ही **पारमार्थिक मार्गमें भी नये-नये आविष्कार होते हैं।** परन्तु आप ध्यान नहीं दें तो हम क्या करें! कठिन बात बतायें तो कहते हैं कि हम कर नहीं सकते, और सुगम बतायें तो आप करते नहीं! मनुष्यजन्म केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है, पर परमात्माकी प्राप्ति न करके आप इसको निरर्थक नष्ट कर रहे हो। इससे कितनी हानि हो रही है, इस तरफ आप देखते ही नहीं! विचार ही नहीं करते!

आजकल मेरी एक धुन लगी है—भगवान्‌को अपना मानना। मेरे मनमें यह बात विशेषतासे आ रही है कि आप किसी तरहसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लो, चाहे भगवान्‌को बेटा मानो, बाप मानो, माँ मानो, भाई मानो, मित्र मानो, गुरु मानो, चेला मानो, मालिक मानो, नौकर मानो, कुछ भी मानो। इतनी-सी बात मानो तो बहुत लाभकी बात है! आप मानो, चाहे मत मानो, मैं तो कहता रहूँगा, अपने कर्तव्यका पालन करता रहूँगा! आप नहीं मानो तो मैं आपसे नाराज नहीं होऊँगा, पर मेरे चित्तमें प्रसन्नता नहीं होगी। एक कुम्हार था। वह घर में पहुँचा तो पत्नीसे बोला कि रोटी ला, भूख लगी है। पत्नी बोली कि घरमें दाना नहीं है, रोटी बनाऊँ किसकी? कुम्हार एक हाँडी लेकर किसानके पास पहुँचा। किसानने हाँडी ले ली और बदलेमें बाजरी दे दी। कुम्हार बाजरी लेकर घर आया और रोटी बनवा ली। दूसरे-तीसरे दिन वह किसान कुम्हारसे मिला तो बोला कि तुम्हारी हाँडी तो फूटी हुई थी, हाँडी चढ़ी ही नहीं! कुम्हार बोला कि मेरी तो हाँडी चढ़ गयी अर्थात् हमारी रसोई बन गयी! ऐसे ही आप भले ही मेरी बात मत मानो, पर मेरी तो हाँडी चढ़ जायगी! फूटी है आपकी हाँडी!

***　　　***　　　***

उद्धारके लिये एक बात मैं विशेषतासे बार-बार कहता हूँ कि भगवान्‌के साथ हमारा आत्मीय सम्बन्ध है। हम सभी भगवान्‌की सन्तान हैं। **हम तो संसारी हैं और भगवान्‌को प्राप्त करना बड़ा मुश्किल है—इस धारणाको मिटानेके लिये यह बात है कि 'हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं'।** छोटे-बड़े जितने जीव हैं, सब-के-सब भगवान्‌के अंश हैं। पर इस बातको सुनने-समझनेकी योग्यता मनुष्यमें ही है। भगवान्‌के अंश होनेसे हम भगवान्‌के बहुत नजदीक हैं। भगवान्‌पर हमारा अधिकार लगता है। **भगवत्प्राप्तिकी लालसा तो कठिन है, पर भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं है।** इस बातको न जाननेके कारण लोग अपनेको संसारी आदमी समझते हैं। वास्तवमें वे अपनी मरजीसे संसारी हैं, मूलमें हैं नहीं।

संसारकी सब वस्तुएँ समष्टिकी हैं। उनको व्यक्तिगत माननेसे ही पाप होते हैं। हमारे पास धन, सम्पत्ति, शरीर आदि जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे व्यक्तिगत नहीं हैं। उन वस्तुओंका सदुपयोग करो, पर उन्हें व्यक्तिगत मानकर उनके मालिक मत बनो, प्रत्युत मुनीम बनो। यह अपने हिन्दुस्तानकी रीति है। एक अँग्रेज हमारे यहाँ आकर कुछ दिन रहा। उसने यहाँ बासा (भोजनालय)-में व्यवस्था देखी कि पैसा पासमें है तो दे दो, नहीं है तो कोई बात नहीं और भोजन कर लो। यह देखकर उसको बड़ा आश्चर्य आया और बोला कि हमारे देशमें ऐसा नहीं होता। वहाँ तो पैसा दो और भोजन करो, नहीं तो जाओ!

***   ***   ***

आप अचाह अर्थात् निष्काम हो जायँ। किसी तरहकी चाहना न हो। न संसारकी, न भगवान्‌की, न जीनेकी, न मरनेकी, कोई इच्छा न हो। इससे आपमें स्वतः-स्वाभाविक विलक्षणता प्रकट हो जायगी। अचाह होनेसे आप अप्रयत्न हो जायँगे।

अगर आदर-निरादरका असर पड़ता है तो असली चीज मिली नहीं है। कोई आदर करे या निरादर करे, अच्छा कहे या मन्दा कहे, भला कहे या बुरा कहे, सहायता करे, असहायता करे, सुख दे, दुःख दे, सबको छुट्टी दे दो। कोई कुछ भी करे, हमें क्या मतलब है? सबको छुट्टी दे दो तो आपको छुट्टी (मुक्ति) मिल जायगी!

हम अचाह स्वतः हैं, चाह पैदा होती है। चाह नहीं हो तो कोई बन्धन है ही नहीं! जिसके भीतर कोई चाह नहीं है, उसके पास भले ही एक कौड़ी न हो, वह महाराजा है!

***   ***   ***

एक मार्मिक बात है कि जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक किसीसे भी सम्बन्ध जोड़ना खतरनाक है! जब पहलेका सम्बन्ध भी आपसे नहीं टूटा तो फिर नया सम्बन्ध क्यों जोड़ते हो? पुराना सम्बन्ध भी आपके लिये टूटना मुश्किल हो गया, फिर नया सम्बन्ध जोड़ोगे तो क्या दशा होगी? बड़ी भारी आफत हो जायगी! **किसीसे भी सम्बन्ध जोड़ना पतनका कारण है।** जड़भरतने मृगसे सम्बन्ध जोड़ा तो उनको मृगयोनिमें जाना पड़ा! 'सम्बन्ध' शब्दका अर्थ ही है—सम्यक् प्रकारसे अर्थात् बढ़िया रीतिसे बन्धन। **नया सम्बन्ध जोड़ना नया खतरा है!** एक आदमीने दूसरेसे कहा कि मैं इस घोड़ीकी पूँछ पकड़ूँ तो क्या दोगे? वह बोला कि घोड़ी खुद ही दे देगी! ऐसी दुलत्ती मारेगी कि मर जाओगे!

एक भगवान्‌के सिवाय किसीसे भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। संसारके सम्बन्धी आपके लिये नहीं हैं, प्रत्युत आप सम्बन्धियोंके लिये हो। जैसे, माँ, बाप, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र आदि आपके

लिये नहीं हैं, प्रत्युत आप उनके लिये हो। उनकी सेवा करके उऋण हो जाओ। **अपना समझकर सेवा करना और सेवा करके अपना समझना—दोनों बन्धन हैं।** अपने बच्चोंका पालन तो कुतिया भी करती है!

सेठजीके पिता खूबचन्दजी कपड़ेका व्यापार करते थे। उनसे कोई कहता कि मैं कपड़ा ले जाता हूँ, पैसे पीछे दूँगा तो वे कहते कि कपड़ा भी पीछे ही ले जाना! अभी तो आपके पास पैसा है, हमारे पास कपड़ा है, दोनों बराबर हैं। पर पैसा और कपड़ा दोनों ही आपके पास हो गये तो हम रीते रह गये! उधार देनेसे बड़ी आफत होती है! **किसीको वैरी बनाना हो तो उसको उधार रुपये दे दो।** देते समय तो बड़े प्रेमसे लेगा, और माँगोगे तो वैर हो जायगा! किसीका कोई वैरी नहीं हो तो रुपये देकर वैरी बना लो! ऐसे ही अपना पतन करना हो तो सम्बन्ध जोड़ लो! चेला बना लो!

चेला बनाना कोई तमाशा नहीं है, बड़ी भारी जिम्मेवारी है। उसका कल्याण करना होगा। जिसमें कल्याण करनेकी ताकत नहीं हो, उसे चेला नहीं बनाना चाहिये। जिसको खुद तैरना नहीं आता, वह अगर डूबते हुएको बचाने जायगा तो वह इसको पकड़ेगा, यह उसको पकड़ेगा, दोनों ही बढ़िया रीतिसे डूबेंगे! क्योंकि हाथ-पैर हिला सकेंगे नहीं!

*** *** ***

सत्संग करनेवालोंके मनमें मरनेका भय नहीं होना चाहिये। कारण कि यह मृत्युलोक है, मरनेवालोंका लोक है। यहाँ कोई मरनेसे बच सकता ही नहीं। एक दिन मरना तो पड़ेगा ही। जब मरनेसे बच सकते ही नहीं तो फिर डर किस बातका? मरनेसे नहीं डरेंगे तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी! मरनेसे डरोगे तो मरते रहो और डरते रहो—इसका अन्त नहीं आयेगा। **अगर मरनेसे डरना छोड़ दो तो आपको अभय-पद मिल जायगा, मरना सदाके लिये मिट जायगा, मुक्ति हो जायगी, तत्त्वज्ञान हो जायगा, परमात्मप्राप्ति हो जायगी!** मरनेसे नहीं डरनेसे बड़ा भारी लाभ है और डरनेसे बड़ा भारी नुकसान है। अगर सत्संग करनेवाले भी मरनेसे डरते रहें तो सत्संग करनेवाले और सत्संग न करनेवालेमें क्या फर्क रहा? अगर मरनेका भय छूट जाय तो फिर किसी तरहका भय बाकी नहीं रहेगा।

भोजन नहीं मिले, पानी नहीं मिले तो मर जायँगे, इससे बढ़कर और क्या हानि होगी? भोजन करते हुए, पानी पीते हुए भी मरना तो पड़ेगा ही। फिर इनकी गरज क्यों करें? समयसे पहले कोई मरता नहीं। जीनेकी चाह होनेसे ही मरनेका भय होता है। जीनेकी चाह न हो तो मरनेका भय होता ही नहीं। न जीनेकी चाह रखो, न मरनेकी चाह रखो। हर अवस्थामें मस्त रहो।

संसारके प्रत्येक सुखसे पहले भी दुःख होता है और अन्तमें भी दुःख होता है। जैसे, भूखका दुःख न हो तो भोजनका सुख हो ही नहीं सकता। प्यासका दुःख न हो तो जल पीनेका सुख हो ही नहीं सकता। **संसारका सुख लेनेसे पहले दुःख आवश्यक है। सुखके अन्तमें दुःख होता ही है—यह नियम है। जिसके दोनों तरफ दुःख भरा हो, वह सुख क्या कामका?** भूख लगे तो भोजन कर लो, प्यास लगे तो जल पी लो, ठण्ड लगे तो कपड़ा ओढ़ लो, और न मिले तो नहीं सही! राजा-महाराजा, करोड़पति-अरबपतिको भी मनचाही चीज नहीं मिलती। उनको भी कमी रहती है। इसलिये हरेक परिस्थितिमें प्रसन्न रहो, अभय रहो। आप हरदम प्रसन्न रहो तो बाधा किस बातकी?

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्तिमें जो आड़ (विघ्न, बाधा) लगी है, वह नाशवान् है। उसमें कोई ताकत नहीं है। जितने भी पदार्थ देखने-सुननेमें आते हैं, कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है। संसारमात्र प्रतिक्षण बदल रहा है, अभावमें जा रहा है है। अभावमें जानेवाला आड़ क्या लगायेगा? कैसे लगायेगा? वास्तवमें अपना भाव ही आड़ लगा रहा है। रुपयोंको, भोगोंको, सुख-आरामको बढ़िया मान रखा है, यह बाधा है। विचार करें, आपने अपनी तरफसे संसारको पसन्द किया है या भगवान्‌को? अगर भगवान्‌को पसन्द किया है तो भगवान्‌की प्राप्ति होगी ही।

ईसाईलोग एक ईसा मसीहको ही ईश्वरका अंश (पुत्र) मानते हैं। परन्तु हमारे ग्रन्थोंमें, रामायणमें, गीतामें, उपनिषदोंमें सब-के-सब जीवोंको ईश्वरका अंश माना गया है। **कोई जीव ईश्वरका अंश न हो, ऐसा है ही नहीं।** भाई हो, बहन हो, छोटा हो, बड़ा हो, सदाचारी हो, दुराचारी हो, अच्छा हो, मन्दा हो, सब परमात्माके साक्षात् अंश हैं। अतः परमात्माके साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह कभी टूटनेवाला या मिटनेवाला है ही नहीं। यह सदा ज्यों-का-त्यों रहनेवाला है। परन्तु संसारका सम्बन्ध रहनेवाला है ही नहीं। पहले आपका बालकपनेके साथ सम्बन्ध था, आज वह नहीं है। फिर जवानी और वृद्धावस्थाके साथ कौन-सा सम्बन्ध रहेगा! जिसके साथ आपका सम्बन्ध है ही नहीं, रह सकता ही नहीं, उससे आप बँधे हुए कैसे हो? नाशवान् चीजसे आपको बाधा कैसे लग सकती है? आपकी तरफसे जो सम्बन्ध जोड़ा हुआ है, वही बाधक है। आप नहीं छोड़ोगे तो मरनेपर भी वह सम्बन्ध नहीं छूटेगा!

एक ही बात विचार करनेकी है कि आपने किसके साथ सम्बन्ध जोड़ा है और किसको आपने बढ़िया समझा है? **जिसके साथ आपने सम्बन्ध जोड़ा है, वही आपको बाँधेगा। इसके सिवाय और कोई आपको बाँधनेवाला, आपका अनिष्ट करनेवाला है ही नहीं।** सम्बन्धको जोड़ना और तोड़ना—दोनों आपको आते हैं। जैसे कन्या पीहरसे सम्बन्ध तोड़कर ससुरालकी हो जाती है, ऐसे ही आप संसारसे सम्बन्ध तोड़कर भगवान्‌के हो जाओ। जो सच्चे हृदयसे साधु हो जाता है, उसको कभी माँ-बापकी याद आती ही नहीं!

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'—बस, इतनी ही बात है, लम्बी-चौड़ी बात है ही नहीं! मीराबाईने सबको रास्ता बता दिया!

*** *** ***

एक परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है और हम परमात्माके अंश हैं—ये दो बातें आपको स्वीकार कर लेनी चाहिये। शरीर-संसार सब प्रकृतिका अंश है। शरीर हमारा नहीं है और हमारे लिये भी नहीं है—यह बात आपको पक्की मान लेनी चाहिये। शरीर संसारका है और संसारकी सेवाके लिये ही है। हम परमात्माके हैं और परमात्माके लिये हैं। परमात्मा हमारे लिये है, संसार हमारे लिये नहीं है। संसारकी चीज (शरीर) संसारको दे दी तो कामना कैसी? परमात्माकी चीज (स्वयं) परमात्माको दे दी तो कामना कैसी? **न संसारसे कुछ चाहना है, न परमात्मासे कुछ चाहना है।** संसार संसारके काम ही आता है, हमारे काम आता ही नहीं। नाशवान् चीज अविनाशीको क्या देगी?

एक दिन मरना तो पड़ेगा ही, मरनेसे बच सकते नहीं, फिर मरनेसे डर कैसा? मरना तो अवश्यम्भावी है; खाते-खाते मर जायँ अथवा बिना खाये मर जायँ, क्या हर्ज है? **जीना चाहते हैं, इसलिये मरनेसे डर लगता है।** जी तो सकते नहीं, फिर जीनेकी इच्छा क्यों करें? और मरनेकी भी इच्छा क्यों करें? **जो मरनेसे डरता है, वही मरता है। जो मरनेसे नहीं डरता, वह मरता ही**

नहीं। हम चेतन-विभागमें हैं, शरीर जड़-विभागमें है। शरीर मरता है, हम नहीं मरते। फिर हम क्यों डरें और क्यों मरें? **डरनेपर आपकी स्थिति शरीरमें होती है। डरे नहीं तो आपकी स्थिति स्वरूपमें होती है।** भीतरसे डर निकाल दो तो परमपदकी प्राप्ति हो जाय! मरनेका डर मिट जाय तो मरना ही मिट जायगा! सन्तोंने कहा है—

राम मरे तो मैं मरूँ, नहिं तो मरे बलाय।
अविनाशी का बालका, मरे न मारा जाय॥

*** *** ***

हम साधन एकदेशीय करते हैं। वास्तवमें साधन सर्वदेशीय होना चाहिये। सन्तोंने कहा है कि चौबीस घण्टे साधन होना चाहिये। तेईस घण्टे उन्सठ मिनट भजन किया, पर एक मिनट भजन नहीं किया तो भजन नहीं हुआ। दोनों बातोंका मिलान करनेपर एक बात मालूम होती है कि अपने-आपको बदल देना चाहिये। जैसे कन्या विवाह होनेपर अपनेको बदल देती है, साधु होनेवाला अपनेको बदल देता है, ऐसे ही परमात्मप्राप्ति चाहनेवाला साधक भीतरसे अपनेको बदल दे कि 'मैं तो भगवान्‌का हूँ'।

साधन (क्रिया) निरन्तर नहीं होता, पर सम्बन्ध निरन्तर होता है। **साधक कोई-सा भी साधन करे, पर अपना सम्बन्ध परमात्माके साथ ही रखे।** जबतक अन्यके साथ सम्बन्ध रहेगा, तबतक भजन नहीं होगा। **जिसको आप भगवत्प्राप्तिका साधन मानते हैं, वह वास्तवमें भगवत्प्राप्तिका साधन नहीं होता। असली साधन तब होता है, जब आपका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ होता है।** जैसे स्त्री पीहरमें आती है तो वह पीहरका सब काम भलीभाँति करते हुए भी मनसे ससुरालकी बनी रहती है, ऐसे ही आप भगवत्प्राप्ति चाहते हैं तो संसारमें रहते हुए भी भीतरसे सम्बन्ध भगवान्‌के साथ रखो। सन्तसे, गुरुसे भी सम्बन्ध मत जोड़ो; उनकी बात मानो।

आप भगवान्‌के हो जाओ तो आपका सब काम भगवान्‌का भजन हो जायगा। **हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह असली भजन है।**

*** *** ***

जड़ और चेतन, नाशवान् और अविनाशी—ये दो विभाग हैं। इनको अगर समझ लो तो बहुत लाभकी बात है। **शरीरके रहते आप शरीरसे अलग हो।** शरीर यहीं बनता है और यहीं छूट जाता है। शरीर यहाँकी चीज है, पर आप परमात्माके अंश हो। यह बात मैं बार-बार कहता हूँ; क्योंकि यह जाननेकी खास बात है।

शरीर संसारका साथी है, आप परमात्माके साथी हैं। उस परमात्माको आप माँ, बाप, भाई, मित्र आदि चाहे जो मान लो। **जो कभी अलग होगा, वह (शरीर) अभी अलग है और जो कभी मिलेगा, वह (परमात्मा) अभी मिला हुआ है।** मेरे विचारसे आप इधर ध्यान नहीं देते! आप संसारमें, स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदिमें सुख ढूँढ़ते हो, पर सुख मिलता नहीं, सुखका वहम होता है। सुख तो आपका स्वरूप है। अगर आप संसारका सम्बन्ध छोड़ दो तो आज, अभी, इसी क्षण आनन्द हो जाय! इसमें आप समर्थ हो। आपमें जड़से अलग होनेकी ताकत है। **आपमें जो ताकत है, वह देवताओंमें भी नहीं है!** आपमें सन्त-महात्मा, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी होनेकी ताकत है।

आप ऐसा मत समझो कि हम पापी हैं, हमारे कर्म खराब हैं। वह खराबी ऊपर-ऊपर ही रहती है, आपतक नहीं पहुँचती। आपकी सच्चाई सदा आपके साथ रहती है, कभी आपको छोड़ती

नहीं। इतने महान् पवित्र आप हो, आपको बनना नहीं है। भीतरसे आप परमात्माके अंश हो, पर शरीरके साथ मिलकर आप अपनेको बालक, जवान, बूढ़ा, धनी, निर्धन, छोटा, बड़ा आदि मान लेते हो। जैसे आकाशमें बादल आ जायँ तो गर्जना होने लगती है, बिजली चमकने लगती है, वर्षा होने लगती है, ओले गिरने लगते हैं, पर बादमें ये सब मिट जाते हैं और आकाश साफ हो जाता है। ऐसे ही आप आकाशकी तरह साफ हो। यह शरीर बादलकी तरह है, जो मिट जायगा। **अभी भी आप शरीरसे अलग हो। जो कभी अलग होगा, वह सदा ही अलग है—यह बहुत दामी बात है!** केवल चाहनाके कारण आप बँधे हुए हो। आप चाहनाका सर्वथा त्याग कर दो तो आप सन्त-महात्मा, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ हो जाओगे, सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाओगे। इसमें आप सब स्वतन्त्र हो। मिलनेवाली वस्तु इच्छा न करनेपर भी मिलेगी और न मिलनेवाली वस्तु कितनी ही इच्छा करनेपर भी नहीं मिलेगी। इच्छा करना कोरी अपनी बेइज्जती करना है।

ऋषिकेश झाड़ीमें स्वयंज्योतिजी महाराज रहते थे। एक बार उनकी चद्दर फट गयी तो साधु माधवदासजीने कहा कि मेरे पास सुई-धागा है, आप चद्दर मेरेको दे दीजिये। उन्होंने देनेसे मना कर दिया और कहा कि तुम सुई-धागा ले आना। माधवदासजीने सुई-धागा लाकर चद्दर सिल दी और कहा कि महाराज, यह सुई-धागा आप रख लीजिये, मेरे पास और है। महाराजने पूछा—क्यों? तो वे बोले कि फिर भी सुई-धागा चाहिये होगा! ऐसा सुनते ही महाराज बोले कि इस 'चाहिये' को छोड़नेके लिये ही तो यहाँ बैठे हैं!

किसीने एक साधुसे पूछा कि आपके पास तो कुछ नहीं है, फिर भूख लगनेपर क्या करते हैं? वे बोले कि गाँवमें चले जाते हैं और भिक्षामें जो मिल जाता है, खा लेते हैं। फिर पूछा कि अगर कुछ नहीं मिले तो? वे बोले कि भूखको ही खा लेते हैं! भूखको खाना क्या? कि आज भोजन नहीं करेंगे!

हम किसी वस्तुके गुलाम क्यों बनें? मिल जाय तो ठीक, नहीं मिले तो नहीं सही। यह '**नहीं सही**' बहुत बढ़िया मन्त्र है! कोई इच्छा नहीं रहे तो जीयें तो भी मौज, मरें तो भी मौज! मरनेसे पहले ही आपको तत्त्वज्ञान हो जायगा!

***　　***　　***

कोई परमात्माको प्राप्त करना चाहता हो तो उसको सबसे पहले संसारका त्याग करना होगा। त्याग करनेका यह अर्थ नहीं कि साधु होकर चले जायँ। मनमें रुपयोंका और भोगोंका महत्त्व न रहे। रुपयों और भोगोंकी आसक्ति जितनी मिटेगी, उतनी परमात्माकी तरफ उन्नति होगी। **जबतक रुपये और भोग अच्छे लगेंगे, तबतक पारमार्थिक उन्नति नहीं होगी।** चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ हो; चाहे भाई हो, चाहे बहन हो; चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय आदि हो, सबके लिये यह बात है। जिसकी वृत्ति पतनकी तरफ है, वह ऊँचा कैसे जायगा? जिसको रुपये प्यारे लगते हैं, चेला-चेली प्यारे लगते हैं, अपने अनुयायी प्यारे लगते हैं, उसकी पारमार्थिक उन्नति कैसे होगी? यह सम्भव नहीं है।

वास्तवमें रुपये और भोग बाधक नहीं हैं, इनकी इच्छा बाधक है। संसार बाधक नहीं है, संसारका सम्बन्ध, प्रियता, महत्त्व बाधक है। बैंकमें कितने ही रुपये पड़े हों, उनसे हमारा बन्धन नहीं होता। जिन रुपयोंको अपना मानते हैं, उनसे बन्धन होता है। **रुपयों और भोगोंकी आसक्ति अगर मिट रही है तो साधन ठीक है, अगर नहीं मिट रही है तो साधन शुरू ही नहीं हुआ है!**

किया हुआ साधन, सत्संग व्यर्थ तो नहीं जायगा, पर कई जन्मोंमें उद्धार होगा! अगर इसी जन्ममें उद्धार चाहते हो तो इनकी आसक्तिका त्याग करो। जिनकी ज्यादा उम्र हो गयी है, बेटे-पोते कमाने लग गये हैं, नौकरीसे रिटायर हो गये हैं, उनको तो पारमार्थिक उन्नतिपर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके सिवाय वे और क्या चाहते हैं? जो साधु हो गये, उनको मुफ्तमें रोटी-कपड़ा मिलता है, फिर एक पारमार्थिक उन्नतिके सिवाय उनको और क्या काम करना है?

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की कृपा और दयामें क्या फर्क है?

स्वामीजी—हमारे मनके प्रतिकूल क्रिया होनेपर 'कृपा' होती है और मनके अनुकूल क्रिया होनेपर 'दया' होती है। हम अनुकूलतामें प्रसन्न होते हैं, प्रतिकूलतामें प्रसन्न नहीं होते। यद्यपि प्रतिकूलता हमें अच्छी नहीं लगती, तथापि प्रतिकूलतामें लाभ ज्यादा होता है। अनुकूलतामें सुख मिलता है, भगवान् अच्छे लगते हैं, पर उतना लाभ नहीं होता, जितना प्रतिकूलतामें होता है। **प्रतिकूलतामें पापोंका नाश होता है, निर्बल सबल बनता है, धैर्य दृढ़ होता है और साधनकी वृद्धि होती है। परन्तु यह उस समय नहीं दीखता। प्रतिकूलता जानेके बाद खुदको मालूम होता है कि प्रतिकूलतामें हमें ज्यादा लाभ हुआ है।**

दुरजन की किरपा बुरी, भली सजन की त्रास।
बादल कर गरमी करे, जद बरसन की आस॥

कोई भी परिस्थिति आये, भक्तको तो लाभ-ही-लाभ होता है। हमें न तो अनुकूलताकी चाह करनी है, न प्रतिकूलताकी। हमें तो अचाह होना है। **हमारा मूल्य सब संसारसे अधिक है।** जो प्रतिकूलतामें प्रसन्न रहता है, उसके लिये दुःखके सब रास्ते बन्द हो जाते हैं! दुःख आये तो कहाँसे आये?

हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—ऐसा मान लो तो फिर हरदम आनन्द रहेगा। मीराबाईका मन्त्र है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। यह बात आप हृदयसे स्वीकार कर लें। एक सन्तके पास कोई आया और बोला कि महाराज, आप अकेले कैसे बैठे हैं? सन्त बोले कि तेरे आनेसे अकेला हो गया! तू नहीं आया तो भगवान् मेरे साथ थे, तू आया तो भगवान् छिप गये! **भगवान्‌के सिवाय दूसरेको अपना माना कि अकेला हुआ!** दूसरेको अपना नहीं माना तो अकेला है ही नहीं।

*** *** ***

श्रोता—शास्त्रोंमें कहीं तो पशुबलि देनेकी बात आयी है और कहीं पशुबलिका निषेध किया गया है, ऐसा फर्क क्यों?

स्वामीजी—जितने भी बलि देते हैं, संसारकी कामनावाले ही देते हैं। कल्याण चाहनेवाले बलि देते ही नहीं। अर्जुनने भी गीतामें भगवान्‌से पूछा है कि मनुष्य न चाहते हुए भी पाप क्यों करता है? उत्तरमें भगवान्‌ने कहा है कि कामनाके कारण ही मनुष्य पाप करता है (गीता ३। ३६-३७)।

श्रोता—ऐसा कहते हैं कि '**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति**'?

स्वामीजी—सांख्यदर्शनमें इसका खूब अच्छी तरहसे विवेचन आया है। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला इन्द्र बनता है। वह इन्द्र भी दुःख पाता है, असुरोंके भयसे भागता-फिरता है, छिपता है! आप विचार करें कि सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रपर बार-बार आफत क्यों आती है? वह हरदम सुखी क्यों नहीं

रहता? इसका कारण यह है कि यज्ञमें जो हिंसा की गयी है, उसके पापका फल इन्द्रको भोगना पड़ता है।

संसारमें दो तरहके मनुष्य हैं—मुक्ति चाहनेवाले और भोग चाहनेवाले। वेद-पुराण सबके माँ-बाप हैं। माँ-बाप अपने बच्चेके लिये पैसे खर्च करके मिट्टीका खिलौना क्यों लाते हैं? क्योंकि बच्चा मिट्टीका खिलौना चाहता है और उसीसे राजी होता है। इसी तरह जिन लोगोंके भीतर संसारकी कामना है, उन लोगोंके लिये ही शास्त्रोंमें बलिकी बात लिखी है। कामनारहित तथा कल्याण चाहनेवाले लोगोंके लिये कहीं भी बलिकी बात नहीं लिखी है। बलिका फल मुक्ति कहीं भी लिखा हो तो बताओ!

*** *** ***

शास्त्रोंमें यह जो बात आती है कि मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है और इससे परमात्माकी प्राप्ति होती है, तो वहाँ मनुष्यशरीर 'विवेक' का वाचक है, स्थूलशरीरका वाचक नहीं है। **सत्संग करनेवालेको कम-से-कम, कम-से-कम जड़-चेतनका विवेक तो होना ही चाहिये कि शरीर अलग चीज है, मैं अलग हूँ। अगर इतना भी विवेक नहीं है तो सत्संग क्या किया!**

श्रोता—इस बातका अनुभव क्यों नहीं होता?

स्वामीजी—अनुभव इसलिये नहीं होता कि आप शरीरसे सुख चाहते हो। आपकी शरीरके सम्बन्धसे होनेवाले सुखकी आसक्ति है। जो साधक होता है, वह सुखभोगका त्याग करता है, नहीं तो भोगीमें और साधकमें फर्क क्या हुआ? **साधक होते ही भोगीपना नष्ट हो जाता है।**

श्रोता—संसारका सुख स्वयंतक पहुँचता कैसे है?

स्वामीजी—सुख तो शरीरतक ही पहुँचता है। परन्तु शरीरके साथ एकता होनेके कारण शरीरकी अनुकूलताको आप अपनी अनुकूलता मान लेते हो, इसलिये सुखभोग होता है। इतना ही नहीं, शरीरके साथ एकता होनेसे लोग मत-मतान्तरतक अपनेमें मान लेते हैं कि मैं ज्ञानमार्गी हूँ अथवा मैं भक्तिमार्गी हूँ। ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी आपसमें लड़ पड़ते हैं!

वास्तवमें ज्ञानमार्गीसे भक्तिमार्गी श्रेष्ठ है। ज्ञानमार्गी तो स्वरूप (अंश)-को जानता है, पर भक्तिमार्गी स्वरूप जिसका अंश है, उसको (अंशी परमात्माको) जानता है।

*** *** ***

संसार प्यारा लगता है—यही हमारा पतन है! आप परमात्माके अंश हो और संसार नाशवान् है। नाशवान्में मन लगाओगे तो नाश-ही-नाश, पतन-ही-पतन होगा। संसारके पदार्थ, कुटुम्ब, रुपये अच्छे तो लगते हैं, पर इसका परिणाम बड़ा खराब होता है। आपके साथ विश्वासघात होगा। एक कौड़ी भी आपके काम आयेगी नहीं और आपका समय बर्बाद हो जायगा। इसलिये भगवान्को याद करो। सच्चे हृदयसे उनको पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। **आपने संसारको अपना मान लिया—यह बड़ी भारी गलती हुई है! सिवाय भगवान्के अपना कोई नहीं है, अपना कोई नहीं है, अपना कोई नहीं है!!** संसारमें सब चीजें सेवाके लिये ही मिली हैं। **संसारकी सेवा करो, पर भरोसा मत करो। भरोसा एक भगवान्का करो।** 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर भगवान्को पुकारो। आपको संसार नजदीक दीखता है, पर नजदीक है नहीं। नजदीक केवल भगवान् हैं।

आपसे जितना हो सके, सेवा करो। हृदयमें सबके हितका भाव रखो। रामायणमें आया है—

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

(मानस, उत्तर० १०३। ४)

हृदयमें यह भावना रखो कि सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबका भला हो जाय, किसीको कभी दु:ख न हो, तो आपका पुण्य हो जायगा। आपके दो ही खास काम हैं—दीन-दुखियोंकी सेवा करो और भगवान्‌को याद करो।

जो भगवान्‌को इसलिये याद करते हैं कि हमें धन मिले, पुत्र मिले, हमारा मान-सत्कार हो, हमारा आदर हो, हमारी उन्नति हो आदि, वे भगवान्‌को साधन बनाते हैं, साध्य नहीं। **आप भगवान्‌को साध्य बनाओ, साधन मत बनाओ।** भगवान् ही साध्य हैं, प्रापणीय हैं। उनको ही प्राप्त करना है।

*** *** ***

मेरा स्वभाव खोज करनेका है, इसलिये मेरेको तात्त्विक बातें बहुत मिली हैं। जल्दी और सुगमतासे कल्याण कैसे हो—इसकी खोजमें मैं लगा हूँ। प्रत्यक्ष बात है कि जो एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, हरदम नष्ट हो रहा है, उस संसारमें आप रात-दिन लगे हुए हो, यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! ऋषिकेशमें मेरेसे कहा गया कि स्वामीजी, वैराग्यकी बात बताओ। तब मेरे मनमें आयी कि इसी समय उठकर चल दूँ, पीछे आऊँ ही नहीं—यह वैराग्यकी बात है! कभी-कभी तरंग आती है!

छोटी-सी बात भी आप मानते नहीं। एक चोटी रखनेमें भी आपको बड़ी मुश्किल हो रही है! यह आपकी हानिकी बात नहीं है, आपके कल्याणकी बात है। चोटी न रखनेसे आपको क्या लाभ हो रहा है, और चोटी रखनेसे क्या हानि हो जायगी? बताओ। उल्टा चलनेमें आपका इतना उत्साह है, सुल्टा चलनेमें बिल्कुल नहीं! अपने धर्मका त्याग करनेमें आपको प्रसन्नता हो रही है! आप मूर्ख हैं, आपमें बुद्धि नहीं है, योग्यता नहीं है—ऐसा मैं नहीं मानता, पर आप उल्टे चलते हो, इसका दु:ख होता है!

*** *** ***

श्रोता—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगमें सबसे सरल कौन-सा है?

स्वामीजी—भगवान्‌में श्रद्धा हो तो भक्तियोग सबसे सरल है।

श्रोता—अगर हम अभी इस उम्रमें भक्तिमें लग जायँगे तो कुटुम्बका पालन कैसे होगा?

स्वामीजी—कुटुम्बका पालन बढ़िया होगा। भक्तिमें लग जाओगे तो घरका नुकसान नहीं होगा। वास्तवमें आपने भक्तिको समझा नहीं! सब छोड़कर जंगलमें चले जाना भक्ति नहीं है। भक्ति है—भगवान् प्यारे लगें, अच्छे लगें, मीठे लगें। इससे कुटुम्बको भी फायदा होगा। घरवाले पहले नाराज हो सकते हैं, फिर नहीं होंगे।

श्रोता—मुझे रोज पूजा-पाठ करनेका समय नहीं मिलता और न ही मुझे कोई पूजा-पाठ याद है। पूजाकी कोई सही विधि बतायें।

स्वामीजी—सही विधि है—जो भी काम करो, सब काम भगवान्‌की पूजा समझकर करो। पाप तो होगा नहीं; क्योंकि आपकी नीयत अच्छी है। गीतामें लिखा है—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**' (गीता १८। ४६) 'उस परमात्माका अपने कर्मके द्वारा पूजन करके मनुष्यमात्र सिद्धिको प्राप्त हो जाता है'।

पारमार्थिक मार्गमें लाभ-ही-लाभ है, नुकसान है ही नहीं। जो नुकसान समझते हैं, वे वास्तवमें

समझे नहीं। असली मार्गमें नुकसान कैसे होगा? भागवतमें लिखा है कि इस मार्गमें कोई आँखें मीचकर दौड़े तो भी न लड़खड़ाता है, न गिरता है—**'धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह'** (श्रीमद्भा० ११। २। ३५)।

*** *** ***

जो परमात्मा सब जगह समानरूपसे परिपूर्ण है, उसीमें अपनी स्थिति है। शरीरमें अपनी स्थिति भ्रमसे मालूम होती है। शरीर यहीं रह जाता है, आप चले जाते हैं। जीवरूपसे आप चले जाते हैं, पर तत्त्वरूपसे आप सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण हैं। प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होनेसे आप शरीरी हो गये। वास्तवमें आप शरीरी नहीं हैं। आपने चौरासी लाख शरीर धारण किये और छोड़ दिये। आप किसी शरीरमें नहीं रहे, फिर इस मनुष्यशरीरमें कैसे रहेंगे? इसको भी आप छोड़ देंगे। **शरीर आपके कामका नहीं है। आपके कामके परमात्मा हैं।**

मनुष्यशरीरको दुर्लभ बताया गया है तो इसमें जो विवेकशक्ति है, वह दुर्लभ है। ऐसा विवेक दूसरे शरीरोंमें नहीं है। देवताओंमें यह विवेक है, पर वे भोगोंमें लगे हुए हैं; अत: वे इस तरफ ध्यान नहीं देते। अपने यहाँ भी जो ज्यादा धनी व्यक्ति हैं, वे प्राय: सत्संगमें नहीं आते, इन बातोंकी तरफ ध्यान नहीं देते। वे 'करना' और 'पाना'—इन दो बातोंमें उलझे हुए रहते हैं। वे भोग और संग्रहमें ही लाभ मानते हैं। अत: उनमें विवेक होते हुए भी काम नहीं करता। जो रुपयोंको ही श्रेष्ठ मानते हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है! **रुपयोंसे जड़ वस्तु मिल सकती है, पर भगवान् और सन्त-महात्मा रुपयोंसे नहीं मिलते।**

*** *** ***

बात आपने उल्टी पकड़ रखी है! जो परमात्मा नित्यप्राप्त है, उसको आपने बड़ा कठिन और बड़ा दूर समझ रखा है। संसार कभी मिला नहीं, कभी मिलेगा नहीं, मिल सकता नहीं, उसको अपने पास मान रखा है। यह मान्यता सर्वथा भ्रम है। जो संसार एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, प्रतिक्षण नष्ट होता है, वह मिल कैसे सकता है? जो परमात्मा सर्वव्यापक है, सबमें परिपूर्ण है, वह दूर कैसे हो सकता है? **सर्वसमर्थ होनेपर भी भगवान्‌में ताकत नहीं है कि हमारेसे दूर हो जायँ!** वे प्राणिमात्रके हृदय (अन्त:करण)-में विराजमान हैं। जो अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु हैं, जिनको दूरबीनसे देखते हैं, उनके हृदयमें भी भगवान् विराजमान हैं! ऐसे भगवान्‌को आपने दूर और अप्राप्त मान रखा है! इस विपरीत धारणामें ही संसारके सम्पूर्ण दु:ख हैं।

आप भगवान्‌की कृपासे ही दीख रहे हैं। जैसे, अँधेरेमें रस्सीमें साँप दीखता है तो वह रस्सीसे ही दीखता है। रस्सी न हो तो साँप दीखे ही नहीं। आप साँपको तो सच्चा मानते हैं और रस्सीको झूठा मानते हैं! प्राप्त परमात्माको अप्राप्त मान लिया और अप्राप्त संसारको प्राप्त मान लिया। केवल मान्यता विपरीत की है, और कुछ नहीं। यह उल्लूपना है! उल्लूको दिनमें रात और रातमें दिन दीखता है।

आप परमात्माकी जगह ही संसारको देख रहे हैं, संसार है नहीं। **मेरे मनमें ऐसी आती है कि न दीखनेपर भी साधक मान ले कि परमात्मा हरदम मेरे पास हैं, तो निहाल हो जाय!**

*** *** ***

वर्तमानमें देखा जाय तो लोगोंका भाव बहुत गिर रहा है। गायें मर रही हैं, पर उनको परवाह नहीं है! आपसे प्रार्थना है कि अपना भाव मत गिराओ। भाव शुद्ध बनाओ। शुद्ध भाव होनेसे आपका

कल्याण होगा। अपने हृदयमें प्राणिमात्रके हितका भाव रखो कि सबका कल्याण हो जाय, सब नीरोग हो जायँ, सब भगवान्‌के भक्त बन जायँ, सबका दुःख मिट जाय। **आपका भाव शुद्ध होगा तो वायुमण्डल भी शुद्ध बनेगा, वर्षा भी होगी। सब काम ठीक होगा।**

हम देखते हैं कि पहले फाल्गुनके महीनेमें खूब हवा चलती थी, अब हवा कम हो गयी है! पाप बढ़ जानेसे पानीकी तंगी हो रही है! कुओंमें पानी नीचे जा रहा है! लोग कहते हैं कि जनसंख्या बढ़ जानेसे अन्न मिलना मुश्किल हो जायगा। हम कहते हैं कि परिवार-नियोजन और गर्भपातके परिणामस्वरूप पानी मिलना भी मुश्किल हो जायगा! पहले गंगाजीका प्रवाह विशेष ऊँचा था, अब बहुत कम हो गया! गंगाजी छोटी हो गयीं। लोग कहते हैं कि गंगाजी सौ वर्षोंमें लुप्त हो जायगी, पर हमें ऐसा दीखता है कि सौ वर्षोंके पहले ही लुप्त हो जायगी! जंगलमें बेलके बहुत वृक्ष थे और बड़े-बड़े बेल लगते थे, पर अब बेलके वृक्ष थोड़े हो गये और बेल भी छोटे-छोटे लगने लगे! हमारे देखते-देखते ये बातें हो गयीं! पहले मनुष्योंमें उदारता रहती थी, अब वह उदारता मिट गयी है। स्वार्थ बहुत ज्यादा बढ़ गया है! कुत्ते आपसमें खेलते हैं, पर रोटीको देखते ही उनमें लड़ाई हो जाती है! यह दशा आज मनुष्योंकी हो रही है!

आपलोगोंसे प्रार्थना है कि भगवान्‌को याद करो, उनके नामका जप करो, कीर्तन करो, उनके पद गाओ, उनकी लीला पढ़ो, भक्तोंके चरित्र पढ़ो, दीन-दुखियों तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करो। भगवान्‌की तरफ वृत्ति होनेसे भाव स्वतः शुद्ध होगा। भाव शुद्ध होगा तो सब लोग सुखी होंगे। भाव अशुद्ध होगा तो रक्षा होनी मुश्किल हो जायगी! **भाव अशुद्ध होनेसे दुनियामें आफत आ रही है, अकाल पड़ रहा है, वर्षा नहीं हो रही है।** अपना भाव शुद्ध बनाओ तो इससे दुनियामात्रको फायदा होगा।

***　　　***　　　***

केवल परमात्माकी आवश्यकताका अनुभव करो तो वह पूरी हो जायगी। इससे सुगम बात और क्या होगी? धनकी आवश्यकता होनेसे धन नहीं मिलता, पर परमात्माकी आवश्यकता होनेसे परमात्मा मिल जाते हैं। आप केवल अपनी आवश्यकताको बढ़ाओ। बेपरवाहीसे ही सब काम बिगड़ रहा है। चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम यह चाहना रहे कि भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय! भगवान्‌में प्रेम हो जाय! भगवान् मीठे लगें! जितना भगवान्‌को याद करोगे, उतनी आपकी स्वतः उन्नति होगी। संसार कितना ही मीठा लगे, वह मिलेगा नहीं, पर भगवान् मीठे लगें तो वे मिल ही जायँगे। केवल आवश्यकताका अनुभव करो कि हमें भगवान् मिलने चाहिये।

***　　　***　　　***

मनुष्यको चाहिये कि अपना ध्येय पक्का बना ले। चाहे सुख आये, चाहे दुःख आये, हमें तो परमात्माकी प्राप्ति करनी है। फिर भोगोंमें मन जाय तो कह दे कि यह हमारा लक्ष्य नहीं है। बार-बार अपने लक्ष्यपर ही विचार करे। हमें किसीसे कुछ लेना-देना नहीं, किसीसे कोई मतलब नहीं, हमें तो केवल भगवान्‌से मतलब है।

तेरे भावै कछु करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तु बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

×　　　×　　　×

बैठ संतोंकी संगत में, करूँ कल्याण मैं अपना।
लोग दुनियाँ के भोगों में, मौज लूटे तो लूटण दे॥

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठण दे॥

भोग मिलें या न मिलें, सुख मिले या न मिले, आराम मिले या न मिले, हमें इनसे कोई मतलब नहीं है। जिसे बद्रीनाथ जाना हो, वह यात्राकी सुगमता या कठिनताको नहीं देखता। बार-बार यही विचार करे कि हमें दूसरी तरफ जाना ही नहीं है। इसमें ढिलाई न रखे। लक्ष्यमें ढिलाई होनेसे ही वृत्तियाँ खराब होती हैं। **भोगोंकी, मान-बड़ाईकी आसक्ति तभीतक तंग करती है, जबतक अपने मनमें ढिलाई है। उद्देश्यमें ढिलाई होनेके कारण ही तरह-तरहके विघ्न आते हैं।** भोगोंमें ताकत नहीं है कि हमें विचलित कर दें। हमारी ढिलाई हमें विचलित करती है। **विघ्न बाहरसे नहीं आते, अपने भीतरसे आते हैं।**

अपने भीतर दृढ़ता कम होती है, तब भोगोंमें मन जाता है। जब भी मन भोगोंकी तरफ जाय, तभी विचार करे कि ना-ना, हमें इस तरफ जाना ही नहीं है, यह हमारा ध्येय नहीं है। ध्येय जितना दृढ़ होगा, उतनी ही शान्ति मिलेगी। कोई कहे इस भोगमें बड़ा सुख है, तो कहो कि हमें सुख लेना ही नहीं है; इसमें बड़ा लाभ है तो हमें लाभ लेना ही नहीं है। जैसे, भोजन मिले तो कभी मांसकी इच्छा होती है? घी-दूध याद आ जायँगे, पर मांस कभी याद ही नहीं आता; क्योंकि उससे हमारा मतलब ही नहीं है। मांस छू भी जाय तो हम कपड़ोंसहित स्नान करेंगे; क्योंकि मुरदा छू गया! पूज्य पिताजीका शरीर भी शान्त हो जाय तो उनको छूनेपर कपड़ोंसहित स्नान करते हैं; क्योंकि प्राण निकलनेके बाद वह मुरदा है।

जो सच्चे हृदयसे रुपयोंका त्याग कर देता है, वह फिर सुख पाये या दुःख पाये, उसके मनमें यह आती ही नहीं कि रुपये होते तो ठीक रहता। उसके भीतर स्वप्नमें भी यह दृढ़ता रहती है कि हमें रुपयोंका संग्रह नहीं करना है। पैसोंके बिना तकलीफ होती है तो उसमें भी उसको आनन्द आता है। परन्तु जिसका परमात्मप्राप्तिका भी उद्देश्य है और साथ-साथ रुपयोंका भी उद्देश्य है, उसीके मनमें यह बात आती है कि रुपये होते तो अच्छा होता, दुःख नहीं पाना पड़ता। खुदकी कचास (कच्चापना) ही भोगोंकी इच्छा पैदा करती है। जो चीज आपने छोड़ दी है, उसकी लालसा नहीं होती; यदि होती है तो भीतरसे छोड़ी नहीं है।

एक पक्का विचार हो जाय तो बड़ी शान्ति मिलती है। प्रतिकूल परिस्थितिमें भी आनन्द आता है। परमात्माकी प्राप्तिमें देरी हो तो भी घबराहट नहीं होती। आज जो चित्तमें दुःख होता है, सन्ताप होता है, विचलित होते हैं, भोगोंमें मन जाता है, साधन ठीक नहीं होता है, इसका कारण यही है कि भीतरमें ध्येय पक्का नहीं है।

***　　　　***　　　　***

अभी लोगोंमें चोटी न रखनेकी जो चाल है, इसका परिणाम बहुत खराब होगा! परिवार-नियोजन करना और चोटी न रखना—ये दो चीजें आपका नाश करनेवाली हैं! आप इस बातको मामूली समझते हो, पर मेरे चित्तमें इस बातका बड़ा दुःख है! अगर अपना भला चाहते हो तो सब भाइयोंको चोटी रखनी चाहिये। आप विधर्मियोंके वशमें हो गये हैं। अभी चेत न किया तो पश्चात्ताप करना पड़ेगा। आज यहाँ (बीकानेरमें) अन्तिम सत्संग है। मेरी अन्तिम पुकार है कि आप चोटी रखो। माताओंको चाहिये कि बच्चोंकी चोटी रखें। यह मेरी सबसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है। हिन्दूमात्रको चोटी रखनी चाहिये, नहीं तो बड़ा भारी नुकसान है!

दूसरी सार बात यह है कि भगवान्‌को अपना मानो। जैसे अपने माँ-बाप, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन

प्यारे लगते हैं, उनसे भी अधिक भगवान् प्यारे लगने चाहिये। हमारा यह शरीर भी अपना नहीं है। यह भी एक दिन छूट जायगा। एक केश भी आपके साथ रहेगा नहीं! भगवान्‌को अपना मान लो तो निहाल हो जाओगे। एक भगवान्‌के सिवाय कोई हमारा हित करनेवाला नहीं है।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

एक आदमीने शरणानन्दजी महाराजसे कहा कि जिनके पास ज्यादा धन है, वे आधा धन निर्धनको दे दें तो वे भी सुखी हो जायँ। शरणानन्दजीने पूछा कि क्या तुम्हारा पक्का विचार है? वह बोला कि हाँ, पक्का विचार है। शरणानन्दजीने कहा कि मेरी आँखें नहीं हैं, तुम्हारे पास दो आँखें हैं तो एक आँख मेरेको दे दो। एक आँखसे तुम्हारा भी काम चल जायगा और मेरा भी। यह सुनते ही वह भाग गया, ठहरा नहीं! कारण यह है कि लोग भीतरमें दूसरेका धन देखकर जलते हैं, पर बाहरसे निर्धनोंके हितकी कोरी बात बनाते हैं। इसलिये भगवान्‌के समान दूसरेका हित चाहनेवाला कोई नहीं है।

इतने बड़े संसारमें तिल-जितनी चीज भी आपकी नहीं है, नहीं है, नहीं है! उसके भरोसे बैठे हो, बड़ा भारी धोखा होगा! पिछले जन्मकी कोई चीज आपके साथ है क्या? ऐसे ही इस जन्मकी तिल-जितनी चीज भी आपके साथ जायगी नहीं। इसलिये भगवान्‌को ही अपना मानो, उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ो, उनको याद करो, उनके नामका जप करो, कीर्तन करो। सच्चे हृदयसे उनको पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आप भगवान्‌को भूले हैं, भगवान् आपको नहीं भूले हैं। न धनकी जरूरत है, न बलकी जरूरत है, न विद्याकी जरूरत है, न योग्यताकी जरूरत है, केवल भगवान्‌को याद करना है। इससे सस्ता कोई काम नहीं है।

जैसे आपने बड़ी मेहनतसे कुआँ खोदा, पर उसमेंसे पानी निकला ही नहीं तो अब उस कुएँको आप किस काममें लोगे? पानीके बिना कुआँ कोई कामका नहीं होता, ऐसे ही भगवान्‌के भजनके बिना मनुष्यशरीर कोई कामका नहीं है।

*** *** ***

भगवान्‌का चिन्तन-भजन करना लाभदायक है, पर उससे भी ज्यादा लाभदायक है—भगवान्‌को अपना मानना। इससे बहुत जल्दी कल्याण होता है। चिन्तन निरन्तर नहीं होता, पर अपनेपनका सम्बन्ध निरन्तर रहता है। भगवान्‌का सम्बन्ध अखण्ड, अटल नित्य होता है—इस बातको भगवान् तथा उनके भक्त ही जानते हैं।

एक मार्मिक बात है। हमलोग यह चाहते हैं कि हमें अच्छे, ऊँचे महात्मा मिलें तो हम उनका संग करें। अगर यही बात स्वयं ऊँचे महात्मा भी विचार करें तो हमारे साथ माथापच्ची कौन करेगा? परन्तु वे महात्मा इस बातको समझते हैं कि ऊँचोंकी अपेक्षा छोटोंसे विशेष लाभ होता है। इसलिये वे दया करके छोटोंको सँभालते हैं। एकान्तमें भजन करना उनको आता है। वे एकान्तमें भजन करना नहीं जानते—ऐसी बात नहीं है। परन्तु **वे अपने भजनसे भी विशेष महत्त्व सत्संगको देते हैं; क्योंकि जीवोंका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जुड़ जायगा तो बड़ा भारी काम हो जायगा!**

जैसे लड़कीका विवाह हो जाता है तो वह कुआँरी नहीं रहती, ऐसे ही जिसका भगवान्‌से सम्बन्ध हो जाता है, वह साधारण आदमी नहीं रहता! भगवान् हमारे हैं, हम भगवान्‌के हैं—इस प्रकार भगवान्‌से सम्बन्ध होनेपर भगवान्‌को याद करना नहीं पड़ेगा, प्रत्युत उनकी याद स्वत: आयेगी।

संसारमें तो धन-सम्पत्ति ज्यादा होनेसे इज्जत होती है, पर भगवान्‌के यहाँ इज्जत होती है भगवान्‌के सम्बन्धसे! एक भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़नेसे आपका सब घाटा, सब चिन्ता, सब शोक, सब हलचल मिट जायगी। आप पूर्ण हो जाओगे।

***　　　***　　　***

अपने जीवनमें दो बातें धारण कर लें—कोई भी चाहना न रखें और मृत्युसे न डरें। शरीरको घरवालोंपर छोड़ दें। वे जैसा भोजन दें, वैसा प्रेमसे कर लें। उनकी सेवा कर दें, आज्ञापालन कर दें, पर अपनी चाह कोई न रखें। लोगोंमें डुग्गी नहीं पीटनी है। घरवालोंको भी पता न चले कि यह अपनी चाह नहीं रखते। किसीको बतानेकी भी जरूरत नहीं है। **साधन जितना गुप्त रीतिसे किया जाता है, उतना ही वह कीमती होता है, बहुत श्रेष्ठ होता है।**

मृत्युसे डरे नहीं; क्योंकि जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा ही—यह नियम है। जब मरना अवश्यम्भावी है, तो फिर डरनेसे क्या फायदा? हमें न मरनेकी इच्छा करनी है, न जीनेकी इच्छा करनी है, प्रत्युत अपनी आयुको ठीक तरहसे बिताना है। जीते रहें तो अच्छी बात, मर जायँ तो अच्छी बात, अपनी कोई इच्छा नहीं। इससे जीवन बड़ा शुद्ध होगा, बड़ी शान्ति मिलेगी। मिलनेवाली चीज मिलेगी ही और न मिलनेवाली चीज नहीं मिलेगी, फिर इच्छा करके गुलामी क्यों करें? जो काम सामने आ जाय, उसको बड़े उत्साहसे करें। जो हो जाय, उसमें प्रसन्न रहें। हरदम प्रसन्न रहना 'मानसिक तप' है।

जिस ढाल में रखा वो उसी ढाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं॥

सन्तोंने कहा है कि मरनेसे डरे नहीं और कोई चाहना न करे तो मरनेसे पहले ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी!

***　　　***　　　***

प्रायः सन्तोंने पदार्थ और क्रिया—इन दोका आदर ज्यादा किया है। ये दोनों प्रकृतिके कार्य हैं। अतः जड़ताका त्याग करना हो तो पदार्थोंका भी त्याग करें और क्रियाका भी त्याग करें। गीतामें आया है—

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

(गीता ६। ४)

'जिस समय न इन्द्रियोंके भोगोंमें तथा न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस समय वह सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी मनुष्य योगारूढ़ कहा जाता है।'

शरीर, मन और वाणीसे होनेवाली क्रिया तथा संसारके सम्पूर्ण पदार्थ—इन दोनोंसे उपराम हो जाय, तब जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद होता है। जड़ताके त्यागसे शान्ति, तत्त्वज्ञान और प्रेमकी प्राप्ति होती है। सन्तोंने भोगोंके त्यागकी जितनी बात बतायी है, उतनी क्रिया और पदार्थके त्यागकी बात नहीं बतायी है। क्रिया और पदार्थका सुख भी प्रकृतिका, मायाका ही सुख है। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणशरीर भी प्रकृतिके हैं। प्रकृतिकी वस्तु त्याज्य है और परमात्मा ग्राह्य है।

हमारा भगवान्‌के साथ सीधा सम्बन्ध है। अतः 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह करणनिरपेक्ष है। परन्तु

भजन-ध्यान करके भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ना करणसापेक्ष है। तात्पर्य है कि भगवान्‌से सीधा सम्बन्ध होना करणनिरपेक्ष है और बीचमें दूसरा कोई साधन होना करणसापेक्ष है। खास बात है कि आप किसी भी उपायसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लो और चुपचाप भगवान्‌में लगे रहो—**'तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्** (श्रीमद्भा० ७। १। ३१)। संसारमें लगना, उससे कुछ चाहना बड़े भारी अनर्थकी बात है।

अगर अपना कल्याण चाहते हो तो रात-दिन भगवान्‌के नामका जप करो और यह पुकारो कि 'हे नाथ! हे प्रभो! हे स्वामिन्! मैं आपको भूलूँ नहीं। आपके चरणोंमें मेरा चित्त लग जाय'। **अभी ढूँढ़ो तो सही मार्ग बतानेवाले सन्त-महात्मा मिलेंगे नहीं, पर आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ तो वे स्वयं आकर आपको बतायेंगे! इतना ही नहीं, गुप्त रीतिसे रहनेवाले सन्त-महात्मा भी आपके सामने प्रकट हो जायँगे!**

*** *** ***

श्रोता—क्या साधुसे उसकी जाति पूछनी चाहिये? और क्या साधुको अपनी जाति कहनी चाहिये?

स्वामीजी—साधुकी जाति पूछनेका तात्पर्य ही उसपर अश्रद्धा है। साधुके विषयमें कहा गया है—

जाति न पूछो साधु की, जो पूछो तो ग्यान।
मोल करो तलवार को, धर्‍यो रहन दो म्यान॥

जाति वहाँ पूछनी चाहिये, जहाँ सगाई-ब्याह करना हो। साधुसे तो सत्संग करना है, सगाई-ब्याह तो करना है नहीं! साधुओंमें भी जो अपनेको जातिके कारणसे ऊँचा मानते हैं, वे वास्तवमें साधु नहीं हुए। **साधुकी जाति पूछना ही उसका अपमान है!** ठाकुरजीके प्रसादमें अन्न-बुद्धि, चरणामृतमें जल-बुद्धि, ठाकुरजीकी मूर्तिमें पत्थर-बुद्धि और साधुमें जाति-बुद्धि करनेवाला नरकोंमें जाता है—ऐसी बात लिखी है। परन्तु आजकल उल्टी बुद्धि हो रही है! विवाहमें तो जाति पूछते नहीं और साधुसे जाति पूछते हैं! ये दोनों ही अपराध हैं। आपको साधुसे सगाई-ब्याह करना है कि सत्संग करना है? सत्संग करनेवाला क्या जाति पूछता है? उससे सत्संगकी, तत्त्वकी बात पूछो।

कल्याण जीवका होता है, शरीरका नहीं। जो कल्याणके लिये साधु हुए, फिर भी उनमें जातिकी मुख्यता रही तो वे साधु कहाँ हुए! **साधु, गृहस्थ, ब्राह्मण, शूद्र आदिकी मुक्ति नहीं होती, प्रत्युत 'मुमुक्षु' की मुक्ति होती है, 'जिज्ञासु' को ज्ञान होता है।** ब्राह्मणकी ब्राह्मणीके साथ शादी होगी, मुक्ति कैसे होगी? बिना मुमुक्षाके मुक्ति कैसे होगी? बिना जिज्ञासाके तत्त्वज्ञान कैसे होगा? आज जो साधु होकर कुटुम्बके साथ स्नेह रखते हैं, वे नकली साधु हैं। असली साधु होनेपर घरवालोंके लिये वे मर गये और उनके लिये घरवाले मर गये। बारह वर्षोंतक भी कभी घरवालोंका पत्र न आये तो उनकी कभी याद नहीं आती कि वे जीते हैं या मर गये!

साधु होनेपर नया जन्म माना गया है। इसलिये जो पहले साधु हुआ, वह बड़ा माना जाता है और जो पीछे साधु हुआ, वह छोटा माना जाता है। आज कोई बूढ़ा आदमी साधु हो जाय तो वह बालक माना जायगा और पहले साधु हुए बालकको भी दण्डवत् प्रणाम करेगा। वर्णाश्रमकी मर्यादा रखना दूसरी चीज है, साधु होना दूसरी चीज है। साधुके लिये अपनी जाति न बताना ही अच्छा है। जातिका अभिमान होगा तो तत्त्वज्ञान नहीं होगा। आपकी अहंता ब्राह्मणकी है तो तत्त्वज्ञान कैसे होगा? अहंतामें मुमुक्षा, जिज्ञासा होनी चाहिये। जल प्यासेको मिलेगा, अन्न भूखेको मिलेगा, तत्त्वज्ञान जिज्ञासुको मिलेगा, मुक्ति मुमुक्षुको मिलेगी। जो परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसको परमात्माकी

प्राप्ति होगी।

अपने लोग पारमार्थिक बातोंमें लगे हुए हैं, फिर भी लाभ नहीं होता है तो इसका कारण यह है कि मनमें परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा नहीं है। **जिसके भीतर जोरदार इच्छा होगी, वह हरेक जगह ठहर नहीं सकेगा। वह किसी गुरुमें, किसी सम्प्रदायमें, किसी सत्संगमें टिक जाय, यह उसके हाथकी बात नहीं है।** जिसको जोरसे प्यास लगी हो, वह कैसे ठहर जायगा?

***   ***   ***

सुना है कि इस भूमण्डलपर दो सौ देश हैं। उन सबमें इस भारत देशमें जो विलक्षणता है, वह दूसरे देशमें नहीं है। शास्त्रमें भी लिखा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनुस्मृति २। २०; वृद्धगौतमस्मृति १४। ४७-४८)

'इस देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे पृथ्वीके समस्त मनुष्य अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा लें।'

तात्पर्य है कि यह देश सम्पूर्ण देशोंका गुरु है, इसलिये भूमण्डलके सब मनुष्य 'अपने-अपने देशमें हम कैसा आचरण करें'—यह इस देशके ब्राह्मणोंसे सीखें। **पारमार्थिक उन्नति करनेमें इसके समान कोई दूसरा देश नहीं है।** संस्कृत-जैसी विलक्षण भाषा दूसरे किसी देशमें नहीं है। इस देशके सन्त-महात्माओंमें भी जो विलक्षणता, अलौकिकता, विचित्रता है, वह दूसरे देशोंमें नहीं मिलती। जो लोग सच्चे हृदयसे पारमार्थिक मार्गमें लगे हैं, उनको इस बातका अनुभव होता है। आप इस देशमें पैदा हुए, यह कोई मामूली बात नहीं है। इस देशमें पैदा होना भी भगवान्‌की बहुत विशेष कृपा है!

अपनी कैसी स्थिति होनी चाहिये—यह बतानेके लिये गीतामें एक विलक्षण श्लोक आया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।

सबसे बड़ा लाभ प्राप्त हो जाय और बड़े भारी दुःखसे भी विचलित न हो—ऐसी विलक्षण स्थिति प्राप्त करनेके लिये यह देश है। मेरा सब भाइयोंसे, बहनोंसे निवेदन है कि ऐसी स्थितिको प्राप्त किये बिना सन्तोष न करें। इस स्थितिको साधु, गृहस्थ, स्त्री, पुरुष आदि सब प्राप्त कर सकते हैं। जैसे आकाशमें कोई वृक्ष कितना ही ऊँचा बढ़े, उसकी कोई सीमा नहीं है, ऐसे ही मनुष्यकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं है। मरनेके बाद हरेक आदमीका शरीर यहीं पड़ा रहता है, पर मीराबाई इतनी ऊँची बढ़ीं कि उनका शरीर भी यहाँ नहीं रहा, भगवान्‌की मूर्तिमें ही लीन हो गया! उनका जड़ शरीर भी चिन्मय हो गया! इसलिये **आप सबसे कहना है कि कभी अपनी आध्यात्मिक स्थितिमें सन्तोष न करें, आगे बढ़ते ही चले जायँ। जीवन्मुक्ति हो जाय, तत्त्वज्ञान हो जाय, सातवीं भूमिका हो जाय तो भी सन्तोष न करें।** ज्ञान, कर्म, भक्ति, किसी भी योगमें सन्तोष न करें। **जबतक एक भी जीव बन्धनमें है, तबतक पूरा काम कैसे हुआ?**

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका कहते थे कि संसारके सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण कर दे—ऐसी एक कुर्सी अभी खाली पड़ी है। अभीतक ऐसा कोई सन्त-महात्मा नहीं हुआ, जो सबका कल्याण कर दे। जैसे, चार-पाँच सौ आदमियोंके बैठनेयोग्य हवाई जहाज बन सकता है, तो हजार-दस हजार-पचास हजार आदमियोंके बैठनेयोग्य हवाई जहाज भी बन सकता है। ऐसी गुंजाइश तो है ही! ऐसे ही जब दस-बीस-पचास आदमियोंका कल्याण हो सकता है, तो फिर हजारों-लाखों-करोड़ों आदमियोंका भी कल्याण हो सकता है, मात्र जीवोंका भी कल्याण हो सकता है।

आप कम-से-कम अपना कल्याण तो कर लें। अपना ही कल्याण नहीं किया तो क्या किया? अभी जैसा मौका मिला है, ऐसा मौका फिर मिलेगा नहीं। इसलिये आप सन्तोष न करें।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः स्वाध्याये जपदानयोः॥

(चाणक्यनीतिदर्पण ७। ४)

'अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें तो सन्तोष करना चाहिये, पर स्वाध्याय, जप और दान—इन तीनोंमें कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।'

तात्पर्य है कि पुराने कर्मोंके फलस्वरूप जो मिले, उसमें सन्तोष करे, पर नया उद्योग करनेमें कभी सन्तोष न करे।

*** *** ***

यदि जीवनभर भजन किया हो तो अन्तसमयमें भगवान्‌की याद आती ही है। यदि न आये तो एक जन्म और हो सकता है, फिर मुक्ति हो जायगी। **वास्तवमें अन्तसमयमें भगवान्‌की याद भगवान्‌की कृपासे आती है, अपने हाथकी बात नहीं है।**

जिसका शरीरमें मैं-मेरापन ज्यादा है, उसको शारीरिक पीड़ा अधिक होती है।

सब जगह परिपूर्ण होते हुए भी परमात्मा याद नहीं आते तो वास्तवमें हृदयमें उनका आदर, महत्त्व नहीं है।

जिसकी पापोंमें रुचि है, उसको भगवान्‌के दर्शन कैसे होंगे? उसको तो यमराजके दूतोंके दर्शन होंगे!

*** *** ***

हरेक भाई-बहनको यह विचार करना चाहिये कि अपनी तरफसे मैंने किसके साथ सम्बन्ध जोड़ा है; भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ा है या संसारके साथ? अच्छाईके साथ सम्बन्ध जोड़ा है या बुराईके साथ? सद्‌गुणोंके साथ सम्बन्ध जोड़ा है या दुर्गुणोंके साथ? **अच्छाईके साथ सम्बन्ध जोड़ा है तो आपका अच्छा होगा, इसमें सन्देह है ही नहीं। बुराईके साथ सम्बन्ध जोड़ा है तो भले ही ऊपरसे कितनी अच्छी बातें कहो, बुराई जरूर आयेगी ही। खास बात सम्बन्धकी है।** दूसरोंको मत देखो, सबको छुट्टी दे दो। केवल अपना विचार करो। आपने भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ा है तो संसारके साथ सम्बन्ध टूट जायगा।

संसारका सम्बन्ध तो निरन्तर टूट ही रहा है। आप परमात्माके सच्चे अंश हो, इसलिये आपके द्वारा सम्बन्ध जोड़नेपर वह सम्बन्ध आपके लिये सच्चा हो जाता है। आप संसारसे कितना ही सम्बन्ध जोड़ लो, वह तो टूटेगा ही। आप जोड़ते रहो, वह टूटता रहेगा। आपके साथ केवल भगवान्‌का

सम्बन्ध ही अटूट, अखण्ड, नित्य रहनेवाला है। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध स्वीकार कर लो, फिर सब अपने-आप ठीक हो जायगा। जैसे गायमें रहनेवाला घी गायके काम नहीं आता, निकालकर देनेपर ही गायके काम आता है, ऐसे ही जबतक आप भगवान्‌के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ोगे, तबतक वह सम्बन्ध आपके काम नहीं आयेगा। भगवान्‌के साथ चाहे जो सम्बन्ध मान लो, भगवान् निभानेको तैयार हैं!

***　　　***　　　***

दो विभाग हैं—प्रकृति अर्थात् जड़-विभाग और पुरुष अर्थात् चेतन-विभाग। आजकल शास्त्रोंको पढ़कर इन दो विभागोंकी 'इदंता' से पढ़ाई करते हैं कि यह जड़ है, यह चेतन है, यह जीव है, यह ब्रह्म है। परन्तु गीता अपनेको लेकर बताती है कि जड़ और चेतनके विभागको स्वयंमें देखो। अपनेको लेकर विचार करना साधन है और ऊपरसे विचार करना पढ़ाई है। पढ़ाईसे पण्डित तो हो जाते हैं, पर बोध नहीं होता।

हम स्वयं परमात्माके अंश हैं—यह चेतन-विभाग है, और शरीर प्रकृतिका अंश है—यह जड़-विभाग है। जड़-विभाग अपना नहीं है। हम परमात्मामें रहते हैं, शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि प्रकृतिमें रहते हैं—**'मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि'** (गीता १५। ७)। शरीर, वस्तु, क्रिया, योग्यता, बल, बुद्धि—ये सब प्रकृति है। यह हमारी नहीं है। सत्संग करनेवालोंको यह विभाग अवश्य समझ लेना चाहिये। जबतक यह नहीं समझेंगे कि जड़-विभाग हमसे अलग है, तबतक कामनाका त्याग कठिन होगा। **जड़-विभागको अलग समझनेसे कामनाका त्याग सुगम हो जाता है और कर्मयोग बड़ा सरल हो जाता है।** जो वस्तु अपनी नहीं है, उसकी कामना करना बेईमानी है, ईमानदारी नहीं है। जड़ चीज संसारकी सेवामें लगानेके लिये है, परमात्माकी प्राप्ति करनेके लिये नहीं।

***　　　***　　　***

व्यक्तिमें दोष दीखनेपर भी हम उसमें गुरुभाव करते हैं, उसपर जबर्दस्ती श्रद्धा करते हैं तो इससे साधकका बड़ा नुकसान होता है। जिसपर श्रद्धा न बैठे, उसको छोड़ ही देना चाहिये। परन्तु उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

बहुत-से ऐसे भाई-बहन हैं, जो लक्ष्य बनाये बिना ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जीवन तो जा रहा है और मौत भी आयेगी ही, इसलिये जीवनका लक्ष्य पहले ही बना लेना चाहिये कि हमें परमात्माको प्राप्त करना है। लक्ष्य बननेपर बहुत फायदा होता है। **अगर लक्ष्य बन गया तो वह खाली नहीं जायगा, कमी रह जायगी तो योगभ्रष्ट हो जाओगे, पर परमात्माकी प्राप्ति जरूर होगी।** लक्ष्य बननेपर फिर समय बर्बाद नहीं होता, सार्थक होता है। वृत्तियाँ स्वाभाविक ठीक हो जाती हैं। अवगुण स्वतः दूर होते हैं। संसारका खिंचाव कम होता है। आस्तिकभाव बढ़ता है। अगर यह फर्क नहीं पड़ा है तो लक्ष्य नहीं बना है, साधन हाथ नहीं लगा है, सत्संग नहीं मिला है।

***　　　***　　　***

सम्पूर्ण पापोंका फल भोगकर कल्याण होगा—ऐसी बात नहीं है। बड़े-बड़े सन्त-महात्मा हुए हैं, वे भगवान्‌की कृपासे पाप माफ होनेसे ही हुए हैं। इसलिये 'हम भगवान्‌के हैं'—ऐसा मान लो। जब कभी उद्धार होगा, भगवान्‌की कृपासे ही होगा, पापोंकी माफी होनेसे ही होगा।

भगवान्‌का नाम लेते हैं, गंगास्नान करते हैं, सत्संग करते हैं तो हमारे पाप नहीं रहे, हम शुद्ध हो गये! अगर अपनेको अशुद्ध मानते हैं तो नामका, गंगास्नानका, सत्संगका, गीतापाठका तिरस्कार

होता है। अगर आप कृपा करके यह बात स्वीकार कर लें तो बहुत ही उत्तम बात है! अब आगेसे सावधान रहो कि हमारे द्वारा कोई पाप, अन्याय न हो जाय। भगवान्‌के नाममें, सत्संगमें, गंगास्नानमें बहुत विलक्षण शक्ति है। भगवान्‌की कथा सुननेकी मनमें आते ही अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। हृदयसे स्वीकार कर लो कि हम भगवान्‌के हैं, हम शुद्ध हैं, हम पापी हैं ही नहीं! **हम भगवान्‌के हैं—इतना माननेमात्रसे अनन्त, अपार शुद्धि आ जायगी।** भगवान्‌की तरफ वृत्ति जाते ही पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंमें ठहरनेकी ताकत नहीं रहती। आप पापोंको पकड़ो मत। कोई खराब संकल्प आये, खराब चिन्तन हो तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। वह नष्ट हो जायगा! बस, एक ही बात कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

सत्संग करनेवालोंके, भजन-ध्यान करनेवालोंके, भगवान्‌के भक्तोंके दर्शन करनेमात्रसे पाप नष्ट हो जाते हैं! अच्छे भगवत्प्राप्त सन्तोंके दर्शनसे पाप नष्ट हो जाते हैं—***'संत दरस जिमि पातक टरई'*** (मानस, किष्किन्धा० १७। ३)।

एक मार्मिक बात है। पहले किये हुए पापकी याद आनेसे हम उसमें जो सुख लेते हैं, उससे पाप नया हो जाता है! इसलिये उस पापसे जल्दी छुटकारा नहीं होता। वह पारमार्थिक उन्नतिमें बड़ा बाधक होता है। अत: पुराने पापकी याद आये तो भगवान्‌को पुकारो। एक दूसरी बात है, बिना किसी प्रसंगके अचानक भगवान्‌की याद आती है तो समझना चाहिये कि भगवान् मेरेको याद करते हैं। उस समय भजनमें लग जाओ तो उससे भजन अधिक बढ़ जायगा। आपको खुद अपनेमें विलक्षणता दीखेगी।

हरदम अपनेपर भगवान्‌की कृपा मानो और उनकी कृपाकी तरफ ही देखते रहो—'**तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाण:**' (श्रीमद्भागवत १०। १४। ८)। भगवान्‌की कृपासे मुफ्तमें कल्याण होता है, करना नहीं पड़ता! इस कलियुगमें गीता पढ़नेको मिलती है, सत्संगकी बातें मिलती हैं, भगवान्‌की याद आती है तो यह भगवान्‌की कितनी कृपा है! माँके पेटमें रहते हुए बच्चा लात मारता है, मल-मूत्र करता है तो माँ उसपर क्रोध नहीं करती; क्योंकि उसको छोड़कर बच्चा कहाँ जाय? ऐसे ही **हम भगवान्‌के पेटमें ही रहते हैं। हमारा जन्म हुआ ही नहीं! पेटसे बाहर जायँ तो जन्म हो! भगवान्‌से बाहर हम जा सकते हैं क्या?**

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्ति जल्दी हो जानी चाहिये। **परमात्मा सब जगह स्वत: परिपूर्ण हैं और उनको प्राप्त करनेके लिये आप तैयार हैं, तो फिर देरी किस बातकी? अपनी ढिलाईके सिवाय देरीका दूसरा कोई कारण नहीं है।** उनकी प्राप्तिकी जोरदार इच्छा हो तो प्राप्ति हो जायगी। इच्छाकी कमीके सिवाय और कोई कमी हमें मालूम नहीं देती। हरेक भाई-बहनको विचार करना चाहिये कि हमें परमात्माको छोड़ करके दूसरी कौन-सी वस्तु आवश्यक है, जिसके लिये हम चेष्टा करें? हमारी दृष्टिमें परमात्मा सर्वोपरि मालूम देते हैं या रुपये अथवा जगत्? परमात्मासे भी बढ़कर कौन-सी चीज है, जिसको हम चाहते हैं? अपनी-अपनी दृष्टिसे विचार करें कि **अगर हमारी दृष्टिमें जगत् श्रेष्ठ है तो फिर परमात्माकी क्या जरूरत है? अगर परमात्माकी जरूरत है तो फिर देरी क्यों है?** परमात्मा जितने व्यापक हैं, उतनी व्यापक कोई वस्तु नहीं है।

जो सुगमतासे परमात्मप्राप्ति चाहता है, उसको कठिनतासे प्राप्ति होती है। परन्तु जिसको कठिनता स्वीकार है, उसको सुगमतासे प्राप्ति होती है। हम किसी वस्तुको चाहते हैं तो दूसरी सब चाहनाएँ

अपने-आप हट जाती हैं और एक ही चाहना मुख्य हो जाती है। परमात्माको चाहेंगे तो परमात्माकी चाहना मुख्य हो जायगी, दूसरी सब गौण हो जायँगी। फिर उसकी प्राप्ति बड़ी सुगम हो जायगी। कारण कि परमात्माकी ही प्राप्ति केवल चाहनासे होती है, जबकि सांसारिक वस्तुकी प्राप्तिमें चाहना, उद्योग तथा प्रारब्ध—तीनों चाहिये। **जो चाहनामात्रसे मिलता है, उसकी प्राप्तिमें कठिनता क्या है?** उसके समान सुगमतासे मिलनेवाली और कोई चीज नहीं है। **आप केवल परमात्माको चाहते हैं तो परमात्माके भीतर भी ऐसी बात होगी कि वे केवल आपको ही चाहेंगे—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)**!** अत: उसकी प्राप्तिकी चाहना बढ़ाओ। मेरेपर इतना असर है कि जिस दिन आपकी जोरदार इच्छा होगी, वह दिन आपके जीवनमें दूसरे दिनोंकी अपेक्षा विलक्षण बीतेगा!

*** *** ***

विचार करें कि हमारे मनमें शरीरका आदर ज्यादा है या आत्माका? **शरीरका आदर ज्यादा होगा तो पतन होगा और आत्माका आदर ज्यादा होगा तो कल्याण होगा।** पदार्थ और क्रियाका आदर संसारका ही आदर है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति संसारसे ऊँचा उठनेपर ही होगी। श्रवण-मनन-निदिध्यासनके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। **हम शरीरको मुख्य मानेंगे तो हमारा सब-का-सब विवेचन जड़ताकी तरफ ही जायगा। बातें बढ़िया-बढ़िया हो जायँगी, पर कल्याण नहीं होगा।** परन्तु आजकल जितना विवेचन होता है, सत्संग होता है, उसमें पदार्थ और क्रियाकी ही मुख्यता रहती है। हम कल्याण चाहते हैं, पर महत्त्व जड़ चीजोंको देते हैं तो कल्याण नहीं होगा, पतन होगा। जड़ताका आदर होगा तो राग-द्वेष होंगे, समता नहीं आयेगी। समता चेतनमें होती है। विषमता संसारमें होती है।

परमात्माकी तरफ वृत्ति होना जागृति है और संसारकी तरफ वृत्ति होना निद्रा है। जड़ चीजोंको महत्त्व नहीं देंगे तो कामनाका त्याग बहुत सुगम हो जायगा। **संसारकी चीजोंको अपना माना और अपने प्रभुको भूल गये—यह मूल भूल है।** हर समय चिन्मय परमात्माको याद करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं', फिर सब ठीक हो जायगा। शरीरको मुख्य माननेसे ही 'भगवान् हमारे हैं'—यह अनुभव नहीं हो रहा है।

*** *** ***

एक सिद्धान्तकी बात है कि जो सब जगह मौजूद परमात्मा हैं, वे क्रियासे प्राप्त नहीं होते। वे बिना क्रियाके प्राप्त होते हैं। **परमात्मा सब जगह है तो फिर उनको ढूँढ़ोगे कहाँ? जाओगे कहाँ? कोई भी चेष्टा न करे, कुछ भी चिन्तन न करे; जहाँ है, वहीं स्थिर हो जाय तो उसकी प्राप्ति होती है।** क्रियारहित होनेपर परमात्मामें ही स्थिति होती है। अत: जहाँ हैं, वहीं चुप, शान्त हो जायँ—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)। परमात्माको ढूँढ़ोगे तो दूर हो जाओगे; क्योंकि ढूँढ़नेसे वृत्ति दूसरी जगह जायगी।

शान्त होना, कुछ भी चिन्तन न करना एक बहुत बड़ा साधन है। जो पैदा होता है, स्थिरतासे ही पैदा होता है और स्थिरतामें ही उसकी समाप्ति होती है। स्थिरता स्वत:सिद्ध है और क्रिया कृत्रिम है। स्थिरता हरदम रहती है, पर क्रिया हरदम नहीं रहती। इसलिये कुछ भी चिन्तन न करनेसे साधककी परमात्मामें ही स्थिति होती है। चिन्तन करनेसे वह परमात्मासे अलग होता है। कुछ भी चिन्तन न करना परमात्माकी प्राप्तिका बहुत बढ़िया, सर्वोपरि साधन है।

क्रिया करनेसे दो व्यक्तियोंको भी एक समान वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती, पर क्रियारहित होनेपर

सभीको समान तत्त्वकी प्राप्ति होती है। बोलनेमें दो आदमी भी समान नहीं होते, पर न बोलनेमें सब एक हो जाते हैं। विद्वान्-से-विद्वान् हो अथवा मूर्ख-से-मूर्ख हो, अगर वे कुछ न बोलें, कोई चेष्टा न करें तो उनमें क्या फर्क है? करनेमें दो भी बराबर नहीं होते, पर न करनेमें सब एक हो जाते हैं।

आप कुछ भी चिन्तन न करनेका, शान्त रहनेका स्वभाव बना लें तो परमात्मस्वरूपमें स्थिति स्वतः-स्वाभाविक हो जायगी।

*** *** ***

एक मनुष्यजन्ममें किये पाप चारों युगोंतक भोगे जानेपर भी खत्म नहीं होते। भगवान्‌की कृपासे माफ होनेसे ही मुक्ति होती है, अन्यथा मुक्ति होनी मुश्किल है! अभी हमारे कितने जन्मोंके कर्म बाकी हैं, इसका कुछ पता नहीं है। मनुष्यजन्ममें किये पाप ही लागू होते हैं; क्योंकि अन्य योनियाँ भोगयोनियाँ हैं, जिनमें पुराने कर्मोंका फल भोगा जाता है। दूसरी योनियोंमें भी कर्म होते हैं—ऐसी बात भी आती है; परन्तु विशेष कर्मयोनि केवल मनुष्य ही मानी गयी है। भगवान्‌की कृपासे अनन्त जन्मोंके पाप नष्ट (माफ) हो सकते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी मनुष्यको परमात्मप्राप्तिसे निराश नहीं होना चाहिये। कितने ही जन्मोंके पाप हों, पर इस मनुष्यजन्ममें सब पापोंका नाश हो सकता है, परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, जीवन्मुक्ति हो सकती है। कारण यह है कि मूलमें सब-के-सब परमात्माके अंश हैं—*'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'* (मानस, उत्तर० ११७। १)। मुक्ति स्वाभाविक है, बन्धन कृत्रिम है। **मूलमें सब शुद्ध हैं, अशुद्धि आयी हुई है। कितना ही पापी हो, उसमें शुद्धि हरदम रहती है, अशुद्धि हरदम नहीं रहती। अतः हम सब-के-सब मुक्त हो सकते हैं, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है।**

श्रोता—जब भगवान्‌की ओर आकर्षण होता है, तब लगता है कि यह सहज है और हो जायगा, पर जब संसारकी ओर आकर्षण होता है, तब लगता है कि यह बड़ा कठिन है, होगा नहीं!

स्वामीजी—आप दोनों बातोंपर विचार करके देखो कि नाशवान् संसार है कि भगवान् हैं? यह तो प्रत्यक्ष बात है कि संसार नाशवान्, क्षणभंगुर है। तटस्थ होकर देखो तो मुक्ति होनी सम्भव है। मनुष्य खुद आड़ लगाता है। कितने ही जन्मोंके कितने ही कर्म हों, हैं तो नाशवान् ही। हम अविनाशी परमात्माके अंश हैं। **परमात्मामें हमारी स्थिति स्वाभाविक है। अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आनेका अधिकार सबको है।** नाशवान्‌को हमने पकड़ा है। जो थोड़ा भी साधन करते हैं, सत्संग करते हैं, उन्हें यह फर्क मालूम देगा कि पहले संसारमें जितना आकर्षण था, उतना अब नहीं है। आप तटस्थ होकर विचार करें। हमारा कर्मोंके साथ इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना भगवान्‌के साथ है।

वास्तवमें कमी हमारे उद्योगमें है। ऐसा सत्संग, वास्तविक बात बतानेवाला मिलता नहीं है। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने वटवृक्ष (स्वर्गाश्रम)-के नीचे सत्संगमें साफ कहा था कि आज हम यहाँसे जाते हैं, आप इतनी बात याद रखो कि 'आगे हमारा जन्म होगा'—ऐसा निमन्त्रण मत देना। कारण कि सत्यसंकल्प परमात्माका ही अंश होनेसे जीवका संकल्प भी सच्चा है। इस बातसे सिद्ध होता है कि **वास्तवमें हमारे बन्धनका कारण हम ही हैं, दूसरा कोई कारण नहीं है!** बन्धन है, मुक्ति कठिन है—यह खुदकी मान्यता ही बाधा दे रही है!

जैसे जीवमें रहनेकी ताकत है, ऐसे कर्मोंमें रहनेकी ताकत है क्या? अतः कर्मोंसे घबरानेकी जरूरत नहीं है। हमारा असली सम्बन्ध कर्मों, पापोंके साथ नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌के साथ है। इस

सम्बन्धको भगवान् भी तोड़ नहीं सकते! कर्मोंको आपने महत्त्व दिया है, उनमें नहीं है। वास्तवमें कर्मोंका बन्धन है ही नहीं!

बन्धनके जितने भी कारण हैं, सब-के-सब नाशवान् हैं। फिर बन्धन नित्य कैसे रहेगा ? पराश्रय और परिश्रम—दोनों ही अनित्य हैं। प्रकृति और प्रकृतिका कार्य सदा हमारे साथ रह सकता ही नहीं। हम किसीके साथ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, वह भी नहीं रहता। किसी पुरुषने स्त्रीके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया, विवाह कर लिया, तो वह सम्बन्ध क्या हरदम रहेगा? आप खुद विचार करें, विवाहके समय स्त्रीके साथ जैसा सम्बन्ध था, वैसा आज है क्या? वैसा अब नहीं है, यह सबका अनुभव है। **संसारके सब सम्बन्ध स्वतः ढीले पड़ जाते हैं, पर भगवान्‌का सम्बन्ध मजबूत रहता है।** भगवान्‌के साथ हमारा जैसा सम्बन्ध है, वैसा किसीके साथ है ही नहीं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि सबकी सुगमतासे मुक्ति हो सकती है।

*** *** ***

श्रोता—गोपीभाव क्या है और वह कैसे प्राप्त होता है?

स्वामीजी—गोपीभाव भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त होता है, साधनसे प्राप्त नहीं होता। भगवान् गोपीभाव दें या न दें, उनकी मरजी। मनुष्यका तो यह कर्तव्य है कि सब संसारसे विमुख होकर भगवान्‌के सम्मुख हो जाय। सर्वथा भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाय, अपना कुछ भी भाव न रखे। फिर भगवान्‌की मरजी कि वे गोपीभाव दें, गोपभाव दें, नन्दभाव दें या यशोदाभाव दें। भगवान्‌की मरजीमें अपनी मरजी मिला दें। सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि किस भावकी प्राप्ति होगी, कैसे होगी—यह भगवान् जानें, भगवान्‌का काम जाने। अपनी मरजी सर्वथा भगवान्‌पर छोड़ दें कि हे नाथ, मैं तो आपका हूँ, बस। आपकी जैसी मरजी हो, वैसे रखो; जहाँ मरजी हो, वहाँ रखो—

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

'हे नरकासुरका वध करनेवाले प्रभो! आप मेरेको चाहे स्वर्गमें रखें, चाहे भूमण्डलपर रखें और चाहे यथेच्छ नरकमें रखें अर्थात् आप जहाँ रखना चाहें, वहाँ रखें। जो कुछ करना चाहें, वह करें। इस विषयमें मेरा कुछ भी कहना नहीं है। मेरी तो एक यही माँग है कि शरद् ऋतुके कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले आपके अति सुन्दर चरणोंका मृत्यु-जैसी भयंकर अवस्थामें भी चिन्तन करता रहूँ; आपके चरणोंको भूलूँ नहीं।'

मेरेको एक साधु मिले थे। शरीरसे वे ब्राह्मण थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि मेरे मनमें आती है कि मैं कुत्ता बन जाऊँ और जहाँ सन्तोंकी जूती पड़ी हो, वहाँ उनके चरणोंकी रज्जीमें लोटता रहूँ; उनके दर्शन करता रहूँ; और उनका जूठन खाता रहूँ!

अपना कोई भाव, कोई आग्रह न रखें। **जबतक मनमें इच्छा है कि 'ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये', तबतक असली शरणागति नहीं है।** न लेनेकी इच्छा हो, न देनेकी; न मरनेकी इच्छा हो, न जीनेकी; न मुक्तिकी इच्छा हो, न बन्धनकी; न ज्ञानकी इच्छा हो, न प्रेमकी; किसी तरहकी कोई इच्छा न हो। वही सन्त है, वही महात्मा है, वही ऊँचा भक्त है, जिसके मनमें कोई इच्छा है ही नहीं—***'पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं'***। अपनी किसी भी तरहकी कोई माँग न हो। एक ही माँग हो कि आपके चरणोंको भूलूँ नहीं। भगवान् जहाँ रखें, जैसे रखें, अपनी कोई मरजी नहीं। भगवान्‌की मरजीमें जो आनन्द है, वह अपनी मरजीमें नहीं है। **अपनी मरजी पतन**

करनेवाली है।

चाह चूहड़ी रामदास, सब नीचों में नीच।
तू तो केवल ब्रह्म था, चाह न होती बीच॥

× × ×

क्या माँगता है इष्ट से, तू इष्ट का भी इष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

*** *** ***

वास्तविक तत्त्व अक्रिय है। सम्पूर्ण क्रियाएँ अक्रिय-तत्त्वसे उत्पन्न होती हैं और अक्रिय-तत्त्वमें ही लीन होती हैं। प्रलयके बाद सर्ग, सर्गके बाद प्रलय होते-होते महाप्रलय होता है। महाप्रलयके बाद महासर्ग होता है। परन्तु शान्त रहना स्वाभाविक और स्थायी तत्त्व है। शान्त रहनेसे शक्ति मिलती है। क्रियामें परिश्रम होता है, जिससे शक्तिका व्यय होता है, थकावट होती है। थकावटके बाद विश्राम मिलता है तो उससे शक्ति संचित होती है। तात्पर्य है कि शान्त रहनेसे शक्तिका संचय होता है। अत: शान्त रहना ही असली चीज है।

शान्त रहना स्वाभाविक ही सत्संग है, साधन है। परन्तु इस साधनकी तरफ लोगोंका लक्ष्य नहीं है। शान्त, चुप रहनेसे अपनी शक्ति बढ़ती है, साधन बढ़ता है और तत्त्वका अनुभव होता है। **एक बात ध्यान देनेकी है कि जो तत्त्व सब जगह परिपूर्ण है, वह क्रियासे नहीं मिलता। क्रियासे तो वह उल्टे दूर होता है। क्रियारहित होकर शान्त हो जायँ तो उसमें स्थिति स्वाभाविक होती है।** इसलिये शान्त होनेका स्वभाव बन जाय तो तत्त्वका अनुभव स्वत: हो जायगा। शान्त होनेसे शक्तिका स्वाभाविक पूर्ण विकास होता है। विलक्षणता स्वत:-स्वाभाविक पैदा होती है। अनुभव करनेकी शक्ति बढ़ती है। **शान्त रहनेका स्वभाव बन जाय तो आयु भी बढ़ती है। सब तरहका विकास होता है।**

*** *** ***

श्रोता—भोजन करते समय पदार्थोंमें आसक्ति हो जाती है। उस समय हमारा विवेक काम नहीं करता। अत: इस आसक्तिको कैसे मिटाया जाय?

स्वामीजी—परमात्माकी प्राप्ति करनी हो तो सब चीजोंमें आसक्ति मिटानी चाहिये; क्योंकि संसारमें आसक्ति परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक है। पहले अपना उद्देश्य दृढ़ बनाना चाहिये। हरेक काम करते समय लक्ष्य परमात्माका ही रहना चाहिये।

भोजनके विषयमें कई बातें हैं। पहली बात, द्रव्य (पैसा) शुद्ध होना चाहिये। दूसरी बात, पदार्थ शुद्ध, सात्त्विक होने चाहिये। तीसरी बात, भोजन शुद्ध भाववाले व्यक्तिके द्वारा पवित्रतापूर्वक बनाया जाना चाहिये। भोजन शरीरके लिये नहीं, प्रत्युत साधनके लिये करना है—ऐसा विचार करके भोजन करे। पहले भोजन भगवान्‌के अर्पण करे। फिर हरेक ग्रास लेनेसे पहले राम-नाम ले और ***‘हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥’***—इस मन्त्रका मानसिक जप करते हुए ग्रासको चबाये। इस प्रकार भगवान्‌को याद रखते हुए मौन होकर भोजन करनेसे भोजन भी भजन हो जाता है। भोजनके शुद्ध होनेसे सब शुद्ध हो जाता है; क्योंकि शरीरके सब अवयव भोजनसे बनते हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप इस तरह भोजन करके देखो, जरूर लाभ होगा, भोजनकी

आसक्ति स्वत: कम हो जायगी। **सत्संगकी बातें सुननेसे लाभ होता है, पर विशेष लाभ उन बातोंको काममें लानेसे होता है।**

भोजन उतना करे कि पेट याद न आये। जिस समय काम, क्रोध आदिकी वृत्तियाँ आयी हों, उस समय भोजन नहीं करना चाहिये। भोजनके दो घण्टे बाद जल पीना चाहिये। ज्यादा प्यास लगे तो एक-डेढ़ घण्टे बाद भी जल पी सकते हैं। जल एक साथ ज्यादा न पीकर थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाािहये। भोजन और जलमें मुखकी लार ज्यादा मिलनी चाहिये। इससे भोजन ठीक तरहसे पचता है। जल भी पीये तो भगवान्‌को भोग लगाकर, भगवान्‌के अर्पण करके पीये। ऐसा करनेसे भोजनमें आसक्ति कम हो जायगी।

आपका समय निरर्थक बहुत बर्बाद होता है। अपने समयको ठीक तरहसे लगाओ तो आपकी बहुत उन्नति होगी। आप सावधानी रखो तो भजनके लिये समय बहुत मिलेगा। समयका सदुपयोग किया जाय तो आप बहुत अच्छे विद्वान् बन जाओगे, साधक बन जाओगे, आपको सिद्धि प्राप्त हो जायगी। आप ख्याल रखो तो खेल-तमाशे आदिमें बहुत समय बर्बाद जाता है, जिससे न लौकिक लाभ होता है, न पारमार्थिक। **आप समयके लिये कंजूस बन जाओ तो बड़ी उन्नति होगी।** समय देनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, दूसरी बात दूर रही! भगवान्‌की कृपासे अपने पास समय बहुत है। **यदि आप समय सार्थक बनाओगे तो जितनी उम्र है, उससे अधिक जीओगे।**

हमारे विद्यागुरुजी कहते थे कि मेरे पास ज्यादा विद्यार्थी टिकते नहीं, यदि टिक जायँ तो अच्छे विद्वान् बन जायँगे। वे प्रात: चार बजे उठाते और रात्रि दस बजेतक पढ़नेको कहते। भोजन करनेके लिये हमें आधा घण्टा मिलता था। हम पाठ याद करते तो महाराज बाहर घूमते रहते, इसलिये हम उनसे हरदम डरते कि गुरुजी हमारेको देखते हैं! हमारे वहाँ यह बिजली नहीं थी। तेलका दीपक जलाते थे। एक दीपकके पास तीन-चार विद्यार्थी पढ़ते थे। अलग-अलग दीपकके लिये पैसा कहाँसे लायें! हमारेको पैसा नहीं मिलता था। हमने पढ़ाईमें बहुत तंगी भोगी। अभी देखें तो आपलोगोंको रविवारकी छुट्टी होती है, पर हम जहाँ-कहीं रहें, हमारेको कभी रविवारकी छुट्टी होती ही नहीं! उल्टे रविवारके दिन अधिक समय देना पड़ता है! बूढ़े होनेपर सरकार रिटायर कर देती है, उससे काम नहीं लेती। पर हम रिटायर होते ही नहीं! अबतक मैं जी भरकर नींद नहीं ले सका!

*** *** ***

हृदयमें प्राणिमात्रके हितका भाव रहना चाहिये कि कभी किसीको किंचिन्मात्र भी दु:ख न हो, सब-के-सब सुखी हो जायँ, सब-के-सब नीरोग हो जायँ, सब-के-सब भगवान्‌के भक्त हो जायँ, सब-के-सब जीवन्मुक्त हो जायँ—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

ऐसा भाव आपके भीतर हरदम रहना चाहिये। इस भावको रखनेमें सब स्वतन्त्र हैं, कोई परतन्त्र नहीं है। अगर आप प्राणिमात्रके कल्याणका भाव रखें तो आपको कोई जोर नहीं आता, आपका कुछ खर्च नहीं होता, आपको कोई परिश्रम नहीं होता। एक बार बड़ी संसदमें प्रश्न उठा कि धनी आदमियोंका धन नष्ट कैसे हो? तो एक सज्जन बोले कि अगर तुम भावना ही करो तो 'सब-के-सब निर्धन धनी कैसे हो जायँ'—ऐसी करो। मनके विचारमें भी सबका भला चाहो, बुरा चाहनेसे क्या फायदा? मनके लड्डुओंमें खाँड़ कम क्यों? भाव रखनेमें कंजूसी क्यों करें? **भाव उत्तम रखनेसे**

उत्तम स्थिति होती ही है—यह नियम है। जैसा भाव होगा, वैसी गति होगी। उत्तम भाव रखनेवाले सन्त होते हैं। सन्तोंके दर्शनका भी पुण्य होता है। वे जिस स्थानपर जाते हैं, उस स्थानपर पवित्रता आ जाती है। सबके हितका भाव रखनेसे दुनियाका भला हो चाहे न हो, पर आपका भला हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

*** *** ***

हमने ऐसा समझ रखा है कि संसारमें जन्मना-मरना तो हमारा काम है और परमात्माको प्राप्त करना एक नया काम है। वास्तवमें बात यह नहीं है। परमात्माको प्राप्त करना तो अपनी बात है; क्योंकि हम परमात्माके अंश हैं। हमारा संसारमें जन्मना-मरना कृत्रिम है, बनावटी है, असली नहीं है। असली तो हम परमात्माके पुत्र हैं। परमात्माका धाम हमारा असली घर है, जहाँ जानेके बाद फिर लौटकर नहीं आना पड़ता। दूसरी जगह हमें भटकना पड़ता है। अपने घर पहुँच जायँ तो यह भटकना बन्द हो जायगा। **जिसकी हम सन्तान हैं, उस परमात्माके घरके सिवाय दूसरी कोई ठहरनेकी जगह है ही नहीं।** दूसरेके घरमें ठहरना कठिन है, कौन टिकने देगा? पर अपने घर ठहरनेमें क्या कठिनता? अपने घर जानेमें कौन मना कर सकता है? कैसे कर सकता है? क्यों कर सकता है? अपने घरमें रहनेका हमें हक लगता है।

आपको धारणा ऐसी रखनी चाहिये कि हमें अपने घर जाना है। **आपका यहाँ मन न लगे, अपने घर जानेके लिये रोने लग जाओ कि हम यहाँ नहीं रहेंगे तो भगवान् अपने-आप ले जायँगे!** अपनी सन्तानपर सबका स्नेह होता है। आप अपनी रुचिसे यहाँ बैठे हैं तो भगवान् क्या करें? हमारा यहाँ मन नहीं लगना चाहिये। यहाँ कितना ही सुख-आराम हो, पर यह अपना घर नहीं है। **दूसरेके घरमें कबतक बैठे रहेंगे?**

*** *** ***

श्रोता—व्यवहारमें हम किसीसे प्रेम करते हैं तो उस समय भगवान्‌को भूल जाते हैं! क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—भगवान् तो प्रेमस्वरूप हैं, उनको कैसे भूल सकते हैं! **आप निष्कामभावसे, निःस्वार्थभावसे किसीसे भी प्रेम करो तो वह भगवान्‌के साथ हो जायगा, भले ही कुत्ते, गधे, सूअर, ऊँटके साथ कर लो! प्रेमास्पद भगवान् ही हैं। अगर भगवान्‌में प्रेम नहीं हुआ है तो आपने वास्तवमें प्रेम नहीं किया है, प्रत्युत आसक्ति की है, ममता की है, मोह किया है।** आसक्तिसे प्रेम नहीं होता। प्रेमसे उद्धार होता है और आसक्तिसे पतन होता है।

श्रोता—इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंको कैसे नष्ट करें?

स्वामीजी—पहले आप अपना उद्देश्य बनाओ कि हमें भगवत्प्राप्ति करना है, फिर सब काम अपने-आप ठीक हो जायँगे। इन्द्रियाँ भी वशमें हो जायँगी, मन भी वशमें हो जायगा, बुद्धि भी सम हो जायगी। लोक-परलोक सब सुधर जायँगे।

श्रोता—चिन्तासे छूटनेका क्या उपाय है?

स्वामीजी—जो चिन्ता आये, भगवान्‌को कह दो। अपनी चिन्ता भगवान्‌पर छोड़ दो।

चिन्ता दीनदयाल को, मो मन सदा अनन्द।
जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥

घरमें जो छोटे बच्चे होते हैं, वे चिन्ता नहीं करते। बड़े चिन्ता करते हैं। अपने बड़े भगवान् हैं। अतः अपनी चिन्ता भगवान्‌को दे दो। आपका सब काम ठीक होगा।

श्रोता—छोटे बच्चोंमें दुर्बुद्धि पैदा हो जाती है! उनकी दुर्बुद्धि दूर करनेके लिये क्या करें?

स्वामीजी—उनसे भगवन्नामका कीर्तन कराओ। छोटे बालकोंको गोदीमें लेकर घण्टा-डेढ़ घण्टा रोजाना अपने-अपने घरोंमें कीर्तन करो। सद्‌बुद्धि जरूर होगी, इसमें सन्देह नहीं। कलियुगमें कीर्तनका बड़ा भारी माहात्म्य है। कलियुग भगवन्नामकी ऋतु है। **भगवन्नाम-कीर्तनसे सद्‌भाव पैदा होते हैं।**

***   ***   ***

श्रोता—भगवान्‌की शरणागति कैसे प्राप्त करें?

स्वामीजी—जैसे आपकी कन्या ससुरालको स्वीकार करती है, ऐसे।

श्रोता—सन्त कहते हैं कि हमें गुरु मानो, हमारा पूजन करो तो क्या भगवान्‌का पूजन नहीं करें?

स्वामीजी—सन्त ऐसा कहते ही नहीं, और जो ऐसा कहते हैं, वे सन्त नहीं। जो अपने स्वार्थकी बात कहे, वह सन्त कैसे? जो सन्त है, वह अपने स्वार्थकी बात कहे कैसे? दोनों ही बातें बैठती नहीं।

श्रोता—लड़कियोंको 'ओम्' का उच्चारण क्यों नहीं करना चाहिये?

स्वामीजी—अगर वह ठीक तरहसे 'ओम्' का उच्चारण करे तो गर्भ स्थिर होना मुश्किल है। अगर पाठमें 'ओम्' शब्द आ जाय तो कोई हर्ज नहीं।

श्रोता—हनुमानचालीसाका पाठ लड़कियोंको करना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—कुँआरी कन्या अगर पाठ करे तो कोई हर्ज नहीं। हनुमान्‌जीकी, शालग्रामजीकी और शिवलिंगकी उपासना स्त्रियोंके लिये निषिद्ध है। परन्तु जो इनका भक्त हो, उसके लिये निषेध नहीं है। एक विधि होती है और एक प्रेम होता है। विधिमें विधि-निषेध होता है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ निषेध नहीं होता।

श्रोता—कुण्डलिनी जाग्रत् होनेसे क्या लाभ है?

स्वामीजी—कुण्डलिनी जाग्रत् होनेसे शक्ति आती है, पर इसका कल्याणके साथ सम्बन्ध नहीं है। आध्यात्मिक उन्नतिमें इसकी कोई जरूरत नहीं है। कुण्डलिनीका सम्बन्ध शरीरसे है। मुक्तिमें शरीरका सम्बन्ध नहीं है।

श्रोता—प्रार्थना बैठकर करें या खड़े होकर करें?

स्वामीजी—प्रार्थनाका सम्बन्ध हृदयके साथ है, उठने-बैठनेके साथ नहीं।

श्रोता—जप करनेमें मन भागता है। मन कैसे एकाग्र करें?

स्वामीजी—एकान्तमें बैठकर मुखसे भगवान्‌का नाम लो और अपने कानोंसे उसको सुनो। सुने बिना एक नाम भी जाने मत दो। बहुत सुगमतासे काम हो जायगा।

श्रोता—क्रोधपर काबू कैसे पायें?

स्वामीजी—भीतरमें कोई इच्छा नहीं हो। जबतक कोई इच्छा रहेगी, तबतक क्रोध रहेगा। ऐसा मिल जाय और ऐसा हो जाय—यह इच्छा जबतक रहती है, तबतक क्रोध रहता है। गीतामें आया

है कि कामनासे क्रोध पैदा होता है—'**कामात्क्रोधोऽभिजायते**' (गीता २। ६२)। कामना मिट जायगी तो क्रोध भी मिट जायगा।

श्रोता—भगवान्के दर्शन होनेसे पहलेके लक्षण क्या हैं? कैसे पता लगे कि दर्शन होनेवाले हैं?

स्वामीजी—हरेक काम होनेसे पहले पता लग जाता है। वर्षा होनेवाली होती है तो पहले पता लग जाता है। कुएँका जल आनेवाला है तो पहले पता लग जाता है। जो वास्तवमें भगवान्की प्राप्ति चाहते हैं, वे पता लगे या न लगे, इसकी परवाह नहीं करते। वे इन बातोंकी खोज करते ही नहीं। ऐसी खोज करनेवाले भगवान्की प्राप्ति नहीं कर सकते। भगवान्की प्राप्ति वे ही कर सकते हैं, जिनका यह विचार होता है कि हम तो सच्चे हृदयसे भगवान्की तरफ चलेंगे, वे मिलें या न मिलें, उनकी मरजी।

श्रोता—जब परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है और परमात्मा निर्दोष हैं, फिर उनकी माया दोषयुक्त कैसे?

स्वामीजी—दोनों बातें साथमें नहीं चलतीं। जो मायाको मानते हैं, वे भगवान्को नहीं मानते, और जो भगवान्को मानते हैं, वे मायाको नहीं मानते। दोनों साथमें नहीं रह सकते। सूर्य और अमावस्याकी रात साथमें कैसे रहेंगे? **माया दीखती है तो ईश्वर नहीं दीखता, और ईश्वर दीखता है तो माया नहीं दीखती।**

श्रोता—माया भगवान्की ही तो बनायी हुई है!

स्वामीजी—माया भगवान्की बनायी हुई नहीं है। भूलका नाम माया है। भूल अपनी होती है, भगवान्की नहीं होती। ठीक जाननेसे भूल मिट जाती है। भगवान्में भूल नहीं है।

श्रोता—आपको भगवान्का अनुभव हुआ है कि नहीं?

स्वामीजी—आपके पास कितने रुपये हैं और वे कहाँ रखे हुए हैं? बताओ। आप अपने रुपये भी नहीं बताते तो क्या भगवान् रुपयोंसे भी रद्दी हैं? वास्तवमें यह बात पूछनेकी नहीं होती। पूछना ही महान् मूर्खता है! **पूछनेवाला भी मूर्ख है और साफ बतानेवाला भी मूर्ख है!**

श्रोता—हम साधारण लोग सन्त-महात्माओंकी तरह उतना भजन तो कर नहीं सकते........!

स्वामीजी—कर सकते हो। असली भजन समर्पणसे होता है। **भजन क्रिया नहीं है, समर्पण है।** ऐसा मान ले कि मैं भगवान्का हूँ, तो यह भजन हो गया!

***   ***   ***

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है—यह बात भी आती है, और परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है—यह बात भी आती है। कानून-कायदेके अनुसार देखा जाय तो परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है। परन्तु हृदयका भाव हो तो बहुत सुगमतासे प्राप्ति हो जाय। जैसे बालक कहता है कि मेरी माँ है, ऐसे भगवान् हमारे हैं—ऐसा सीधा-सरल भाव हो जाय। **हृदयके भावके बिना प्राप्ति बड़ी कठिन है।** भगवान् भावग्राही हैं। बालक मानता है कि मेरी माँ है तो इसमें क्या कानून लगेगा? बच्चेको अपनी योग्यता, पात्रताकी तरफ ध्यान ही नहीं है। वह अपनेपनके बलसे माँपर पूरा कब्जा कर लेता है। इस तरह भगवान् अपने हैं—ऐसा मान लो। बालक रोता है तो माँको सब काम छोड़कर आना पड़ता है। इसलिये साधे-सरल भावसे भगवान्को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। **भगवान् मेरे हैं—इससे सब बातें पीछे छूट जाती हैं!**

कानून-कायदा न लगाकर 'भगवान् मेरे हैं'—इस एक वृत्तिको विशेषतासे बढ़ाओ। भगवान्में अपनापन विशेष तेज होना चाहिये। दूसरी बातोंकी तरफ ध्यान ही मत दो। अपनी कमियोंकी तरफ मत देखो, प्रत्युत भगवान्के कृपालु स्वभावकी तरफ देखो। अपनी कमियोंकी तरफ देखोगे तो कभी उद्धार होगा नहीं। भरतजीके लिये आया है कि जब वे माँकी तरफ देखते हैं तो उनके पैर पीछे पड़ते हैं; अपनी तरफ देखते हैं तो ठहर जाते हैं और केवल भगवान्के स्वभावकी तरफ देखते हैं तो तेजीसे चल पड़ते हैं—

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥

(मानस, अयोध्या० २३४। ३)

आप अपनी योग्यता, अधिकार, पात्रता आदिकी तरफ मत देखो। केवल भगवान्की कृपाकी तरफ ही देखो। मेरा मन ऐसा नहीं है, मेरी बुद्धि ऐसी नहीं है, मेरा विचार ऐसा नहीं है आदि बातोंको आप याद करते हो, तब भगवान्को भी ये बातें याद आती हैं! आप किसी बातकी तरफ मत देखो तो जल्दी काम बन जायगा; और काम बना, भगवान्ने दर्शन दिये तो उसके बाद सब अपने-आप ठीक हो जायगा! अतः केवल भगवान्की तरफ ही वृत्ति रहे। मैं कैसा हूँ—यह भूल ही जाय। आप भूल जाओ तो भगवान् भी भूल जायँगे।

जितने भक्त हुए हैं, वे सभी यह बात हृदयसे मानते हैं कि हमारे अवगुणोंकी माफीके बिना भगवान्की प्राप्ति होती नहीं। हम पूरे पात्र हो जायँ, तब भगवान् मिलें—ऐसी बात नहीं है। किसी महात्माको भगवान्ने केवल उसके गुणोंके कारण, उसकी योग्यताके कारण दर्शन दिये हों, ऐसी बात नहीं है। उनको माफी करते ही हैं, और करनी पड़ती ही है। माफीके बिना काम चलता ही नहीं।

*** *** ***

साधकको पहले परमात्मा छोटे-से दीखते हैं। फिर परमात्मा बड़े होते-होते सब जगह दीखते हैं। उसके बाद दीखता है कि परमात्मा ही मुख्य हैं। इसके बाद दीखता है कि परमात्मा ही हैं। तात्पर्य है कि **साधकके लिये जगत् लुप्त होता चला जाता है और भगवान् प्रकट होते चले जाते हैं। अन्तमें संसार सर्वथा लुप्त हो जाता है।** संसार है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। केवल परमात्मा-ही-परमात्मा हैं।

वास्तवमें केवल परमात्मा ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। एक परमात्मा ही अनेक रूपसे दीख रहे हैं। असत्की सत्ता है ही नहीं—**'नासतो विद्यते भावः'** (गीता २। १६)। रागके कारण ही दूसरी सत्ता दीखती है। **राग जितना अधिक होता है, उतनी ही संसारकी अधिक प्रतीति होती है। अधिक राग होनेसे दीखता है कि संसार-ही-संसार है, परमात्मा है ही नहीं।** साधन करनेपर परमात्मा दीखने लगते हैं। आधा संसार और आधा परमात्मा दीखे तो समझना चाहिये कि थोड़ी-थोड़ी भावना प्रकट हुई है। परमात्माकी सत्ता अधिक दीखने लगे तो हमारा साधन बढ़ा है। फिर दीखता है कि वास्तवमें हैं तो परमात्मा ही, संसार दीख रहा है। दीखनेपर भी संसारकी सत्ता नहीं है। परमात्मा ही इस रूपसे दीख रहे हैं। फिर संसारका भाव हट जाता है और परमात्मा ही दीखने लगते हैं।

काम, क्रोध, द्वेष आदिकी थोड़ी-सी भी वृत्ति पैदा होते ही परमात्माको भूल जाते हैं, परमात्मा (हमारी वृत्तियोंमें) लुप्त हो जाते हैं। अपने विकारोंके कारण ही विकार दीखते हैं। परमात्माकी सत्ताका

भाव कमजोर होनेके कारण विकार दीखते हैं। विकारोंकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। **संसारकी सत्ता जितनी अधिक मालूम देती है, उतना ही पतन है।**

*** *** ***

श्रोता—जड़-विभाग अलग है और चेतन-विभाग अलग है—ऐसा जानते हुए भी जड़का त्याग नहीं हो रहा है, क्या करें?

स्वामीजी—आप चेतन होकर जड़का त्याग नहीं कर सकते तो अपने कल्याणके लिये और क्या करोगे, बताओ! आप त्याग कर सकते हो। आप जड़का त्याग करनेके योग्य हो, पात्र हो, अधिकारी हो। आपमें त्याग करनेकी सामर्थ्य है।

श्रोता—संसार अपना मालूम देता है!

स्वामीजी—अपना मालूम देता है, पर अपना है नहीं—यह मान लो क्या हर्ज है?

श्रोता—मेरा जड़के साथ सम्बन्ध नहीं है—यह बात जँची हुई है, पर जैसे प्रकाश होनेपर अँधेरा मिट जाता है, वैसा अनुभव नहीं हो रहा है!

स्वामीजी—यह पहलेके सम्बन्धके संस्कार हैं, जो अपने-आप मिट जायँगे। हमने त्याग कर दिया—इस बातपर पक्के रहो। साधकसे यह बड़ी भारी गलती होती है कि त्याग करनेके बाद संसारमें मन चला जाय, संसारका असर पड़ जाय तो वह समझता है कि त्याग नहीं किया। इसलिये संसारका असर पड़ जाय तो उसको महत्त्व मत दो। उस असरको अपनेमें मत मानो, सिर हिलाकर 'ना-ना' कह दो! जड़में ताकत नहीं है! पुरानी बात याद आ गयी तो आ गयी, उसको महत्त्व मत दो।

एक विशेष बात है, आप ध्यान दें। **एक 'जड़ वस्तुका प्रभाव' होता है, एक 'जड़ वस्तु' होती है। आपपर वस्तुका प्रभाव है, वस्तु नहीं है।** उस प्रभावसे आप डर रहे हो। आप वस्तुके प्रभावको छोड़ते हैं तो वह छूटता नहीं, बार-बार आ जाता है। यह आपकी अवस्था है। आप प्रभावको मत देखो। सत्य वस्तुका तो भीतरसे असर है, पर जड़ वस्तुका भीतरसे असर नहीं है। एक रुपया है और एक रुपयेका प्रभाव है। **आप प्रभावको न देखकर यह देखो कि जड़ वस्तुके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है।** प्रभावको सच्चा मत मानो। झूठेका प्रभाव भी झूठा है। मेरेको आश्चर्य आता है कि ऐसी बात सन्तोंने क्यों नहीं कही! आपपर प्रभावका असर है, वस्तुका असर नहीं है। वह भी थोड़े दिन आयेगा, फिर मिट जायगा। आप सब इस बातको याद रखो, इसको दृढ़तासे पकड़ लो कि हम परमात्माके अंश हैं।

श्रोता—मेरी चिन्ता यह है कि जिस समय संसारका असर हो, उस समय अन्तकाल आ जाय तो क्या दशा होगी?

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपासे ठीक होगा। भगवान्‌ने कहा है कि जो चेत रहते हुए मेरेको याद करता है, उसके बेचेत होनेपर मैं उसको याद करता हूँ—

ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसन्निभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

'काष्ठ और पाषाणके सदृश म्रियमाण उस भक्तका मैं स्वयं स्मरण करता हूँ और उसको परमगति प्रदान करता हूँ।'

***   ***   ***

मेरे मनमें आती है कि अगर भगवान्‌की लालसा हो तो बहुत थोड़े दिनोंमें बहुत विलक्षणता हो सकती है! **केवल भगवत्प्राप्तिकी उत्कण्ठा, जिज्ञासा अपने घरकी चाहिये, फिर भगवान् देनेको तैयार हैं!** आजकल मालूम होता है कि भगवान् कोई चीज देना चाहते हैं! दूकानदारको भी जब माल देना होता है, तब माल सस्ता और सुगमतासे मिलता है। आज समय बहुत गिर गया है। वृत्तियाँ बहुत गिर गयी हैं। इस समयमें ऐसी गिरावट देखकर भगवान्‌ने भी विशेष कृपा की है! आज अच्छे कहलानेवाले आदमियोंके हृदयमें भी पारमार्थिक जोरदार इच्छा नहीं है! अगर आप ध्यान दें तो विशेष लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सार बात है कि जड़-विभाग केवल संसारकी सेवाके लिये है। जड़-विभागमें, अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल जितनी चीज भी अपनी नहीं है। अपने केवल भगवान् हैं।

यह बड़ी भारी भूल हुई है कि जो संसारकी चीज है, उसको तो अपनी मान ली और अपनी चीजको भूल ही गये! संसारकी सब चीजें छूट जायँगी, कोई चीज साथ रहेगी नहीं। बड़ा भारी पश्चात्ताप होगा! **आप कहीं भी चले जाओ, कितने ही नास्तिक बन जाओ तो भी भगवान् आपके हृदयमें रहेंगे ही, आपको छोड़ेंगे नहीं!** एक भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई हमारा बन सकता नहीं, हमारे साथ रह सकता नहीं। **जैसे अपने बच्चेको खेलते देखकर माँके हृदयमें स्नेह उमड़ता है, ऐसे इस जीवको देखकर भगवान्‌के हृदयमें प्यार आ रहा है कि मैं इसको अपना लूँ, इससे मिलूँ, बात करूँ! परन्तु यह जीव भगवान्‌की तरफ देखता ही नहीं! इसलिये आप सबसे मेरा कहना है कि आप कैसे ही हों, कम-से-कम, कम-से-कम यह बात याद रखो कि भगवान् मेरे हैं।**

***   ***   ***

गंगाजी ज्यादा दिन रहेगी नहीं। शास्त्रमें भी आया है कि कलियुग जोरसे आयेगा तो गंगाजी भी रहेगी नहीं*। ***‘शिवके मुकुटमें रहती गंगा कह सहदेव विचारी। पाण्डवो, कलियुग आसी भारी’।*** गंगाजीका दर्शन नहीं होगा! गंगाजीसे जितना लाभ लेना हो, ले लो। हमारे देखते-देखते इसका प्रवाह कम हो गया, पहले जैसा नहीं रहा। चातुर्मासमें भी पहले गंगाजी जितनी बढ़ती थी, उतनी अब नहीं बढ़ती। कहते हैं कि गंगाजी सौ वर्षोंतक रहेगी, पर इसके घटते प्रवाहको देखें तो सौ वर्षोंतक रहना कठिन मालूम देता है। बहुत-सी नदियाँ नहीं रहेंगी। जंगलोंमें भी कलियुग आ गया। पहले जैसे जंगल नहीं रहे। आज जो भगवान्‌की भक्तिका प्रचार है, यह नहीं रहेगा। गीताप्रेसके द्वारा पुस्तकोंका

---

* **कलेः पञ्चसहस्रं च वर्षं स्थित्वा तु भारते। जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्॥**
यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृन्दावनं विना। यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः॥
शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम्। कलेर्दशसहस्रान्ते त्यक्त्वा यान्ति निजं पदम्॥

(देवीभागवत ९। ८। १०-१२)

‘कलिके पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर वे तीनों देवियाँ (गंगा, सरस्वती और पद्मावती) अपने नदीरूपका परित्यागकर वैकुण्ठधाम चली जायँगी। काशी तथा वृन्दावनको छोड़कर अन्य जो भी तीर्थ हैं, वे सब श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे। कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर शालग्राम, शिव, शक्ति और जगन्नाथजी भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर चले जायँगे।’

ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृतिखण्ड ७) और गर्गसंहिता (अश्वमेध० ६१) में भी यही बात आयी है। कलियुगका आरम्भ हुए (सन् २०११ तक) लगभग ५११२ वर्ष बीत चुके हैं।

प्रचार भी नहीं रहेगा। जमाना बड़ा विकट आनेवाला है। इसलिये सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ।

अभी यह दुर्लभ मौका भगवान्‌की कृपासे सुलभतासे मिल गया है, फिर मिलेगा नहीं! भगवान्‌के भजनमें रात-दिन लग जाओ। बार-बार भगवान्‌से एक ही बात माँगो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को याद रखो तो सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—संसारकी सत्ता नहीं है, यह वास्तविकता है। फिर हमको संसार सत्तावान् क्यों प्रतीत होता है? वास्तविकताका अनुभव क्यों नहीं होता?

स्वामीजी—भीतरमें पदार्थोंका राग है, इसलिये पदार्थ सच्चे दीखते हैं। मनके ऊपर पदार्थोंका रंग चढ़ जाता है, रुपये अच्छे लगते हैं, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार अच्छा लगता है, आराम अच्छा लगता है—यह अच्छा लगना 'राग' है। जबतक किसी वस्तु या व्यक्तिमें राग है, तबतक शान्ति नहीं मिलती। कहीं सुख नहीं दीखता। संसार सूखा दीखता है। अगर सुख मिलेगा भी तो दुःखवाला सुख मिलेगा। जो दुःखका कारण है, वह सुख मिलेगा।

रागो लिङ्गमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु।
कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरे तरोः॥

(जीवन्मुक्तिविवेक २)

तात्पर्य है कि राग अज्ञानका चिह्न है। जिस वृक्षके कोटरमें आग लगी हो, वह हरा कैसे रह सकता है? इसी तरह जबतक राग है, तबतक शान्ति कैसे मिल सकती है? राग मिट जाय तो मस्ती आ जाती है, आनन्द हो जाता है। कैमरेका काँच चित्रको पकड़ लेता है, पर दर्पणका काँच चित्रको नहीं पकड़ता, निर्लेप रहता है। आपका चित्त भी दर्पणकी तरह निर्लेप रहना चाहिये।

श्रोता—रागको हम जितना मिटाना चाहते हैं, उतना ही वह दृढ़ होता जाता है, इसके लिये क्या करें?

स्वामीजी—भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को मत भूलो। भगवान्‌का रंग चढ़ जाय। भगवान् श्रीकृष्ण काले हैं। काला रंग सब रंगोंपर चढ़ जाता है, पर काले रंगपर कोई रंग नहीं चढ़ता!

श्रोता—अन्तिम समयमें मनुष्य कोमा, बेहोशीमें चला जाय तो उस स्थितिमें भगवान्‌का चिन्तन कैसे होगा?

स्वामीजी—पहलेसे ही भगवान्‌को कह दो और विश्वास रखो कि अन्त समयमें भगवान् याद आयेंगे। हमारे साथी थे—चिम्मनरामजी। उनकी मेरेसे छोटी अवस्था थी। उन्होंने मेरेसे कहा कि मैं तुम्हारी गोदीमें मरूँगा। छोटी अवस्थावाला क्या अपनेसे बड़ेको ऐसी बात कहता है? पर उनका भाव ऐसा था। जब उनका अन्तिम समय आया, मैं शौच करके आया ही था कि वे बोले—'गोदीमें लो'। मैं बोला कि अभी हाथ अशुद्ध हैं, तो वे जोरसे बोले—'अरे, गोडा तो दो'। मैंने किसी तरह घुटना दिया तो उसपर सिर रखते ही उनका शरीर छूट गया! उनको पूरा चेत था। जो उनकी दाहक्रिया करने गये, वे कहते थे कि दाहक्रिया करते समय सुगन्ध आयी! तात्पर्य है कि पहलेसे जो भावना होती है, वह काम करती है। भगवान्‌के विषयमें ऐसी बात है—

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥

(मानस, अयोध्या० २१९। ४)

आप मनमें रखो कि भगवान्‌की गोदीमें मरूँगा, उनका नाम लेकर मरूँगा, उनको याद करते हुए मरूँगा।

*** *** ***

श्रोता—जैसे किसी धनीको देखनेसे मनमें धन कमानेकी आती है, ऐसे ही आप भगवान्‌का दर्शन करा दें तो हमारा भी उत्साह बढ़े।

स्वामीजी—मैं दर्शन नहीं करा सकता, पर आप मानो तो हो सकते हैं। आप नहीं मानो तो भले ही साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो जायँ! मेरे सामनेकी बात है। यहाँ वटवृक्षके नीचे एक भाईने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-से कहा कि आपके ऊपर हमारा विश्वास है कि आप सच बोलते हो। अत: आप बता दो कि यह भगवान् है। सेठजीने कहा कि तुम मानोगे नहीं। वह बोला कि आप कह दो तो हम मान लेंगे। सेठजीने उसको अपने पास बुलाया और कहा कि देखो, ये सूर्य भगवान् हैं। वह बोला कि यह तो मैं देखता ही हूँ! सेठजीने कहा कि दुनिया सूर्यको भगवान् कहती है। विष्णु, शंकर, गणेश, शक्ति और सूर्य—इन पाँचोंको भगवान् माना गया है। पर तुम मानो ही नहीं तो मैं क्या करूँ? इसलिये दर्शन करानेका उपाय मेरे पास नहीं, आपके पास है।

*** *** ***

तीन खास बातें हैं—मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये और मैं कुछ नहीं हूँ। इनमें 'मैं कुछ नहीं हूँ'—यह बड़ी गहरी बात है। आप कभी पशु बने, कभी पक्षी बने, कभी वृक्ष बने, कभी लता बने, कभी भूत-प्रेत-पिशाच बने, तो जो अनेक बन सकता है, वह होता नहीं है। आप कुछ नहीं हैं, तभी अनेक बन सकते हो। आप न मनुष्य हैं, न पशु-पक्षी हैं, न वृक्ष-लता हैं, न भूत-प्रेत-पिशाच हैं। अगर मनुष्य होते तो पशु कैसे बनते? बन ही नहीं सकते। **'मैं कुछ नहीं हूँ'—इसका तात्पर्य हुआ कि केवल एक चिन्मय सत्तामात्र है।** उसके सिवाय सब बनावटी है। मनुष्य आदि सब बने हुए हैं, हैं नहीं। सत्तामात्रमें न मनुष्य है, न पशु-पक्षी आदि है। सत्तामात्रको क्या चाहिये? कुछ नहीं चाहिये। सत्तामात्रको ही कहते हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९) 'सब कुछ परमात्मा ही है'। परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है।

'मैं कुछ नहीं हूँ'—इसको आप स्वीकार कर लो तो अपनी जगह केवल आकाश मालूम होगा। सूक्ष्म रीतिसे सत्ता मालूम होगी। सत्ताका नाश नहीं होता, और सत्ताको कुछ नहीं चाहिये। मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये और मैं कुछ नहीं—यह संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेके लिये बहुत बढ़िया चीज है। तात्पर्य है कि एक सत्तामात्र है। यह पूर्ण, जीवन्मुक्त अवस्था है! सत्तामात्रमें मैं, तू, यह और वह—ये चारों ही नहीं हैं।

*** *** ***

एक बात सबके लिये ध्यान देनेकी है। लोगोंके भीतर यह बात जँची हुई है कि हम संसारी हैं, इसलिये संसारमें पड़े हुए हैं। अब इससे निकलकर परमात्माको प्राप्त करना है। यह भावना ठीक नहीं है। वास्तवमें हम सदासे ही परमात्माके हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। हम परमात्माके जितने नजदीक हैं, उतनी नजदीक प्रकृति भी नहीं है। **परमात्माके अंश होनेसे हम परमात्माके नजदीकके हैं, संसारके नजदीकके नहीं हैं। इसलिये परमात्मप्राप्ति स्वाभाविक ही सुगम है।** हम संसारके नहीं

हैं, प्रत्युत संसारमें आये हैं। संसार हमारा घर नहीं है, इसलिये यहाँ हमें जगह-जगह भटकना पड़ता है। इसलिये सबके भीतर स्वत:-स्वाभाविक यह भावना होनी चाहिये कि हम भगवान्‌के हैं।

श्रोता—आपने कहा कि हम भगवान्‌के अंश हैं, तो अंशका क्या स्वरूप है?

स्वामीजी—जैसे कपड़ेका अंश कपड़ा ही होता है, ऐसे ही ईश्वरका अंश ईश्वर ही है। जो ईश्वरके लक्षण हैं, वही हमारे लक्षण हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'। चेतन अमल सहज सुख रासी॥*** (मानस, उत्तर० ११७। १) जिस जातिके परमात्मा हैं, उसी जातिके हम हैं। परमात्मा भी सच्चिदानन्द हैं, हम भी सच्चिदानन्द हैं। यह बात अगर आप मान लो तो आपको परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगम हो जाय।

श्रोता—फिर यह अंश क्यों कहलाता है? परमात्मा क्यों नहीं कहलाता?

स्वामीजी—कारण कि जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेकी शक्ति परमात्मामें ही है, उसके अंशमें नहीं—**'जगद्व्यापारवर्जम्'** (ब्रह्मसूत्र ४। ४। १७)। जैसे भगवान् ब्रह्मारूपसे उत्पत्ति, विष्णुरूपसे स्थिति और शंकररूपसे संहार करते हैं, ऐसे अंश नहीं कर सकता।

मनुष्य, देवता आदि कुछ भी बननेकी कामना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये सब आपसे छोटे हैं। आप साक्षात् परमात्माके अंश हो।

*** *** ***

श्रोता—जो वस्तुएँ हमें मिली हैं, दूसरोंकी सेवाके लिये मिली हैं—यह बात हमें समझमें आने लगी है। पूरी-की-पूरी तो हम सेवामें नहीं लगा सकते, तो फिर कितनी सेवामें लगानी चाहिये?

स्वामीजी—कम-से-कम बीसवाँ अंश लगाना चाहिये। ज्यादा धनी आदमियोंको सौवाँ अंश लगाना चाहिये। बीसवाँ अंश कोई ज्यादा नहीं है, पर जिसके पास बीस करोड़ है, उसके लिये मुश्किल हो जायगी! इसलिये **संसारमें जो बलवान् है, वही निर्बल है! और जो (भगवत्प्राप्ति चाहनेवाला) संसारमें निर्बल है, वह बलवान् है!** एक बार सेठजीने कहा था कि भगवान्‌से प्रार्थना करो कि महाराज, हमें अधिक पैसा मत देना। अपना निर्वाहमात्र करना है। वस्तु अपने लिये है ही नहीं। परन्तु यह बात जल्दी समझमें आती नहीं!

सब सुख-आराम चाहते हैं। आप सुख-आराम दो तो आपके कई साथी हो जायँगे। आपके पास कुछ नहीं होगा तो सब छोड़ देंगे। ***'दुनिया का ख्याल ऐसा है, यार सभी का पैसा है'।*** आपने भी देखा है और हमने भी खूब देखा है। थोड़ी उम्रमें ही बहुत देख लिया कि कोई अपना नहीं है! भगवान्‌ने कृपा करके चेत करा दिया। जिसका कोई नहीं होता, उसके भगवान् होते हैं। इसलिये हरदम एक परमात्माको ही याद करो, उसीको 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। एक भगवान् और एक उनके सच्चे भक्त—इन दोके सिवाय कोई आपका हित चाहनेवाला नहीं है।

*** *** ***

लोग दु:ख मिटाना चाहते हैं और सुखी होना चाहते हैं। दुनियामात्र इसीमें लगी हुई है। मनुष्य, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, सब इसीमें लगे हुए हैं कि दु:ख मिट जाय, सुख हो जाय। नाशवान्‌के साथ आप सम्बन्ध रखना चाहो और सुखी होना चाहो तो यह कभी होगा नहीं। **जड़के साथ सम्बन्ध रखते हुए आप करोड़ों-अरबों वर्षोंतक मेहनत करो तो भी आप सुखी नहीं होंगे, नहीं होंगे, नहीं होंगे!!** जड़का साथ छोड़ दो तो दु:ख रहेगा ही नहीं, आपके पास फटकेगा ही नहीं! हमलोग साधु

हो जाते हैं तो स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदिको लेकर होनेवाला हमारा सब दु:ख मिट जाता है। कोई मरे या जीये, हमें क्या मतलब? ऐसे आप मनसे सबको छोड़ दो। अपने शरीरको भी मनसे छोड़ दो, वह रहे चाहे जाय। आप निहाल हो जाओगे! आप जड़ताका सर्वथा त्याग कर दो तो दु:ख नजदीक नहीं आयेगा, आनन्द-ही-आनन्द रहेगा। परन्तु जड़तासे सम्बन्ध जोड़ लो तो नया-नया, रंग-रंगीला, तरह-तरहका दु:ख आयेगा।

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'—यह मान लो तो दु:ख कभी होगा ही नहीं। इसे माननेसे हानि है ही नहीं, कोरा लाभ-ही-लाभ है। **शरीर-इन्द्रियाँ-प्राण-मन-बुद्धि आदि कुछ भी मेरा नहीं है, केवल भगवान् ही मेरे हैं—यह मान लो तो निहाल हो जाओगे, निहाल हो जाओगे, निहाल हो जाओगे!!** आपको कोई बाधा नहीं रहेगी। बीमारीमें भी दु:ख नहीं होगा, प्रत्युत आनन्द होगा! शरीरमें शक्ति नहीं रहेगी, पर भीतर आनन्द रहेगा! आपको चार-पाँच डिग्री बुखार हो जाय, आपका बोलना बन्द हो जाय, आप बेहोश हो जायँ, तो भी भीतरके आनन्दमें फर्क नहीं पड़ेगा! यह बिलकुल सच्ची बात है।

आप एक भगवान्की तरफ लग जाओ। लगते-लगते ज्यों-ज्यों आगे बढ़ोगे, त्यों-त्यों आपका दु:ख मिटता जायगा। अन्तमें सर्वथा दु:ख मिट जायगा। आपको तो आनन्द मिलेगा ही, आपके संगसे, आपके वचनोंसे दुनियाको शान्ति मिलेगी! धन मिले चाहे नहीं मिले, मान मिले चाहे नहीं मिले, आदर मिले चाहे नहीं मिले, नीरोग हों चाहे नहीं हों, पर दु:ख सर्वथा मिट जायगा, इसमें सन्देह नहीं है!

***　　***　　***

श्रोता—शरणानन्दजीकी पुस्तकमें आता है कि दु:खके भोगी मत बनो, दु:खका प्रभाव अपनेपर होने दो। इसका क्या अभिप्राय है?

स्वामीजी—इसका असली अभिप्राय तो वे ही जानें, पर हमारी समझसे दु:खका भोग है—दु:खी होना, और दु:खका प्रभाव है—दु:खके कारणकी खोज करना। शरणानन्दजीसे किसीने पूछा कि आपकी जीवनी क्या है तो उन्होंने कहा—दु:खका प्रभाव। दु:खके प्रभावसे ही वे ऊँचे बढ़े। अत: आप दु:खसे दु:खी न हों, उससे घबराएँ नहीं, प्रत्युत उसके कारणकी खोज करें कि दु:ख क्यों आया? कारणकी खोज करके उसको मिटाएँ। कारणका अभाव होनेसे कार्यका स्वत: अभाव हो जायगा।

शरणानन्दजीकी बातें जल्दी समझमें नहीं आतीं। उनकी बातें बड़ी विचित्र हैं। उन्होंने कहा है कि मैं एक क्रान्तिकारी संन्यासी हूँ। जितने साधन बताये, सबमें क्रान्ति कर दी एकदम! ऐसी विचित्र बातें बतायी हैं कि आदमीका कान खुल जाय, आँख खुल जाय, होश आ जाय! परन्तु शरणानन्दजीकी बात समझनेमें कठिन पड़ेगी। उनकी अपेक्षा मेरी पुस्तकें सरल पड़ेंगी। बातें वही आ जायँगी। वही सिद्धान्त आ जायगा। आप **'साधन-सुधा-सिन्धु'** पुस्तक घण्टा-डेढ़ घण्टा रोजाना पढ़ो। पर मन लगाकर पढ़ो। ज्यादा नहीं पढ़कर थोड़ा पढ़ो, पर समझ-समझकर पढ़ो तो सुगमतासे बातें समझमें आयेंगी। आप **'गीता साधक-संजीवनी'** पढ़ो। उसमें बहुत विचित्र बातें हैं!* साधु.......बड़े तार्किक हैं। कुतर्क करते हैं। हरेक बात मानते नहीं। उन्होंने भी जब 'साधक-संजीवनी' देखी तो कहने लगे कि **एक ही पुस्तक 'साधक-संजीवनी' चाहिये, और किसी पुस्तकको उम्रभर जरूरत नहीं!** मेरेको कोई पूछे

*** 'साधन-सुधा-सिन्धु' और 'गीता साधक-संजीवनी'—ये दोनों अनूठे ग्रन्थ गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित हैं।**

तो मैं कहता हूँ कि 'साधक-संजीवनी' लिखवायी, पर मेरे मनकी नहीं निकली! मेरेको सन्तोष नहीं है। परिशिष्ट लिख दिया, फिर भी मनमें गीताकी और बातें आती हैं। गीतामें बहुत भाव हैं! भगवान्‌की वाणीमें बहुत विचित्रता भरी है! आप 'साधक-संजीवनी' का पाठ करो, सुनो, सुनाओ, आपसमें चर्चा करो। **साधन करनेके लिये साधकको और कहीं जानेकी, किसीसे पूछनेकी जरूरत नहीं है, केवल एक पुस्तक 'साधक-संजीवनी' पासमें रखे।** आप पढ़कर देखो। होगा तो लाभ ही होगा, हानि नहीं होगी।

***   ***   ***

श्रोता—शरीरसे अलगावका अनुभव कैसे हो?

स्वामीजी—जन्मसे लेकर मरनेतक शरीर हरदम बदलता ही रहता है, तो फिर आप कौन-से शरीरका अलगाव चाहते हैं? कोई शरीर रहता ही नहीं, पर आप रहते हो। आप कभी बदलते हो ही नहीं। फिर दोनों एक कैसे हो जायँगे? संसारमात्र बदल जाय, पर आप कभी किंचिन्मात्र भी नहीं बदलते। इसपर आप खूब विचार करो। गहरा विचार किये बिना शरीरका लगाव छूटता नहीं।

मेरा कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिये—इन दो बातोंपर खास ध्यान दो तो आपको असली ज्ञान हो जायगा। आप मानें चाहे न मानें, जानें चाहे न जानें, स्वीकार करें चाहे न करें, आपकी मरजी, पर भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखें तो बहुत लाभ होगा। आपकी आप जानें, पर मेरेपर ऐसा असर है कि भगवान्‌की कृपासे बातें स्पष्ट समझमें आती हैं। हमारे बलसे बातें उतनी स्पष्ट नहीं होतीं। जैसे मनुष्य समझाये, इस तरहसे भगवान् भीतर-ही-भीतर समझाते हैं! भगवान्‌की कृपासे बहुत बातें समझमें आती हैं। उनकी कृपासे बड़ी-बड़ी शंकाओंका समाधान हो जाता है। ऐसा समाधान होता है कि मनुष्य कर ही नहीं सकता। ऐसा पचास-साठ वर्षोंसे होता है, पर अब विशेष होता है!

सत्संगसे बहुत फायदा होता है, यह बात मुझे जँची हुई है। सत्संग सुननेसे भी फायदा होता है और सुनानेसे भी फायदा होता है। आपसमें बात करनेसे सत्संगकी बातें बहुत विलक्षण समझमें आती हैं। सन्देह मिट जाता है।

***   ***   ***

गीतामें आया है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता २। ५९)

'निराहारी (इन्द्रियोंको विषयोंसे हटानेवाले) मनुष्यके भी विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर रस निवृत्त नहीं होता। परन्तु परमात्मतत्त्वका अनुभव होनेसे इस स्थितप्रज्ञ मनुष्यका रस भी निवृत्त हो जाता है अर्थात् उसकी संसारमें रसबुद्धि नहीं रहती।'

इससे यह अर्थ निकलता है कि परमात्माकी प्राप्ति पहले होती है, रस पीछे निवृत्त होता है। इसका खुलासा भगवान्‌ने आगेके छः श्लोकोंमें किया है। राग-द्वेष परमात्मप्राप्तिसे पहले ही निवृत्त हो जाते हैं—'**रागद्वेषवियुक्तैस्तु......**' (गीता २। ६४), परन्तु पहले राग-द्वेष निवृत्त नहीं हुए तो भी

परमात्मप्राप्तिके बाद वे निवृत्त हो ही जाते हैं। भीतरमें जो यह भाव रहता है कि रुपया बढ़िया है, भोग बढ़िया है—यह रसबुद्धि है। रुपयोंका त्याग कर देनेपर भी भीतर यह भाव रहता है कि मैं बढ़िया चीजका त्यागी हूँ। इसीलिये त्यागका अभिमान होता है। एक आदमीने मलका त्याग किया और एक आदमीने रुपयोंका त्याग किया, पर त्याग करनेपर भी उनके भीतर यह भाव रहता है कि रुपया बढ़िया चीज है, विष्ठा बढ़िया चीज नहीं है। यहाँ रसबुद्धि रहती है। वास्तवमें जैसी विष्ठा है, वैसा ही रुपया है, कोई फर्क नहीं है; परन्तु रुपया बढ़िया चीज है—यह भाव रहना रसबुद्धि है। परन्तु राग-द्वेषपूर्वक विषयोंका सेवन करना जितना बाधक है, उतनी रसबुद्धि बाधक नहीं है। अतः रसबुद्धिसे घबराना नहीं चाहिये। काँटा निकलनेके बाद भी काँटेकी पीड़ा रहती है, पर वह अपने-आप मिट जाती है।

एक आदमी शौच जाकर आया और एक आदमीने रुपयोंका त्याग किया—दोनोंमें विष्ठाका त्याग बढ़िया है। अगर हमारा वजन एक मन तीस सेर है, और विष्ठाका त्याग करनेपर हमारा वजन एक मन साढ़े उन्तीस सेर रह गया, तो हमारा वजन जो कम हुआ है, वह 'मैं' मेंसे कम हुआ है। परन्तु रुपयोंका त्याग करते हैं तो वे 'मेरे' मेंसे कम हुए हैं। अतः **विष्ठाका त्याग 'मैं' का त्याग है और धनका त्याग 'मेरा' का त्याग है। इस दृष्टिसे विष्ठाका त्याग बढ़िया हुआ; क्योंकि उसमें 'मैं' का त्याग है! परन्तु धनको बढ़िया माननेके कारण हमारी महत्त्वबुद्धि धनके त्यागमें रहती है, विष्ठाके त्यागमें नहीं। इसलिये धनका त्याग करनेवाला श्रेष्ठ मालूम देता है, उसकी बड़ी महिमा होती है, जबकि विष्ठाका त्याग करनेवालेकी महिमा नहीं होती। विष्ठाको हम मैल समझते हैं, पर वास्तवमें धनका मैल विष्ठासे भी बहुत अधिक है!**

भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होनेपर रसबुद्धि परमात्मामें रहती है। वह रसबुद्धि बढ़ती ही रहती है, कभी घटती नहीं। वह असली रसबुद्धि है। इसलिये ज्ञानकी अपेक्षा प्रेममें विशेष रस है। ज्ञानमें शान्त, अखण्ड रस है, पर प्रेममें प्रतिक्षण वर्धमान रस है। इसलिये मेरे मनमें आती है कि परमात्माको अपना मानें तो बहुत जल्दी काम हो जाय। भगवान् मेरे हैं—ऐसा मान लिया तो बहुत काम हो गया, भगवान्के बहुत नजदीक आ गये! आपको जो निवृत्ति करनी है, वह अब प्रभुकी कृपासे, उनकी शक्तिसे होगी। ज्ञानमार्ग और कर्ममार्गमें साधन और साध्य दो होते हैं, पर भक्तिमार्गमें साधन भी भगवान् हैं और साध्य भी भगवान् हैं। इसलिये भक्तिमार्गका रास्ता बहुत जल्दी कटता है। इस बातको हरेक आदमी जानता नहीं। हरेक जगह यह बात मिलती नहीं। इसलिये मैं भगवान्को अपना माननेपर जोर देता हूँ। भगवान् हमारे पिता हैं। हम सब उनके लाड़ले बेटा-बेटी हैं। यह मान लो तो बहुत काम हो गया!

यह मत मानो कि मैं स्त्री हूँ। यह तो चोला है—**'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'** (गीता २। २२)। मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ—यह बहुत बड़ी बाधा है। शरीर चाहे स्त्रीका हो, चाहे पुरुषका हो, उससे हमें क्या मतलब? उससे मतलब तो संसारका है। हम तो भगवान्के हैं। शरीर तो मुरदा है।

*** *** ***

हृदयमें असली चाहना हो तो भगवत्प्राप्ति बहुत जल्दी तथा सुगमतासे हो सकती है—इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु आपलोगोंमें वह चाहना पैदा हो जाय—यह विद्या मुझे आती नहीं!

एक आसक्ति होती है, एक रसबुद्धि होती है। रसबुद्धि खराब नहीं होती, पर रसबुद्धिका विषय

क्या है? एक सांसारिक पदार्थ (भोग और संग्रह)-में रसबुद्धि होती है, जिसमें दुनिया फँसी हुई है। उनको परमात्मप्राप्ति होनी मुश्किल है। जैसे छोटा बालक माँको अपना मानता है, ऐसे भगवान्‌को अपना मानो तो बहुत जल्दी उनकी प्राप्ति हो जाय। पर भोगोंको और रुपयोंको बढ़िया मानो तो परमात्मप्राप्ति मुश्किल है। **भगवान् मीठे लगें तो उसमें जो आनन्द है, वह आनन्द भोगोंमें और रुपयोंमें है ही नहीं।** रसबुद्धि निवृत्त होनेपर तो परमात्माकी प्राप्ति हो ही जाती है। परन्तु जिनके भीतर परमात्मप्राप्तिकी व्याकुलता है अथवा जिनके भीतर दूसरे किसीका सहारा नहीं है, उनको विषयोंमें, भोगोंमें रसबुद्धि रहते हुए भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

दु:ख आनेपर जो दु:खी नहीं होता और सुखकी इच्छा नहीं करता, उसपर दु:खका प्रभाव होता है। उस प्रभावसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

रुपया मिले चाहे न मिले, पर भीतरमें उसका जो महत्त्व है, वह पतन कर रहा है। एक बार सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने बड़के नीचे सत्संगमें कहा था कि हाथ जोड़कर भगवान्‌से प्रार्थना करो कि हे भगवान्! ज्यादा रुपया मत देना। धन भी नहीं देना, निर्धनता भी नहीं देना। गीताप्रेस, गीताभवन, गोविन्द भवन आदि सबके मूलमें सेठजी थे। यह जो सत्संगका प्रचार हो रहा है, इसके मूलमें केवल एक सेठजी हैं। उनकी यह वाणी है कि रामजी, रुपया मत देना!

बढ़िया चीज यह है कि खूब बीमार हो जायँ, पर कोई पानी पूछनेवाला भी न हो, तब रंग खिलता है, आनन्द आता है!

*** *** ***

श्रोता—मान-बड़ाईकी इच्छा ज्यादा तंग करती है! इसका कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—रोकर भगवान्‌से प्रार्थना करो, 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। इसमें चतुराई काम नहीं आती। रोनेसे जरूर फायदा होता है। पर यह भगवान्‌की कृपासे होता है, अपने बलसे नहीं। सार बात यह है कि भगवान्‌को अपना समझो। आप कपूत हों तो भी हैं भगवान्‌के ही। वे कपूतको भी सपूत बना देंगे। उनकी कृपासे हम सपूत बन जायँगे। इसलिये भगवान्‌को अपना समझकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। सबकी सेवा करो, पर अपना केवल भगवान्‌को मानो।

श्रोता—कल्याणका सरल उपाय क्या है?

स्वामीजी—'नहीं' (संसार)-को नहीं मानना। 'नहीं' को नहीं माननेसे 'है' अपने-आप रह जायगा। **सीधा-सरल उपाय है—रात और दिन 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो।** कोई दु:ख पानेकी जरूरत नहीं; नींद आये तो सो लिया, भूख लगे तो भोजन कर लिया, प्यास लगे तो जल पी लिया। रसोई बनाओ तो 'हे मेरे नाथ!', काम करो तो 'हे मेरे नाथ!', दूकानमें जाओ तो 'हे मेरे नाथ!' कहते रहो।

*** *** ***

माता-पिता, गुरु आदिकी आज्ञाका पालन करनेके समान कोई सेवा नहीं है। रामायणमें आया है—***'अग्या सम न सुसाहिब सेवा'*** (मानस, अयोध्या० ३०१। २)। बड़ोंकी आज्ञाके अनुसार काम करनेसे लौकिक और पारलौकिक दोनों लाभ होते हैं। आज्ञा-पालन करनेके तीन भेद हैं। एक नंबरकी बात यह है कि आज्ञा मिले कि अमुक काम करना है तो चट उठकर वह काम कर दे। कहनेवालेके वचनोंको नीचे नहीं गिरने दे। थोड़ी देर बाद उठकर आज्ञा-पालन करनेसे आज्ञा-पालनका वह फायदा नहीं होता; क्योंकि वचन नीचे गिर गया। इसलिये आज्ञा-पालनमें देर करना दो नंबरकी बात है।

आज्ञाके अनुसार काम न करना, जवाब दे देना तीन नंबरकी बात है।

अगर कोई निषिद्ध (नहीं करनेलायक) काम करनेकी आज्ञा दे, तो हाथ जोड़कर खड़ा रह जाय और पूछनेपर कहे कि इस कामको करनेमें आपकी हानि है, इसलिये मैं करना नहीं चाहता। इसका आशय यह है कि आपकी आज्ञाका पालन करूँगा तो आप नरकोंमें जायँगे और आज्ञाका पालन नहीं करूँगा तो मैं नरकोंमें जाऊँगा। दोनों नरकोंमें जायँ, इसकी अपेक्षा मेरा नरकोंमें जाना अच्छा है। इस भावसे निषिद्ध आज्ञाका पालन नहीं करे।

*** *** ***

कोई परिस्थिति आये, आप हरदम प्रसन्न रहो, मस्त रहो। किस बातको लेकर? इस बातको लेकर कि हम भगवान्‌के हैं। जितने भी जीव हैं, सब-के-सब भगवान्‌की ही सन्तान हैं, भगवान्‌के ही बेटा-बेटी हैं।

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

(चाणक्यनीतिदर्पण १०। १४)

'लक्ष्मी जिसकी माता है, भगवान् विष्णु जिसके पिता हैं और उनके भक्त जिसके बन्धुजन हैं, उसके लिये तीनों लोक ही स्वदेश हैं।'

सभी हमारे कुटुम्बी हैं। दूसरा कोई है ही नहीं। जहाँ जायँ, वहीं हमारा कुटुम्ब है। विदेश कोई है ही नहीं, सब स्वदेश है! साधु एक जगह रोटी छोड़ देता है तो उसे सब जगह रोटी मिलती है!

आप सत्संग करने आये हो तो इतनी बात मान लो कि हम जैसे भी हैं, भगवान्‌के हैं। एक भगवान्‌को अपना न माननेसे दुःख पाना ही पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है। जगह-जगह जन्मोगे, मरोगे, दुःख पाओगे! भगवान्‌के हो गये तो अब मौज करो! अब कुछ करनेकी जरूरत नहीं। भगवान्‌को अपना मान लो तो भगवान् भी राजी, सन्त भी राजी, सब लोग राजी। कोई नाराज नहीं; क्योंकि हमने किसीका हिस्सा लिया ही नहीं। अपना हिस्सा लिया है। भगवान्‌को अपना माननेमें कुछ मेहनत नहीं, कुछ खर्चा नहीं, कुछ सीखना नहीं, कुछ पढ़ना नहीं, कुछ याद करना नहीं, कुछ योग्यता नहीं। संसारमें हमारा कुछ नहीं—यह जानना है और भगवान् हमारे हैं—यह मानना है।

*** *** ***

अपना उद्धार होगा, कल्याण होगा, परमात्माकी प्राप्ति होगी, जीवन्मुक्ति होगी—यह सब वास्तवमें कृपासे होगा। यह एकदम सच्ची बात है। कृपासे जो काम होता है, वह अपनी चेष्टासे नहीं होता, यह मैंने करके देखा है। इसलिये भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखो। कृपा होगी उत्कण्ठासे। जोरकी प्यास होती है तो पानी मिलता है। कैसे मिलता है? इसका पता नहीं। ऐसे ही हमारी कल्याणकी उत्कण्ठा होती है तो कल्याण होता है। होता है भगवान्‌की कृपासे। कैसे होता है, यह बात भगवान् ही जानते हैं। **आप सब कृपाका आश्रय लें और कृपासे ही हमारा कल्याण होगा—यह विश्वास भीतर बढ़ाएँ।** जितना अधिक विश्वास होगा, उतनी आपको शान्ति मिलेगी। भगवान्‌की कृपापर विश्वास होनेसे शान्ति मिलती है, इसमें सन्देहकी बात नहीं है। सिवाय भगवान्‌की कृपाके कोई बल लगाकर अपना कल्याण कर ले, यह हाथकी बात नहीं है। कृपा कैसे होती है—इसका

कुछ पता नहीं! उत्कण्ठा ज्यादा दीखती है, काम नहीं होता! उत्कण्ठा कम दीखती है, काम हो जाता है! इस विषयमें हमारी अक्ल काम नहीं करती! शंकराचार्यजीने लिखा है—

अयमुत्तमोऽयमधमो जात्या रूपेण सम्पदा वयसा।
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्थं न वेत्ति भगवाननुग्रहावसरे॥
अन्तःस्वभावभोक्ता ततोऽन्तरात्मा महामेघः।
खदिरश्चम्पक इव वा प्रवर्षणं किं विचारयति॥

(प्रबोधसुधाकर २५२-२५३)

'किसीपर कृपा करते समय भगवान् ऐसा विचार नहीं करते कि यह जाति, रूप, धन और आयुसे उत्तम है या अधम? स्तुत्य है या निन्द्य? यह अन्तरात्मा (श्रीकृष्ण)-रूप महामेघ आन्तरिक भावोंका ही भोक्ता है। मेघ क्या वर्षाके समय इस बातका विचार करता है कि यह खैर है या चम्पा?'

जहाँ जलकी जरूरत नहीं है, वहाँ (समुद्र आदिमें) भी मेघ बरस जाता है! इसलिये आपलोगोंसे प्रार्थना है कि कृपापर विश्वास रखो। ब्रह्माजीके वचन हैं—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीमद्भागवत १०। १४। ८)

'जो मनुष्य प्रतिक्षण आपकी कृपाको ही भलीभाँति देखता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख-दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है तथा जो मन, वाणी तथा शरीरसे आपको नमस्कार करता रहता है, वह वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र।'

हमें जो सत्संग मिलता है, यह केवल कृपासे मिलता है। सत्संग मिलना अपने हाथकी बात नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—हम प्रभुकी शरणागति चाहते हैं।

स्वामीजी—इसमें मना करनेवाला कोई है ही नहीं, किसीकी ताकत ही नहीं है। शरणागतिमें बाधा कोई दे सकता ही नहीं, पर आप ही शरण नहीं हों तो क्या करें! सिवाय आपकी ढिलाईके और कोई बाधा नहीं है। **भगवान्‌के चरणोंके शरण होनेके समान कोई साधन नहीं है।** गीतामें इसको सबसे अत्यन्त गोपनीय साधन कहा गया है—**'सर्वगुह्यतमम्'** (गीता १८। ६४)। आपके मनमें यह बात आ गयी कि मैं भगवान्‌के शरण हो जाऊँ तो भगवान्‌की कोई विशेष कृपा हो गयी! ज्ञानमार्गपर चलनेसे अभिमान आता है, पर शरण होनेमें अभिमान आता ही नहीं। कारण कि शरणागतिमें हमारा उद्योग, हमारी ताकत है ही नहीं, फिर अभिमान किस बातका?

जैसे बालकका सब काम माँ करती है, ऐसे ही शरणागतका सब काम भगवान् करते हैं। शरणागत भक्त बालककी तरह हरदम मौजमें रहता है! अपनेपर कोई जिम्मेवारी ही नहीं, सब जिम्मेवारी भगवान्‌पर! **भगवान्‌के शरण होकर आप निश्चिन्त, निर्भय, निःशोक तथा निःशंक हो जाओ। फिर भगवान्‌का स्मरण, भजन, नामजप, कीर्तन स्वाभाविक होगा, करना नहीं पड़ेगा। अगर करना पड़ता है तो**

भगवान्‌के शरण हुए नहीं। जैसे किसीको धन मिल जाय और वह सत्संगमें आकर बैठ जाय तो वह सत्संग तो सुनता है, पर उसको बार-बार धन याद आता है, याद करना नहीं पड़ता। ऐसे ही शरणागत होनेपर भगवान्‌की स्वतः याद आती है।

बढ़िया शरणागति यह है कि कभी शरणागत होना ही नहीं है! शरणागत होनेका अर्थ होता है कि इतने दिन हम शरणागत नहीं थे, जबकि वास्तवमें हम सदासे ही शरणागत हैं। आपमेंसे किसीकी हिम्मत हो तो बताओ कि हमने अपनी मरजीसे इन माता-पिताके घरमें जन्म लिया। अपनी मरजीसे जन्म नहीं लिया तो इससे सिद्ध हुआ कि हम सब भगवान्‌के शरणागत हैं। पूरी मरजी किसीकी भी नहीं चलती। अतः शरणागत होना अपनी भूल मिटाना है। हम शरण होते हैं, मुक्त होते हैं तो केवल अपनी भूल ही मिटती है।

शरणानन्दजीसे किसीने पूछा कि महाराज, यहाँ कार्यक्रम पूरा करके आप कहाँ जाओगे? वे बोले कि फुटबालको क्या पता कि खिलाड़ी उसे कहाँ लुढ़कायेगा? जहाँ मालिक लुढ़कायेगा, वहीं जायँगे। इस तरह शरणागतका भाव फुटबालकी तरह होता है। प्रिया और प्रियतमके खेलमें फुटबाल बन जाओ। दोनोंके चरणोंका स्पर्श हो और दोनों पीछे-पीछे भागें! दोनोंकी जय-पराजय भी हमारे हाथमें! हमें किसीकी गरज नहीं और प्रिया-प्रियतम दोनोंको हमारी गरज! फुटबालके खेलमें जो ठोकर मार दे, उसकी जीत और जो ले ले, उसकी हार!

असली शरणागतके भीतर यह भाव नहीं होता कि मैं शरणागत हूँ। उसको साफ दीखता है कि दुनियामात्र भगवान्‌की है। मात्र संसार भगवान्‌की इच्छासे ही चेष्टा कर रहा है। उसके लिये प्रतिकूलता रहती ही नहीं। वह मृत्युमें भी प्रतिकूलता नहीं देखता। वह सबमें भगवान्‌की मरजी देखकर हरदम मस्त रहता है।

*** *** ***

सब-के-सब भाई-बहन तीन बातोंका खूब मनन करें—१) हम अपने साथ कुछ लाये नहीं थे, २) हम अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकेंगे, और ३) जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती। अगर आप कल्याण चाहते हो तो चलते-फिरते, उठते-बैठते इन तीन बातोंका मनन करो। इससे बहुत लाभ होगा।

आप स्वयं उत्पन्न और नष्ट होनेवाले नहीं हो। महासर्गमें भी आपकी उत्पत्ति नहीं होती और महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता—‘**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च**’ (गीता १४। २)। अब विचार करें कि आपके साथ रहनेवाली चीज क्या है? भगवान्‌के सिवाय कोई आपके साथ रहनेवाला नहीं है। वस्तु उत्पन्न और नष्ट होती है। परिस्थिति आती और जाती है। जब आपको गाढ़ नींद आती है, उस समय आपके साथ क्या रहता है? उस समय आपका मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, अहंकार और आपके रुपये, कुटुम्बी, मकान आदि क्या चीज आपके साथ रहती है? ये सब नहीं रहते, पर आप रहते हैं। इसलिये मैं सुखसे सोया, कुछ भी पता नहीं था—ये दो बातें आपको याद रहती हैं। कुछ भी नहीं था, पर मैं था—यह आपका अनुभव है।

श्रोता—जो वस्तु कम समयतक साथ रहती है, वह अपनी कम दीखती है और जो वस्तु ज्यादा समयतक साथ रहती है, वह अपनी ज्यादा दीखती है!

स्वामीजी—जो ज्यादा समयतक साथ रहती है, उससे मोह ज्यादा हो जाता है। वह सौ वर्षोंतक भी आपके साथ रहे और सौ वर्षोंके बाद बिछुड़ जाय तो वह आपकी तो नहीं हुई! इस बातपर

ठीक तरहसे विचार करो। आपकी न उत्पत्ति होती है, न विनाश होता है; न आरम्भ होता है, न अन्त होता है। फिर उत्पन्न और नष्ट होनेवाली, आरम्भ तथा अन्त होनेवाली चीज आपकी कैसे हुई? यह सीधी-सरल, सबके अनुभवकी सार बात है। यह इतनी बढ़िया बात है कि जिसकी महिमा मैं कर नहीं सकता! इस बातको आप मान लो। मान लेनेपर कोई फर्क नहीं दीखे तो कोई बात नहीं। फर्क मत देखो।

श्रोता—मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तु हमारी नहीं है; परन्तु उससे जो सुख मिलता है, उस सुखको हम नहीं छोड़ सकते!

स्वामीजी—विचार करो कि जब संसारसे मिलनेवाला सुख नहीं छोड़ सकते तो फिर परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो जायगी? कल्याण कैसे हो जायगा? **परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवालेको संसारका सुख छोड़ना पड़ेगा।** यह एकदम पक्की बात है। संसारका सुख भी नहीं छोड़ सकते तो फिर क्या चाहते हो आप?

श्रोता—संसारका सुख और परमात्मा—दोनों ही चाहते हैं!

स्वामीजी—ऐसा सम्भव नहीं है। नाशवान् और अविनाशी दोनों परस्पर विरोधी हैं। दोनों साथमें कैसे रह सकते हैं? अविनाशी अविनाशीके साथ रह सकता है अथवा विनाशी विनाशीके साथ रह सकता है। पारमार्थिक उन्नति चाहनेवालेको लौकिक सुख छोड़ना ही पड़ेगा। नाशवान्का सम्बन्ध छोड़े बिना अविनाशीकी प्राप्ति कैसे होगी? आप स्वयं अविनाशी हो और विनाशी चीजको चाहते हो—यही तो बाधा है! विनाशीकी चाहना आपको मिटानी पड़ेगी, नहीं तो अविनाशी चीज कैसे मिलेगी?

श्रोता—नाशवान्की चाहना तो नहीं है, पर नाशवान् वस्तु मिले तो प्रसन्नता होती है!

स्वामीजी—पूर्वका संस्कार है जो अपने-आप मिट जायगा। इतनी बात मान लो कि प्रसन्नता हो गयी, यह ठीक नहीं है।

*** *** ***

परमात्माकी प्राप्ति ऐसे है, जैसे बालक अपनी माँकी गोदीमें जाय! क्या बालक माँकी गोदीमें अपनी योग्यता, शक्ति, बुद्धिमानीके बलपर जाता है? इसमें केवल माँकी कृपा है। इसी तरह आप यह न मानें कि हम दूजे हैं, भगवान् दूजे हैं। भगवान् हमारी माँ हैं—**'त्वमेव माता च पिता त्वमेव०'**। भगवान्के पास जाना अपनी माँके पास जाना है। माँकी गोदीमें जानेके लिये बालकको तैयारी नहीं करनी पड़ती। माँकी गोदीमें जानेमें क्या संकोच? पूत कपूत हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं होती—**'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'**। भगवान्की प्राप्ति हमारी योग्यतासे नहीं होती। वे अपनी कृपासे ही मिलते हैं। इसलिये अपनी योग्यताका भरोसा नहीं रखें। हम भगवान्के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह बात आप दृढ़तासे मान लें और उनकी कृपासे तरफ देखते रहें। जितने भी सन्त भगवान्को प्राप्त हुए हैं, वे सब भगवान्की कृपासे ही हुए हैं, चाहे वे मानें या न मानें।

हम साक्षात् भगवान्के अंश हैं तो क्या भगवान्का लोक हमारा लोक नहीं है? भगवान् सबके लिये समान हैं। भगवान् स्वामीजीके अधिक हैं, हमारे कम हैं—ऐसा कभी स्वप्नमें भी नहीं सोचना। हम सब एक ही माँके बेटे हैं। सपूत हों या कपूत हों, पूत तो हैं ही। एक माँके दस बेटे हों तो हरेक बेटेके लिये माँ पूरी-की-पूरी है। माँके हिस्से नहीं होते।

*** *** ***

परमात्माको प्राप्त करना अपने घरमें जाना है। यह संसार मुसाफिरखाना है, हमारा घर नहीं

है। इसलिये यहाँ हम कभी एक जगह नहीं रहते। अनेक योनियोंमें भटकते रहते हैं। इसलिये परमात्माको अपना घर समझकर प्राप्त करना चाहिये। उसको कठिन मत समझो। कठिनता तो यहाँ, मुसाफिरखानेमें है। राजाओंको भी परदेशमें क्लेश होता है—***'परदेस कलेस नरेसन को'***। अपने घरमें मौजसे रहते हैं! अपने घर जानेके बाद फिर कहीं जाना नहीं पड़ेगा।

आप यह बात बार-बार याद करो कि हम भगवान्‌के हैं। जीवमात्र भगवान्‌का अंश है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि कोई भी हो, इसके सिवाय पशु-पक्षी आदि कोई भी हो, सब परमात्माके अंश हैं। अतः हमें सबकी सेवा, सहायता करनी चाहिये; क्योंकि मूलमें हम सब एक हैं। अगर इस बातको ठीक तरहसे समझ लें और धारण कर लें तो राग-द्वेष मिट जायँगे; क्योंकि सब हमारे ही हैं। किसीका स्वभाव ज्यादा गड़बड़ी करनेका हो तो उससे अपनेको बचाओ, पर लड़ाई मत करो।

दृढ़तासे यह पकड़ लो कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। छोटे-बड़े, अच्छे-मन्दे, भले-बुरे, सदाचारी-दुराचारी आदि सब परमात्माके पुत्र हैं—**'अमृतस्य पुत्राः'** (ऋग्वेद १०। १३। १; श्वेताश्वतर० २। ५)। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध बना रहे, बस। आप भगवान्‌का सम्बन्ध मत छोड़ो, फिर सब अपने-आप ठीक हो जायगा।

*** *** ***

एक ऐसी बात है, जिसको आप मान लो आपकी स्थिति विलक्षण हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है। **इच्छा कोई करे नहीं और मरनेसे डरे नहीं—ये दो बातें आप मान लो तो आपका जीवन बदल जायगा।** वास्तवमें हमारा और भगवान्‌का नित्य सम्बन्ध है। संसारका सम्बन्ध अनित्य है—यह आप सबका अनुभव है। किसीके साथ न रहनेका नाम ही संसार है। संसारमें लगोगे तो भटकते फिरोगे, और भगवान्‌में लग जाओ तो निहाल हो जाओगे। जो इच्छा संसार और शरीरको लेकर होती है, वह इच्छा घातक है। परमात्माकी इच्छा घातक नहीं है।

भगवान्‌के प्रेमकी इच्छा सबसे बढ़िया है। दर्शनसे भी बढ़कर प्रेम है। दर्शन होनेपर प्रेम हो जाय, यह नियम नहीं है, पर प्रेम होनेपर दर्शन हो जायँगे, यह नियम है। प्रेम होगा तो खुद भगवान्‌के मनमें दर्शन देनेकी आयेगी! **भगवान् प्यारे लगें, मीठे लगें—यह तत्त्वज्ञानसे भी बढ़कर है।** प्रेम होनेपर तत्त्वज्ञान बाकी नहीं रहेगा। आपका जीवन सफल हो जायगा। भगवान् प्रेमसे बहुत राजी होते हैं। प्रेम भगवान्‌की खुराक है। भगवान् प्रेमके लोभी हैं। वे प्रेमसे खिंच जाते हैं। प्रेम करनेमें भगवान्‌की कमी नहीं है, हमारी कमी है।

*** *** ***

श्रोता—शाश्वत आनन्दकी प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी—संसारकी आसक्ति, प्रियता छूटे बिना वह आनन्द मिलता नहीं।

श्रोता—परमात्माको प्राप्त करके क्या जीव परमात्मा हो जाता है?

स्वामीजी—वह परमात्मा हो जाता है कि नहीं हो जाता है, यह पंचायती करनी नहीं चाहिये। इसमें मतभेद है। परन्तु परमात्माको प्राप्त करना है, इसमें मतभेद नहीं है।

श्रोता—फिर परमात्माको प्राप्त करनेका स्वरूप क्या है?

स्वामीजी—अभेद भी है और भेद भी है। दोनों हैं। परमात्मप्राप्तिके बाद जब अपने स्वरूपकी तरफ देखता है, तब भेद होता है और जब परमात्माकी तरफ देखता है, तब अभेद होता है। भेद

और अभेद दोनों होनेसे प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम होता है—यह भक्तिका आनन्द है। परन्तु एक परमात्मामें ही स्थित हो जाय तो नित्य, अखण्ड आनन्द प्राप्त होता है—यह ज्ञानका आनन्द है।

जब मनुष्य ज्ञानके पूर्ण आनन्दमें ही सन्तोष कर लेता है, तब मुक्ति हो जाती है; परन्तु प्रेम बाकी रहता है। प्रेम भगवान्‌के साथ एक होनेसे होता है। **संसारमें प्रसिद्धि यह है कि प्रेम द्वैतमें होता है; परन्तु तत्त्वमें गहरा उतरनेपर प्रेम द्वैतमें नहीं होता, प्रत्युत अद्वैतमें होता है।** अद्वैतमें भेद और अभेद दोनों होते रहते हैं, जिससे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। उस प्रेमका वर्णन वाणीके द्वारा नहीं किया जा सकता।

आनन्द परमात्मामें ही है। संसारमें तो आनन्दका वहम है। जिसका संयोग और वियोग होता है, उसमें वियोगकी ही सत्ता है, संयोगकी सत्ता है ही नहीं। जबतक संसारमें रस दीखता है, तबतक परमात्माका प्रेम जाग्रत् नहीं होता।

परमात्माके विषयमें जितनी बातें संसारमें हैं, जितना विवेचन है, जितने मत-मतान्तर हैं, उन सबसे अतीत वास्तविक तत्त्व है! उस तत्त्वमें मतभेद नहीं है। उस तत्त्वको जाननेवाले बहुत कम हैं—**'मनुष्याणां सहस्रेषु.........कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥'** (गीता ७। ३)। आप मत-मतान्तरोंमें न पड़कर एक परमात्माके चरणोंकी शरण हो जायँ। शरणागतिके बिना उस तत्त्वको नहीं जान सकते। शरणागत होनेपर ही उस तत्त्वको जान सकते हैं—***'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई '*** (मानस, अयोध्या० १२७। २)। परमात्मा विचारका विषय नहीं है, प्रत्युत श्रद्धाका विषय है। भगवान्‌पर ही सर्वथा निर्भर हो जायँ तो सब काम ठीक हो जायगा।

यद्यपि सभी मत-मतान्तर परमात्माकी तरफ ले जानेवाले हैं, तथापि मतका आग्रह तत्त्वको प्राप्त नहीं होने देता। अतः मतका आग्रह नहीं चाहिये, अनुष्ठान चाहिये। अपने मतको भी ठीक तरहसे समझनेवाले बहुत कम हैं।

***　　　***　　　***

भगवान् हमारे हैं और शरीर हमारा नहीं है—इतनी ही बात है, लम्बी-चौड़ी बात नहीं है।

श्रोता—बात तो समझमें आती है, पर वह मनमें पूरी उतरती नहीं!

स्वामीजी—आपको बात समझमें आती हो तो उसका आदर करो। आप दस हजार, लाख रुपयोंका तो आदर करते हो, पर उनका आदर करना अपना पतन करना है, और इस बातका आदर करना अपना उद्धार करना है! जितने भी दोष हैं, सब देहाभिमानसे पैदा होते हैं। शरीर माँके पेटमें बना है और यहीं छोड़कर जाओगे। जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह हमारी नहीं होती—यह आपको कसौटी बतायी है।

संसारमें हमारी कोई चीज नहीं है—इसमें जितनी शंका करो, सब चलेगी; परन्तु भगवान् हमारे हैं—इसमें शंका नहीं चलेगी। इसको तो मानना ही पड़ेगा। पहले संसारको जानना पड़ता है और भगवान्‌को मानना पड़ता है। पीछे भगवान् माने हुए नहीं रहते, साक्षात् हो जाते हैं।

भगवान् हरदम आपको देखते रहते हैं। **जैसे बच्चा माँ-माँ कहे तो माँ खुश हो जाती है, ऐसे ही जब आप भगवान्‌को अपना कहते हैं, तब भगवान्‌को बहुत खुशी होती है!** माँ तो एक जन्मकी होती है, पर भगवान् सदाकी माँ है!

***　　　***　　　***

श्रोता—आपने कहा है कि भगवान् कृष्णको गुरु बनाओ, पर भगवान् कृष्ण हमें प्रत्यक्ष उपदेश नहीं देते, प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं देते, तो क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—जो प्रत्यक्ष दीखता है, वह गुरु नहीं होता। गुरु हाड़-मांसका शरीर नहीं होता। शरीरको तो मरनेपर जला देते हैं। अगर प्रत्यक्ष दीखनेवाला ही गुरु है, तो मरनेपर उनको जला दिया तो गुरु खत्म हो गया! अत: वास्तवमें गुरु व्यक्ति नहीं होता, सिद्धान्त होता है। शास्त्रोंमें गुरुको व्यक्ति मानना और व्यक्तिको गुरु मानना दोष बताया गया है। गुरु सिद्धान्त होता है, जो अटल होता है, कभी मरता नहीं। जो खुद अमर होगा, वही अमर बनायेगा। जो खुद मरता है, वह अमर कैसे बनायेगा? गुरु अविनाशी होता है।

श्रोता—किस अवस्थामें जाकर परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है?

स्वामीजी—परमात्माकी प्राप्तिमें अवस्था कारण नहीं है।

श्रोता—हम कैसे समझें कि हमको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी?

स्वामीजी—भोजन करनेपर कैसे समझें कि भूख मिट गयी? उसके लिये क्या थर्मामीटर होता है? सूर्य उदय हुआ कि नहीं हुआ, इसको देखनेके लिये क्या बैटरी लानी पड़ती है? जो बैटरीसे दीखता है, वह सूर्य नहीं होता। बोध ऐसा नहीं होता कि पता ही न लगे।

श्रोता—क्या बन्धनका कारण मन है?

स्वामीजी—आप यह विचार करें कि बन्धन कहाँ है? जहाँ बन्धन होगा, वहीं मुक्ति होगी। बन्धन मन, बुद्धि आदिमें नहीं है, प्रत्युत स्वयंमें है। काम स्वयंमें रहता है—**'रसवर्जं रसोऽप्यस्य'** (गीता २। ५९)। कामनाके अनुसार पदार्थ मिलता है तो खुशी किसको होती है? स्वयंको खुशी होती है या मन-बुद्धिको होती है? खुशी स्वयंको होती है। जहाँ खुशी होती है, वहीं बन्धन है और वहीं मुक्ति है।

श्रोता—जीव परमात्माका अंश है, तो फिर परमात्माने जीवको अलग क्यों कर दिया?

स्वामीजी—परमात्माने जीवको अलग किया ही नहीं, कर सकते ही नहीं! अगर अलग कर दें तो फिर जीव कभी परमात्मासे एक होगा ही नहीं, कभी मुक्त होगा ही नहीं! जो बन्धनमें डाल दे, वह ईश्वर नहीं हो सकता। जीव खुद विषयोंमें लगकर बन्धनमें पड़ा है। इसलिये जीवके ऊपर ही कल्याणकी जिम्मेवारी है।

***   ***   ***

आप एक बात दृढ़तासे पकड़ लें कि हमारी चीज कोई नहीं है। जब कोई चीज हमारी नहीं है तो फिर हमें क्या चाहिये? **'मेरा कुछ नहीं है'**—यह बात समझनेके बाद **'मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये'**—यह बात समझमें आ जायगी। यह समझमें आते ही **'मैं कुछ नहीं है'**—यह समझमें आ जायगा और पूर्णता हो जायगी, कुछ बाकी नहीं रहेगा। श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि किसीकी जरूरत नहीं है, केवल इतनेसे काम हो जायगा!

'मैं' कुछ नहीं है। 'मैं' केवल मान्यता है। 'मैं' का न भास होता है, न बोध होता है, न साक्षात्कार होता है। तत्त्वका, योगका, प्रेमका बोध होता है। संसारकी प्रतीति होती है। परन्तु 'मैं' का न बोध होता है, न प्रतीति होती है।

स्थूलशरीरसे होनेवाली क्रिया, सुक्ष्मशरीरसे होनेवाला चिन्तन और कारणशरीरसे होनेवाली स्थिरता—

तीनों ही अपने काम नहीं आते। **सभी समाधियाँ कारणशरीरमें होती हैं, अपनेमें नहीं होतीं। अतः वे भी अपने कामकी नहीं हैं। छः तरहकी समाधियाँ हैं, जो मेरी देखी हुई हैं।** समाधि और व्युत्थान होना पूर्ण अवस्था नहीं है। पूर्ण अवस्थामें व्युत्थान नहीं होता। वह सहजावस्था है। वह सहजावस्था अभी आपकी है, पर उधर ध्यान नहीं है।

सबसे पहले यह समझना चाहिये कि 'मेरा कुछ नहीं है'। यह खास मूल बात है। शरीर संसारकी सेवाके लिये है। निष्कामभावसे संसारकी सेवा करनेसे आपका संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा। संसार एक सामान्य सम्पत्ति है। यह सार्वभौम चीज है। यहाँ व्यक्तिगत वस्तु कुछ भी नहीं है। अगर यह समझमें आ जाय तो बहुत लाभकी बात है।

संसारमें मेरा कुछ नहीं है—यह संसारको पूरा जानना हो गया! संसारमें मेरा कुछ नहीं है—यह जान लो और भगवान् मेरे हैं—यह मान लो तो काम पूरा हो जायगा।

*** *** ***

मनुष्यशरीर केवल अपना उद्धार करनेके लिये मिला है। **देखनेमें, सुननेमें, इतिहासमें आता है कि जो परमात्माको जानते हैं, वे ही 'ब्राह्मण' हैं। अतः जो परमात्माको प्राप्त कर चुके हैं, वे सब 'ब्राह्मण' हैं।** मेरे विचारसे आप सब-के-सब परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। केवल आपकी इच्छा चाहिये। केवल इच्छासे धन-सम्पत्ति, मान, आदर आदि कोई चीज नहीं मिलती, पर परमात्मा केवल इच्छासे मिलते हैं। **एक परमात्माकी इच्छा हो, साथमें अन्य कोई इच्छा न हो तो जरूर परमात्माकी प्राप्ति होती है।** इच्छाका त्याग करनेमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं। आप छोड़ना चाहेंगे नहीं, तो दूसरा कोई छुड़ा सकता नहीं। आप छोड़ना चाहो तो कौन मना करेगा? यहाँ कई साधु बैठे हैं, इनको घर छोड़नेमें किसने मना किया? कोई मरता हो तो क्या कोई मरनेसे मना करता है? उसको मरने मत दो! जब मरनेसे भी कोई मना नहीं कर सकता, फिर साधु बननेसे कौन मना करेगा? परन्तु परमात्माकी प्राप्तिके लिये न साधु बननेकी जरूरत है, न गृहस्थ बननेकी जरूरत है। जो परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसको प्राप्ति हो जाती है। परमात्माकी प्राप्तिमें सब अधिकारी हैं। कैसा ही क्यों न हो, जो चाहे, वही प्राप्त कर सकता है।

*** *** ***

श्रोता—ज्यों-ज्यों कामना मिटती है, त्यों-त्यों अहम् भी मिटता जाता है क्या?

स्वामीजी—अहम् कमजोर हो जाता है, जैसे जड़ कटनेपर वृक्ष कमजोर हो जाता है। भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌की कृपासे बहुत जल्दी काम होता है।

श्रोता—मालूम देता है कि ससुरालवालोंने तान्त्रिक विद्यासे मेरे बेटेको वशमें कर लिया है, मुझे क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—हनुमानचालीसाका पाठ करो। बेटेको भी हनुमानचालीसा पढ़नेको कहो। ऐसे तान्त्रिक काम करनेवालोंकी बहुत बुरी दशा होती है। वे नरकोंमें जाते हैं! यह बड़ा भारी पाप है। **दूसरोंको दुःख देकर जो सुख भोगते हैं, वे कई गुना अधिक दुःख भोगेंगे, यह पक्की बात है।** भगवान्‌का भजन करनेवालेपर तान्त्रिक प्रयोग नहीं चलता। आप किसीसे वैर, द्वेष मत करो। कोई बुरा करता है तो करनेवालेकी बुरी दशा होगी। किसीको भी दुःख देना बड़ा भारी पाप है, मामूली पाप नहीं है। उसे ब्याजसहित दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये किसीका भी अनिष्ट न चाहे, सबके हितका भाव रखे।

श्रोता—कोई रामकी साधना करता है, कोई शिवजीकी साधना करता है, कोई गायत्रीकी साधना करता है तो ये सब एक ही हैं या इनमें कोई अन्तर है?

स्वामीजी—अन्तर अपने भावोंमें होता है। हम पूछें कि साधना क्यों करते हैं, तो मनमें कोई-न-कोई कामना मिलेगी कि इससे कार्य सिद्ध होगा, आदि। अगर कामना नहीं है तो सब ठीक हैं। कामना सत्यानाश करनेवाली है! कामनासे फायदा तो कुछ भी नहीं होता, पर नुकसान बड़ा भारी होता है! कामना न हो तो किसीकी भी सेवा करो, कल्याण हो जायगा।

पारमार्थिक उन्नति चाहनेवालेको मान, बड़ाई, आदर, सत्कार, भोग आदिसे बचना चाहिये। इनके मनमें आते ही हानि हो जाती है! **मान, बड़ाई आदिकी इच्छासे और दूसरेका अनिष्ट चाहनेसे आध्यात्मिक उन्नतिमें बहुत बड़ी बाधा होती है। सुखकी इच्छा होते ही भीतरकी अच्छी-अच्छी भावनाएँ अचानक लुप्त हो जाती हैं! हमें तो यही बात मालूम देती है कि केवल सुखभोगकी इच्छाके कारण ही पारमार्थिक उन्नतिसे वंचित हो रहे हैं!**

*** *** ***

सत्संग हो रहा हो, कीर्तन हो रहा हो, उस समय बीचमेंसे उठकर नहीं जाना चाहिये। अगर किसीको जाना ही हो तो ऐसे छिपकर जाये कि मुझे पता न लगे। पता लगनेपर मेरेपर असर होता है, जिससे हमारा कीर्तन अथवा सत्संग बढ़िया नहीं होता। सत्संगमें बढ़िया बात चल रही हो और सामनेसे आदमी उठ जाय तो वह रस नहीं रहता। बढ़िया बातें पैदा नहीं होतीं, बाधा लगती है। उठनेवालेको भी पाप लगता है। अत: जिनको बीचमेंसे उठकर जाना हो, वे पहलेसे ही एक तरफ बैठें। बीचमें बैठे ही नहीं। अगर बीचमें बैठ जाय तो दाँत भींचकर, छाती कड़ी करके बैठा रहे। बीचमेंसे उठनेपर सत्संगमें बाधा लगती है। यह मामूली बात नहीं है, बहुत नुकसानकी बात है। कीर्तनके बीचमेंसे उठना नामका बड़ा भारी तिरस्कार है, अपमान है। इससे सबको धक्का लगता है। जैसे, पानीमें पत्थर फेंकनेसे तरंगें उठती हैं, जो दूर किनारेतक जाती हैं। ऐसी कई बातें हैं, जिनके कारण वर्षोंतक सत्संग करनेपर भी उन्नति नहीं होती। इसलिये खूब सावधान रहो। आपसे प्रार्थना है कि कभी भी कहीं भी जाओ, बीचमेंसे मत उठो।

*** *** ***

पारमार्थिक बातोंको समझनेमें दो बड़ी बाधाएँ हैं—पहली, संसारका विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) और दूसरी, अहंकार। विषयासक्ति और अहंकारके कारण पारमार्थिक बातें ठीक तरहसे समझनेपर भी अँधेरा आ जाता है। **विषयासक्तिमें भी पुरुषकी स्त्रीके प्रति और स्त्रीकी पुरुषके प्रति आसक्ति बहुत बाधक है।**

ध्येय परमात्माकी प्राप्तिका होनेपर ही जप, कीर्तन आदिसे लाभ होता है। ध्येय परमात्मा न हो तो लाभ नहीं होता। राग-रागिनीपर, ताल-स्वरपर ज्यादा मन लगेगा तो तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी। क्रिया नहीं हो और चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते हरदम ध्येयकी तरफ विशेष ध्यान हो तो बहुत लाभ होगा।

क्रिया और पदार्थकी आसक्ति बहुत बाधक है! **शरीर, विद्या, बुद्धिकी योग्यता परमात्मप्राप्तिमें बाधक है।** यह बात आपको मिलेगी नहीं। मैं खुद भुक्तभोगी हूँ! मैंने व्याख्यान अच्छा दिया—ऐसा मनमें आते ही तत्त्वकी प्राप्तिमें बाधा लग जायगी! **जड़ताको लेकर जो अच्छापना है, वह परमात्माकी प्राप्तिमें हेतु कैसे होगा?**

यह जो व्याख्यान देना है, यह बहुत बाधक है! इसमें नुकसान है, फायदा नहीं।

पंडिताई पाने पड़ी ओ पूरबलो पाप।
औरां ने प्रबोधतां खाली रह गया आप॥

अब आप कह सकते हो कि तुम क्यों व्याख्यान देते हो? यह मैं सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-के कहनेसे देता हूँ। इसलिये इसमें नुकसान नहीं होता। अपनी मरजीसे व्याख्यान देनेसे बहुत नुकसान होता है। इसमें अभिमान आता है, जो बहुत बाधक है। मान-बड़ाई बहुत बाधा देती है। लोग कहेंगे कि व्याख्यान बहुत अच्छा दिया, और उसमें राजी हो गये तो परमात्मप्राप्ति नहीं होगी। पदार्थोंकी, भोगोंकी, संग्रहकी, मानकी, बड़ाईकी इच्छा भीतर है तो यह परमात्मप्राप्ति होने ही नहीं देगी।

जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति कैसे होगी? जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति नहीं होगी, नहीं होगी, नहीं होगी! जड़ताका त्याग करनेसे होगी। आप परमात्मप्राप्तिके लिये जितना उद्योग करोगे, उतना ही परमात्मासे दूर होंगे। तत्त्वबोध होगा ही नहीं। आजकल जिज्ञासु इसपर गहरा विचार करते ही नहीं! ऊपर-ऊपरकी बातोंपर विचार करते हैं। जिज्ञासा करो, पर तत्त्वप्राप्तिकी चाहना मत करो। जिज्ञासा और चाहना—दोनों अलग-अलग हैं। मैं क्या हूँ? संसार क्या है? इसकी खोज करो। शास्त्रमें जगत्, जीव और ईश्वर—तीनोंकी खोज (विचार)-की बात आती है, पर वास्तवमें ईश्वर खोजका विषय नहीं है, प्रत्युत श्रद्धा-विश्वासका विषय है। जगत् और जीव—ये दो विचारके विषय हैं। परमात्मा विचारका विषय नहीं है। **संसारकी चाहनाको मिटानेके लिये परमात्माकी चाहनाकी जरूरत है, तत्त्वकी प्राप्तिके लिये जरूरत नहीं है।**

***　　　***　　　***

अपना लक्ष्य परमात्माका रखो तो हरेक काम भजन हो जायगा। परमात्माका लक्ष्य रखनेसे संसारमें घाटा नहीं पड़ेगा, प्रत्युत नफा-नुकसान जो होनेवाला है, वह अपने-आप होगा। कारण कि उसका सम्बन्ध प्रारब्धसे है, इच्छासे नहीं। आप दिनभर जो क्रिया करो, सभी भगवान्‌को लक्ष्य रखकर करो। निरर्थक क्रिया भी भगवान्‌के लिये करो तो वह सार्थक हो जायगी। कोई भी काम करो, भगवान्‌को याद रखो। शरीर भगवान्‌का है, इसलिये उसको शुद्ध करनेके लिये शौच जाना भी भगवान्‌का काम है, भजन है। परन्तु स्त्री, पुत्र, धन आदि सांसारिक पदार्थोंके लिये भजन करके आप भजनको भी रद्दी कर देते हो! अत: सांसारिक पदार्थोंके लिये भजनकी बिक्री मत करो। केवल भगवान्‌के लिये करोगे तो आपकी मात्र क्रिया भजन हो जायगी।

आप भगवान्‌के अंश हो, यह बात आप हरदम याद रखो। यह बात मैं आपको बार-बार इसलिये कहता हूँ कि इन वर्षोंमें यह बात मुझे ज्यादा जँची है! पहले मेरा इस तरफ इतना ख्याल नहीं था। **जैसे आपके घरकी कन्या विवाहके बाद उस घरकी हो जाती है, ऐसे ही आप भगवान्‌के घरके हो जाओ।** ऐसा मान लो कि अब हम कुँआरे नहीं हैं। हम जंगली पशुकी तरह बिना मालिकके नहीं हैं। हम भगवान्‌के हैं। आप वास्तवमें सदासे ही भगवान्‌के हो, चाहे जानो या न जानो, मानो या न मानो। केवल अपना भाव बदलना है।

‘होहि राम को नाम जपु’—नाम जपनेसे लाभ होगा, पर भगवान्‌का होकर नाम जपना और तरहका होता है। कोई बालक रोता है तो हरेकको दया आती है, पर माँ-माँ कहकर रोता है तो माँकी ताकत नहीं कि बैठी रहे। उसको उठकर जाना ही पड़ता है। बालक रोता है तो सब माँ

नहीं दौड़तीं; वही दौड़ती है, जिसको वह माँ कहता है। इसी तरह रामजीका होकर रामजीका भजन करनेसे रामजीको दौड़ना ही पड़ता है।

***   ***   ***

श्रोता—संसारमें सुख है—यह भाव भीतर बैठा हुआ है, इससे इच्छाएँ छूटती नहीं!

स्वामीजी—संसारमें सुख है ही नहीं। संसारमें सुख होता तो लोग सुखी हो जाते। अगर लोग सुखी नहीं हैं तो संसारमें सुख नहीं है—यह निर्णय कर लो। गीतामें साफ-साफ संसारको 'दु:खालय' लिखा है (८।१५)। दु:खालयमें क्या सुख होगा?

श्रोता—तात्कालिक सुख दीखता है, इसलिये उसमें सुखबुद्धि बन जाती है!

स्वामीजी—इतने दिन आपने सुख लेकर देख लिया, तो देखकर तो सीखो। अपने अनुभवका आदर करो।

श्रोता—भोगके परिणाममें तो दु:ख दीखता है, पर भोग सामने आते ही भूल जाते हैं!

स्वामीजी—आप भोगका आरम्भ न देखकर उसका अन्त देखो तो निहाल हो जाओगे। भोगका आरम्भकाल सुखदायी है, अन्तिम काल सुखदायी नहीं है—**'यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव'** (गीता १८। ३८)। आप केवल अन्तिम कालको अर्थात् परिणामको देखो। भोगके परिणाममें सुख नहीं मिलता, प्रत्युत त्यागके परिणाममें सुख मिलता है।

आप विचार करें कि ज्यादा-से-ज्यादा सुख किसमें मिलता है? नींदमें जितना सुख मिलता है, उतना किसीमें नहीं मिलता। आप आठ पहर भी नींदके बिना नहीं रह सकते। उस नींदके लिये आप क्या उद्योग, परिश्रम करते हो? उद्योग करनेसे नींद नहीं आती। कोई उद्योग नहीं करनेसे नींद आती है—यह सबका प्रत्यक्ष अनुभव है। परिश्रम करनेसे परिणाममें नींद आ सकती है, पर नींदके लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता। दूसरे सुखके बिना आप जी सकते हो, पर नींदके बिना आप जी नहीं सकते, पागल हो जाओगे। इससे सिद्ध होता है कि **आपका वास्तविक जीवन बिना उद्योगका है।** उद्योग संसारमें है। अनुद्योग परमात्माकी प्राप्तिमें है। आप [स्वयंके लिये] कुछ भी मत करो, कुछ भी चिन्तन मत करो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। जो सब जगह परिपूर्ण है, उसके लिये क्या उद्योग करना पड़ता है? क्रिया करनेसे और पदार्थोंसे शान्ति नहीं मिलती।

***   ***   ***

शरीरसे आप कितनी ही मेहनत कर लें, यह चेतनतक नहीं पहुँच सकता। यह चेतनके साथ न विशेष एकता रखता है, न भेद रखता है; न राग रखता है, न द्वेष रखता है। **हम जड़को तो अपना मानते हैं और चेतनको भूल गये —यह मूल बाधा है। मूल बाधाको लेकर ही हम साधन करते हैं, इसलिये परमात्मप्राप्ति नहीं होती।** जड़का सर्वथा त्याग करनेसे ही प्राप्ति होगी। त्यागमें भोगोंकी आसक्ति और संग्रहकी आसक्ति—ये दो छूटे बिना शान्ति नहीं मिलती। ये सर्वथा न छूटें तो कोई बात नहीं, पर इनको छोड़नेका उद्देश्य बिलकुल चाहिये। जड़ताके त्यागका उद्देश्य होनेसे परमात्माकी तरफ वृत्ति होती है और जड़ताका महत्त्व मिटता है।

संग्रहकी आसक्तिसे भी भोगोंकी आसक्ति विशेष है। पैसोंका त्याग सुगम है, पर भोगोंकी, स्त्रीकी आसक्तिका त्याग कठिन है। कनक-कामिनीके रागमें भी कनकका राग मिट जाता है, पर कामिनीका राग बहुत दूरतक रहता है। भीतरमें रसबुद्धि रहती है, जो बहुत घातक है! जैसे धूपसे उतना नुकसान

नहीं होता, जितना धूपसे तपी हुई जमीनसे होता है, ठण्डकी अपेक्षा ठण्डी जमीनसे बहुत नुकसान होता है, ऐसे ही स्त्रीमें आसक्तिवाले पुरुषोंके संगसे बड़ा नुकसान होता है। इसलिये साधकको सावधान रहना चाहिये। भगवान्‌से प्रार्थना करो। मेरेको तो ऐसा मालूम होता है कि भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता। गोस्वामीजी महाराज बहुत जानकार हैं! वे लिखते हैं—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

भीतर जो कनक-कामिनीकी महत्ता बैठी हुई है, वह प्रेम-भक्तिके बिना मिटेगी नहीं। ज्ञानसे भी मिटती है, पर प्रेम-भक्तिसे जैसी मिटती है, वैसी नहीं मिटती। आपको विश्वास हो चाहे न हो, पर बात ऐसी ही है! हमने 'साधक-संजीवनी' लिखी तो उसमें ज्ञानकी प्रधानता है, पर उसके 'परिशिष्ट' में भक्तिकी प्रधानता है। भक्तिके बिना भीतरका सूक्ष्म राग, आसक्ति, रसबुद्धि मिटती नहीं और उसके मिटे बिना पूर्णता होती नहीं। इसलिये भगवान्‌का आश्रय लेना बहुत बढ़िया है। भगवान्‌का आश्रय लेनेसे बहुत लाभ होता है।

***　　***　　***

श्रोता—गुरु बनाना जरूरी है क्या?

स्वामीजी—कोई जरूरत नहीं है। जैसे छोटे बालकको किसीकी जरूरत नहीं होती। उसकी गरज माँ करती है। ऐसे ही आपको जरूरत नहीं है, गुरु आपकी गरज करेगा। यह सच्ची बात है, आप मानो चाहे मत मानो। आप गुरुकी खोज करते हो तो क्या बालक माँकी खोज करता है? **खोज गुरु करे, हम क्यों करें? माँको जितनी गरज है, उतनी बालकको नहीं है। इसी तरह गुरुको जितनी गरज है, उतनी चेलेको नहीं है। इसलिये आप निश्चिन्त रहो। गुरु अपने-आप मिलेंगे।**

***　　***　　***

मेरा कुछ नहीं है और भगवान् मेरे हैं—ये दो बातें अगर आप स्वीकार कर लें तो बेड़ा पार है! बहुत जल्दी आपकी आध्यात्मिक उन्नति हो जायगी। अन्य उपायोंकी अपेक्षा यह उपाय बहुत जल्दी सिद्धि करनेवाला है। 'मेरा कुछ नहीं है'—यह होनेपर 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह अपने-आप हो जायगा। मेरी कोई चीज मानते ही 'चाहिये' पैदा हो जायगी। शरीर मेरा है तो रोटी भी चाहिये, कपड़ा भी चाहिये, मकान भी चाहिये, औषध भी चाहिये। 'चाहिये-चाहिये' की लाइन लग जायगी। जब मेरी वस्तु कोई है ही नहीं तो फिर मेरेको क्या चाहिये? मेरा कुछ नहीं है तो फिर मौज हो जायगी!

जो तत्त्वज्ञान चाहते हैं, उनके लिये तो यह बहुत ही सुगम बात है कि अपनी कोई चीज है ही नहीं। मात्र इतना माननेसे कितना ही झंझट मिट जायगा। पढ़ना, सुनना, समझना, श्रवण करना, मनन करना, निदिध्यासन करना, ध्यान करना, समाधि करना, सविकल्प-निर्विकल्प करना, सबीज-निर्बीज करना, सब आफत मिट जायगी!

प्राप्त वस्तुमें ममता न करे और अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे। मेरा कुछ नहीं है—यह जान लें और भगवान् मेरे हैं—यह मान लें। माननेसे भगवान् माने हुए नहीं रहेंगे, प्रत्युत प्राप्त हो जायँगे। सारा संसार भगवान्‌का है और भगवान् मेरे हैं—इस तरह संसारके साथ भी हमारा सम्बन्ध हुआ, पर बीचमें भगवान् आ गये; अत: संसारका विष नहीं चढ़ेगा, अभिमान नहीं आयेगा। जैसे, तालाबमें

डुबकी लगाते हैं तो सैकड़ों मन जल ऊपर आ जाता है, पर भार होता ही नहीं। पर बाहर निकलनेपर एक घड़ा भी उठा लें तो भार हो जाता है। जहाँ ममता की और भार हुआ! ममता नहीं की तो भार नहीं हुआ। ममता न हो तो सब संसार होते हुए भी कोई बाधा नहीं है। मेरा मान लिया तो फँस गये!

हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। इतनी बातसे बहुत जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। छोटी-बड़ी सब भूल मिट जायगी; क्योंकि अपनी असली जगह आ गये!

*** *** ***

जो मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह चीज अपनी नहीं होती—इस एक बातका आप ख्याल रखो। यह बहुत दामी बात है। मुझे तो यह बात बहुत बढ़िया लगती है। इसकी जितनी महिमा कही जाय, थोड़ी है। यह ऐसी बात है कि मानो नींदसे आँख खुल गयी! यह कसौटी है। शरीर भी मिला है, बिछुड़ जायगा। धन भी मिला है, बिछुड़ जायगा। घर, कुटुम्ब भी मिला है, बिछुड़ जायगा। किसीकी ताकत नहीं कि इनको रख ले। ये सब चीजें अपनी नहीं हैं। अगर इस बातको याद कर लो तो बहुत लाभकी बात है। **कामना छोड़ना बड़ा कठिन मालूम देता है, पर इस बातको मान लें तो निष्कामभाव अपने-आप होगा।** इन चीजोंको अपनी मानोगे तो सिवाय दु:खके कोई फायदा नहीं है। जितना ज्यादा अपना मानोगे, उतना ज्यादा दु:ख होगा। जो अपनी नहीं है, उसको अपनी मानना बेईमानी है। वस्तु संसारकी है और संसार किसी व्यक्तिका नहीं है। यह सबको मिला है और सबसे बिछुड़ेगा। अपने केवल भगवान् हैं, जो सदा साथ रहते हैं। पर आप उधर ध्यान नहीं देते। अपनी चीज कभी बिछुड़ती नहीं।

ज्ञानमार्गसे चलो तो सब वस्तुएँ प्रकृतिकी हैं, योगमार्गसे चलो तो संसारकी हैं और भक्तिमार्गसे चलो तो भगवान्‌की हैं। तीनों ही बातें सच्ची हैं। वस्तुएँ अच्छा उपयोग करनेके लिये मिली हैं। इनका मालिक बनना गलती है।

*** *** ***

शरीर आदि सब वस्तुएँ त्याग करनेके लिये हैं। वस्तुके त्यागसे भी अभाव होता है और वस्तु न मिलनेसे भी अभाव होता है; परन्तु वस्तु न मिलनेसे मुक्ति नहीं होती। मुक्ति त्यागसे होती है। हमें कोई वस्तु नहीं मिली, पर मनमें उसकी इच्छा रही तो सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा। किसीको रोटी नहीं मिली, भूखों मर गया तो रोटीका त्याग नहीं हुआ, प्रत्युत रोटी मिली नहीं। इसलिये **जड़ताका सम्बन्ध-विच्छेद त्यागसे होता है, अभावसे नहीं।** नींदमें संसारको भूल जाते हैं तो शान्ति मिलती है, अगर त्याग कर दें तो कितनी शान्ति मिले!

भगवान् सब जगह मौजूद हैं। कुछ नहीं चाहनेसे आपकी भगवान्‌में ही स्थिति होगी। जिस वस्तुको आप चाहते हो, उस वस्तुमें आपकी स्थिति होती है। अगर मेरी घड़ीकी चाहना है तो मेरी स्थिति घड़ीमें है। अगर कुछ न चाहें तो भगवान्‌के सिवाय कहाँ स्थिति होगी और क्यों होगी? इसी तरह किसी वस्तुको अपनी मानते हैं तो आपकी स्थिति उस वस्तुमें है। **कोई भी वस्तु अपनी नहीं है तो परमात्मामें स्थिति है और कुछ भी नहीं चाहिये तो परमात्मामें स्थिति है। संसार मेरा नहीं है, भगवान् मेरे हैं—इतनेमें पूरी-की-पूरी बात आ गयी!**

श्रोता—पहले भगवान्‌ने संसार बनाया, फिर कहते हैं कि संसारका त्याग करो, तो फिर संसार बनाया ही क्यों?

स्वामीजी—भगवान्‌को माफ कर दो!! अरे भाई, भगवान्‌ने त्याग करनेके लिये तुम्हारेको शरीर-संसार दिया है। जब तुम्हारा कुछ होगा ही नहीं, तो फिर त्याग क्या करोगे?

श्रोता—संसारमें हमारी आसक्ति कम कैसे हो? इसका उपाय बताइये।

स्वामीजी—दूसरोंकी सेवा करो। जैसे आप दूसरोंकी सेवामें जितने रुपये खर्च कर दोगे, उतने रुपये कम हो जायँगे, ऐसे ही आप भावसे सबकी सेवा करोगे तो भावमें त्याग आयेगा, और त्यागसे मुक्ति होती है। अत: दूसरोंकी सेवाका भाव होते ही त्याग हो जायगा। दूसरोंकी सेवा करनी है—ऐसा भाव होनेसे आप रुपये खर्च कर देते हैं कि नहीं?

श्रोता—भावशरीर किसको कहते हैं?

स्वामीजी—मैं साधक हूँ—यह भावशरीर है। भावशरीर निराकार होता है। शरीरके मरनेपर साधक नहीं मरता।

*** *** ***

आप भगवान्‌को याद करो या न करो, भगवान् सबका पालन करते हैं। ब्रह्माजी उत्पन्न करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर संहार करते हैं। फिर आप मुफ्तमें क्यों परेशान होते हैं? परिवार-नियोजन करनेवाले बहुत पाप करते हैं! गर्भपात करके बड़ी भारी हत्या करते हैं! यह सिवाय मूर्खताके कुछ नहीं है। भगवान् इतने वर्षोंसे सबका पालन करते आ रहे हैं, क्या वे अब भूल गये? क्या उनको घाटा लग गया?

जो गर्भपात करते हैं, वे बड़ा भारी पाप करते हैं, मामूली पाप नहीं! जिस घरमें गर्भपात हुआ हो, उस घरकी भिक्षा हम नहीं लेते। उनका अन्न खानेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। हम जहाँ जाते हैं, वहाँ कह देते हैं कि जिस घरमें एक स्त्रीने भी गर्भपात किया हो, उस घरका अन्न हमारे पास बिलकुल नहीं आना चाहिये। उसका पानी पीना भी पाप है। परन्तु जो झूठ बोलकर हमें धोखा देते हैं, उनको बड़ा भयंकर पाप लगेगा! पहले तो गर्भपातका महान् पाप किया, अब भिक्षा देकर मेरे साथ विश्वासघात करते हैं! बड़ा घोर अपराध होगा! कितने नरक भोगोगे, पता नहीं है। भोगते ही जाओगे!

मैं गर्भपातका, परिवार-नियोजनका निषेध करता हूँ तो कुछ लोग कहते हैं कि स्वामीजी जानते नहीं, तो हम अनजान ही अच्छे हैं, जानकारी आप अपने पास रखो! हमें ऐसी जानकारी नहीं चाहिये जो नरकोंमें ले जाय! जानकार नरकोंमें जायँगे, अनजान बच जायँगे।

*** *** ***

श्रोता—गृहस्थ-जीवनमें ज्ञान ठीक है या भक्ति ठीक है?

स्वामीजी—दोनों ठीक हैं—

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

(मानस, उत्तर० ११५। ७)

परन्तु मेरी सम्मति पूछो तो भक्ति ठीक है।

हमारे सामने तीन चीजें हैं—परमात्मा, आत्मा और संसार। इनमें संसारका सम्बन्ध सदा ही दु:खदायी है। संसारकी आसक्ति सबसे निकृष्ट है और इसको छोड़े बिना पारमार्थिक उन्नति होती नहीं! इसको आप छोड़ते नहीं हो और छोड़ना चाहते भी नहीं। संसार दु:खालय है। वह दु:खालय आपको प्यारा

लगता है तो फिर मैं आपसे क्या कहूँ? मेरा जो कहना (व्याख्यान देना) है, यह सेठजीके कारणसे है, मेरे कारणसे नहीं!

साधक तभी होता है, जब कम-से-कम संसारसे विमुख हो जाय। **संसारसे विमुख हुए बिना आध्यात्मिक रुचि भी नहीं होगी, उसकी प्राप्ति तो और कठिन है!** सुख भोगना और रुपयोंका, पदार्थोंका संग्रह करना—ये दो जिसके विचार हैं, वह परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी ही नहीं है। यह गीताकी बात कहता हूँ, मेरे घरकी बात नहीं। गीताके दूसरे अध्यायका इकतालीसवाँ, बयालीसवाँ, तैंतालीसवाँ और चौवालीसवाँ श्लोक पढ़ लेना।

हमें तो वर्षोंके बाद यह सार बात जँची है कि भगवान्‌को अपना मानो। भगवान् अपने हैं, और कोई अपना नहीं है। यह हमारे मनकी बात है। इसके सिवाय और हम ज्यादा जानते नहीं।

*** *** ***

एक बात है कि **सन्तोंकी वाणीमें अपनी तरफसे कोई शब्द कभी मिलाना नहीं चाहिये।** वह भले ही कैसी ही हो, वही ठीक है। पदमें अपने शब्द मिला लेना बड़ी गलती है। हमारे ग्रन्थोंमें कवियोंकी वाणीमें भी शब्द नहीं मिलाते। नीचे लिख देंगे कि **'निरङ्कुशा कवयः'** अर्थात् कवि निरंकुश है, पर पदको छेड़ेंगे नहीं। जैसे, गीतामें **'एतन्मे संशयम्'** (६। ३९) लिखा है, जो व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध है। परन्तु उसको वैसा ही लिखा जाता है। किसी भी टीकाकारने इसको छेड़ा नहीं है। गीतामें आये ऐसे आर्ष प्रयोगोंके विषयमें हमने **'गीता-दर्पण'** पुस्तकमें पूरा प्रकरण लिखा है। व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध न होनेपर भी इनको अशुद्ध नहीं कह सकते। इनको इधर-उधर करनेका हमें अधिकार नहीं है। ऐसा करना बिलकुल अनधिकार चेष्टा है।

*** *** ***

सन्तोंकी कृपासे मेरेको ऐसी कई बातें मिली हैं कि जिनसे बहुत सुगमतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। परन्तु आप मेरी बातोंकी तरफ ध्यान दो और उसमें गहरे उतरकर ठीक तरहसे समझो। ऐसी एक बात है कि जिससे तत्काल उन्नति हो जाय, पर उसमें आपकी लगन चाहिये; जैसे—भोजन कितना ही बढ़िया हो, पर भूख चाहिये। भूखके बिना बढ़िया भोजन भी बढ़िया नहीं लगता, और वह गुण भी नहीं करता तथा पचता भी नहीं। इसलिये कृपा करो कृपानाथ! हृदयमें उसकी उत्कण्ठा बढ़ाओ।

गोस्वामीजी महाराजने कहा है—***'अंतहु तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते'*** (विनयपत्रिका १९८)। आप जिनको अपना मानते हो, वे सब अन्तमें छूट जायँगे। अगर उनको आप पहले ही छोड़ दो तो कितने आनन्दकी बात है! घर, धन, परिवार, जमीन-जायदाद, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार आदिमें आपका जो आकर्षण है, वह सब एक दिन छूटेगा। इनमेंसे कौन सदा रहनेवाला है? शरीर भी रहनेवाला नहीं है। इनके रहते हुए अगर आप ममता छोड़ दो तो तत्काल निहाल हो जाओ! ममता छोड़ते ही समता आ जायगी।

संसारका सुख देनेके लिये है, लेनेके लिये नहीं। इतनी-सी बात मान लो तो निहाल हो जाओगे। काम सब करो, पर भीतरसे ममता छोड़ दो। सबके साथ प्रेमका बर्ताव करो, आदरका बर्ताव करो, सबको सुख पहुँचाओ, आराम दो, पर अपना मत मानो। एक दिन सबको छोड़ना पड़ेगा। किसीकी ताकत नहीं कि रख ले। छूटनेवालेकी ममता छोड़नेमें क्या बाधा लगती है? **जो जानेवाला है, उसको अपना नहीं मानना है और जो रहनेवाला है, उसको अपना मानना है—इतना ही तो काम है!**

कोई लम्बी-चौड़ी बात नहीं है। इसके सिवाय और क्या बात है? आप बताओ। श्रवण-मनन-निदिध्यासन करनेकी, आँख-कान-नाक बन्द करनेकी जरूरत नहीं है। **बात इतनी-सी ही है—*'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*। भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है। आपको नहीं जँचे तो भी मान लो।** बात सच्ची है। इसको आप कठिन मत मानो।

एक आदमी घोड़ेपर चढ़कर जा रहा था। दोपहरके समय प्यास लगी तो एक गाँवमें गया। वहाँ चलते-चलते उसने देखा कि एक जगह कथा हो रही है। उसने जल पीकर घोड़ेको बाहर बाँध दिया और कथा सुननेके लिये चला गया। कथामें आया कि भाई, एक दिन सबको जाना है। दूसरोंकी सेवा करो, सुख पहुँचाओ; संसारमें इतना ही काम है। माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई आदि सब जानेवाले हैं। उनकी सेवा करके लाभ ले लो, आदि-आदि। ऐसी बातें उसने सुनी तो उसपर असर पड़ा। वह बाहर निकलकर जहाँ मार्ग देखा, वहीं चल पड़ा। घोड़ा जहाँ-का-तहाँ बँधा रह गया। किसीने रोटी दी तो खा ली और हरदम भजनमें लग गया। लगभग एक वर्षके बाद वह घूमते-घूमते उसी गाँवमें आया। उन्हीं दिनों वहाँ कथा हो रही थी। उसने देखा कि लोग बैठे सुन रहे हैं। कथा समाप्त हुई तो उसने सबको दण्डवत् प्रणाम किया कि आप धन्य हो, बड़े शूरवीर हो! रोजाना सुनते हो और अबतक बैठे हो! मैंने एक दिन सुना तो अबतक बुद्धि ठिकाने नहीं आयी! आप रोजाना सत्संग सुनते हो! नमस्कार है!

जो अन्तमें करना पड़ेगा ही, उसको पहले ही कर लो तो क्या हर्ज है? मैं साधु होनेके लिये, घर-बार छोड़नेके लिये नहीं कहता। इसकी कोई जरूरत नहीं है। भीतरका मोह ही बाँधनेवाला है। केवल मोह छोड़ दो। मैं कोई नयी बात नहीं कहता हूँ। वही बात कहता हूँ, जो सबके साथ जरूर बीतेगी। आपको छोड़ना ही पड़ेगा। **आपके परदादाने छोड़ा, दादाने छोड़ा, बापने छोड़ा, तो क्या आप रख लोगे?** आप साथ ले जाओगे? चाहे वे मर जायँ, चाहे आप मर जायँ, चाहे दोनों मर जायँ, इसके सिवाय चौथी बात क्या होगी? उनमें मोह करोगे तो रोनेके सिवाय कुछ मिलेगा नहीं। कृपा करके आप भीतरसे मोह छोड़ दो और सेवा कर दो। सेवा करनेसे सब राजी हो जायँगे। उनसे कुछ चाहो मत। आप उनसे सुख चाहो, वे आपसे सुख चाहें तो दोनों ही घाटेमें रहेंगे। न आपको सुख मिलेगा, न उनको मिलेगा। दो ठगोंमें ठगाई नहीं होती! अपनी शक्तिके अनुसार सेवा कर दो और कुछ चाहो मत तो सुगमतासे मोह छूट जायगा। सेवा करके आफतसे पिण्ड छुड़ाओ।

आज आपको सब पुस्तकोंका निचोड़, सबका सार बताया है।

*** *** ***

नामजप करना और प्राणायाम करना—दोनोंमें बड़ा भारी फर्क है। **नामजप तो कल्याण करनेवाला है, पर प्राणायाम कल्याण करनेवाला नहीं है।** नामजपमें तो भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है, पर प्राणायाममें केवल जड़ताका सम्बन्ध है। नामजप उपासना है, पर प्राणायाममें केवल जड़ताका सहारा है। जड़ताके सहारेसे कल्याण कैसे होगा? नहीं होगा। यद्यपि जीभसे नामजप करना भी जड़ता है, पर उसमें सम्बन्ध भगवान्‌का है। भगवान्‌का सम्बन्ध तो दृढ़ होना चाहिये, पर जड़ताका सम्बन्ध छूटना चाहिये। **भगवत्प्राप्तिमें भगवान्‌का सम्बन्ध कारण होगा, जड़ता कारण नहीं होगी।**

श्रोता—परन्तु गीतामें तो प्राणायामरूपी यज्ञसे परमात्मप्राप्ति बतायी है—'**अपाने जुह्वति प्राणं.......** ' (गीता ४। २९-३०)?

स्वामीजी—पर अन्तमें भगवान्‌ने कहा है—'**कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे**' (गीता

४। ३२) अर्थात् प्राणायाम आदि सब यज्ञ कर्मजन्य हैं—ऐसा जानकर करनेसे तू कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा। कर्मजन्य जाननेसे कर्मोंका त्याग होगा। **कर्मोंसे भोग मिलेंगे, परमात्मा नहीं मिलेंगे।** हरेक बातको गहरी रीतिसे समझना चाहिये।

नामजप उपासना है, कर्म नहीं। उपासना और कर्म—दोनोंका विभाग अलग-अलग है। नामजपमें नामी (जिनका नाम है, उन भगवान्)-की मुख्यता है, नामकी मुख्यता नहीं है। नामजप पुकार है। पुकारके साथ-साथ हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी लगन भी हो तो बहुत लाभ होगा। भगवान्के नाम, चरित्र, लीला आदिका श्रवण-कथन जड़ताके द्वारा होता है। परन्तु जड़ताके द्वारा होनेपर भी उनका सम्बन्ध भगवान्से है।

स्थूलशरीरसे क्रिया, सूक्ष्मशरीरसे चिन्तन और कारणशरीरसे स्थिरता होती है। लोगोंके हृदयमें स्थिरताका बहुत महत्त्व है, पर वास्तवमें चंचलता और स्थिरता—दोनों एक ही हैं। साधकको दोनोंसे असंग होना है। वास्तविक तत्त्व स्थिरताका भी प्रकाशक है। स्थिरताकी, समाधियोंकी महिमा नहीं है। मैंने वेदान्तके आचार्यतककी पढ़ाई की है, पर यह बात पुस्तकोंमें नहीं मिली, सन्तोंकी वाणीमें मिली है। सन्तोंकी वाणीसे जो ज्ञान हुआ है, वह पढ़ाईसे नहीं हुआ है। जबतक जड़तासे सम्बन्ध रहेगा, तबतक तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी। यह सम्बन्धकी बात मेरेको वेदान्तकी पुस्तकोंमें नहीं मिली!

एक श्लोक आता है—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

(मार्कण्डेयपुराण ३७। २३)

अर्थात् आसक्तिपूर्वक किसीका भी संग नहीं करना चाहिये; परन्तु अगर ऐसी असंगता नहीं होती हो तो सन्तोंका संग करना चाहिये। कारण कि सन्तोंका संग असंगता प्राप्त करनेकी औषध है। परन्तु सन्तोंमें ही महत्त्वबुद्धि करके वहीं अटक जायगा तो प्राप्ति कैसे होगी? **वास्तवमें दवाई रोग दूर नहीं करती, प्रत्युत वह नीरोगताके परमाणुओंको पुष्ट करती है।** अतः स्थिरतामें भी महत्त्वबुद्धि होगी तो परमात्मप्राप्ति नहीं होगी।

श्रोता—बुद्धिकी स्थिरता होनेके बाद परमात्माकी प्राप्ति बतायी गयी है?

स्वामीजी—बुद्धिकी स्थिरता होनेपर बुद्धिसे सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिये। बुद्धिसे सम्बन्ध रखते हुए प्राप्ति नहीं होगी।

श्रोता—नामजप पुकाररूपसे किस प्रकार करना चाहिये?

स्वामीजी—अभी मैं जिस अवस्थामें हूँ, उस अवस्थामें रह नहीं सकता; उसमें चैन नहीं पड़ता—इस भावसे नामजप करो। त्यागसे होनेवाली शान्ति भी सुहाये नहीं। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'—इस प्रकार भगवान्को पुकारो। आप भगवान्के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ोगे, उतना जल्दी कल्याण होगा।

श्रोता—'साधक-संजीवनी' में लिखा है कि व्याकुलताका भी आश्रय न हो। इसका क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी—व्याकुलतासे भी असंगता होनी चाहिये। साधनसे असंगता होगी, तभी तो साधक साध्यमें पहुँचेगा, नहीं तो साधनमें ही टिका रहेगा। असंगता बहुत दामी चीज है; क्योंकि स्वरूप असंग

है—‘**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**’ (बृहदारण्यक० ४। ३। १५)।

श्रोता—अजामिलने अपने लड़केका ‘नारायण’ नाम लिया तो उसका कल्याण हो गया!

स्वामीजी—उसमें कारण था—सन्तोंकी कृपा। उसके लड़केका नाम सन्तोंने रखा था। सन्तकृपा और चीज है!

***   ***   ***

श्रोता—आपने विषयोंके त्यागके लिये कहा, पर विषयोंका त्याग हम जबर्दस्ती कर रहे हैं, स्वाभाविक नहीं हो रहा है!

स्वामीजी—पहले विषयोंका जबर्दस्ती त्याग करो, फिर स्वाभाविक हो जायगा। आपका उद्देश्य विषयोंके त्यागका बनना चाहिये। उद्देश्य मुख्य है।

श्रोता—गृहस्थमें रहते हुए हमारा प्रेम भगवान्‌में कैसे हो?

स्वामीजी—गृहस्थमें रहनेकी रुचि ही बाधक है। आपके प्रश्नका तात्पर्य है कि आप इस रुचिको रखना चाहते हैं। गृहस्थमें रहें अथवा साधु होकर रहें, कहीं भी रहें, भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। गृहस्थका आग्रह नहीं होना चाहिये।

भगवान्‌को ‘हे नाथ! हे नाथ!’ पुकारो। इसमें बड़ी विलक्षण शक्ति है! भगवन्नाममें विलक्षण शक्ति है। ‘गोविन्द गोपाल’ शब्द कहते ही विलक्षणता आती है। व्यवहारमें ‘गोविन्द गोपाल’ कहते ही एकदम असर होता है।

***   ***   ***

परमात्माका उद्देश्य रखनेवालेको परमात्माकी प्राप्ति अवश्य होगी, चाहे देरीसे हो। अगर तत्काल प्राप्ति करनी हो तो वह जड़ताके त्यागसे होगी, जड़ताके द्वारा नहीं। जड़ताके द्वारा प्राप्ति नहीं होती—ऐसा कहनेका तात्पर्य जल्दी प्राप्ति होनेमें है। **मेरी प्रकृति है कि परमात्मप्राप्ति आज, अभी होनी चाहिये, जल्दी-से-जल्दी होनी चाहिये। इसमें देरी क्यों?** आप कितने ही पापी, दुर्गुणी-दुराचारी हों, आज प्राप्ति हो सकती है। परमात्मप्राप्तिकी सच्ची लगन होनी चाहिये।

परमात्मप्राप्ति करना चाहो तो अपनेको स्त्री-पुरुष मत मानो। **अपना सम्बन्ध भगवान्‌से जोड़ो कि मैं तो भगवान्‌का हूँ। अपनेको भगवान्‌का मान लो तो बड़ा भारी काम हो गया!** अपनेको स्त्री-पुरुष मानोगे तो भगवान् कैसे मिलेंगे? अपनेको स्त्री मानोगे तो पुरुष मिलेगा, भगवान् थोड़े ही मिलेंगे! परमात्मप्राप्तिमें स्त्रीपना-पुरुषपना भी बाधक है। स्त्री-पुरुषका भेद व्यवहारमें, लौकिक मर्यादामें आवश्यक है।

आप शरीर बने बैठे हो तो भगवान्‌की प्राप्ति कैसे होगी? आपका भीतरका ही भाव बदल जाय कि मैं तो भगवान्‌का हूँ। गोपियोंको ‘**वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः**’ कहा गया है (श्रीमद्भागवत १०। ४७। ५९), पर उनमें ‘मैं भगवान्‌की हूँ’—यह भाव मुख्य था। **भगवान्‌का सम्बन्ध ऐसा है, जो सभी झूठे सम्बन्धोंको काट देता है।**

***   ***   ***

तीन योगमार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। मनुष्य कर्मयोगसे संसारके लिये, ज्ञानयोगसे अपने लिये और भक्तियोगसे भगवान्‌के लिये उपयोगी होता है। कर्मयोगसे संसारकी सेवा होती है, ज्ञानयोगसे अपना बोध होता है और भक्तियोगसे भगवान्‌में प्रेम होता है।

तीनों योगमार्गोंका खुलासा विशेषतासे सेठजीकी वाणीमें हुआ है। इससे भी विशेष खुलासा शरणानन्दजीकी वाणीमें हुआ है। शरणानन्दजीने एक बात विशेषतासे कही कि इन तीनोंका जो अन्तिम निचोड़ है, वह साधक पहले ही धारण कर ले तो जल्दी कल्याण हो जाय। जीवका सम्बन्ध ईश्वरके साथ है और शरीरका सम्बन्ध संसारके साथ है। शरीरकी प्रधानतासे कर्मयोग है, अपने स्वरूपकी प्रधानतासे ज्ञानयोग है और ईश्वरकी प्रधानतासे भक्तियोग है। एक दृष्टिसे देखा जाय तो कर्मयोग और भक्तियोग—ये दो ही हैं। ज्ञानयोग सहयोगी है। परन्तु यह बहुत गहरी बात है, हरेक नहीं समझता। भक्तियोग अन्तिम है। कुछ आचार्य ज्ञानयोगको अन्तिम मानते हैं। **निष्पक्ष होकर गहरा विचार करें तो भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है।** गीताकी दृष्टिसे भी भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है। गीताका भलीभाँति मनन करनेसे यह बात सिद्ध होती है कि कर्मयोग तथा ज्ञानयोग लौकिक हैं, और भक्तियोग अलौकिक है। रामायणमें भी भक्तिकी विशेषता है। रामायण भी तीन हैं। 'अध्यात्मरामायण' ज्ञानप्रधान है, 'वाल्मीकि रामायण' कर्मप्रधान है और 'रामचरितमानस' भक्तिप्रधान है। गोस्वामीजी महाराज तीनों योगमार्गोंको जानते थे, पर उनमें भक्तिका विशेष आदर था। इसलिये उन्होंने ज्ञानको दीपक और भक्तिको मणि बताया।

ज्ञानयोगके साधकको सबसे पहले अहंताका त्याग करना पड़ेगा; क्योंकि अहंताके त्यागके बिना ज्ञानयोग चलता नहीं। अहंताका त्याग होनेपर ज्ञानयोगकी और भगवान्‌के शरणागत होनेपर भक्तियोगकी जल्दी सिद्धि होती है। भक्तियोगीका उद्धार करना भगवान्‌का काम है—**'तेषामहं समुद्धर्ता'** (गीता १२। ७)। भगवान् अपने भक्तको ज्ञानयोग तथा कर्मयोग—दोनों प्रदान कर देते हैं (गीता १०। १०-११)। अतः भक्तियोग सुगम पड़ता है, ज्ञानयोग कठिन पड़ता है।

कोई अपना उद्धार करना चाहता है, पर उसको कर्मयोग, ज्ञानयोग अथवा भक्तियोगका बोध नहीं है, उसके लिये भगवन्नामका जप श्रेष्ठ है। भगवन्नामके जपसे तीनों योग सिद्ध हो जाते हैं। हमारेसे कोई पूछे तो सत्संगसे विशेष लाभ होता है, पर असली सत्संग मिलता नहीं है। सत्संगके नामपर व्यापार तो सब जगह होता है, पर मार्मिक बातोंका विवेचन प्रायः मिलता नहीं। वक्ता कथामें लोगोंको राजी करना ही उचित समझते हैं। तात्त्विक बातोंको ठीक तरहसे नहीं समझते।

साधकको चाहिये कि प्रभुके चरणोंकी शरण लेकर भगवद्भजनमें लग जाय। बार-बार प्रार्थना करे कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। हर समय भगवान्‌को याद रखे। भगवान्‌को हरदम यादमात्र रखनेसे सिद्धि हो जाती है—**'अच्युतः स्मृतिमात्रेण'**।

*** *** ***

गीतामें आया है—**'अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते'** (गीता १२। ५) 'देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति कठिनतासे प्राप्त की जाती है'। तात्पर्य है कि शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवालोंके लिये ज्ञानमार्ग बहुत कठिन है। फिर जो शरीरकी आवश्यकता मानते हैं, उनके लिये ज्ञानमार्गपर चलना कितना कठिन है! शरीरकी जरूरत मानेंगे तो शरीरमें मैं-मेरेपनका त्याग कैसे होगा? इसलिये ज्ञानमार्गीको आरम्भसे ही अपनेको शरीर नहीं मानना चाहिये। शरीरकी जरूरत माननेवाला ज्ञानमार्गसे बहुत दूर चला गया! वह ज्ञानमार्गमें जा सकता ही नहीं!

कर्मयोगमें यह मानना ही होगा कि हमारे पास जो वस्तु, बल, योग्यता आदि है, वह दूसरोंके लिये ही है। ज्ञानयोगमें यह मानना ही होगा कि शरीर अपना नहीं है। भक्तियोगमें यह मानना ही होगा कि भगवान् मेरे हैं। साधक शरीर नहीं होता। **साधकमात्रको अपनेको निराकार मानना चाहिये।**

वह अपनेको शरीर मानेगा तो साधनमें कैसे चलेगा? शरीरको अपना और अपने लिये मानोगे तो साधन नहीं होगा। ये बड़ी विचित्र बातें हैं, जो हरेक जगह मिलती नहीं!

शरीर तो स्त्री-पुरुषका मूत है। मूतसे परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी? जो मूतमें बैठा है, उसीको महत्त्व देता है, उसको परमात्मा कैसे मिलेंगे?

वो ही नाले पूत है, वो ही नाले मूत।
राम भजे तो पूत है, नहिं तो मूत-का-मूत॥

बात यह बड़ी कड़वी है, पर है सच्ची! इसलिये मैं यह बात विशेषतासे कहता हूँ कि आप शरीर नहीं हो, प्रत्युत परमात्माके अंश हो। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह आपका भाव है, शरीर नहीं।

जो 'शरीर मैं-मेरा नहीं' आदि कुछ नहीं जानते, पढ़े-लिखे बिलकुल नहीं हैं, काला अक्षर भैंस बराबर है, वे भी 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारने लग जायँ तो सब ठीक हो जायगा!

***   ***   ***

ज्ञानमार्गपर चलनेवाले भगवत्सम्बन्धी प्रसन्नताको अन्तःकरणका विकार मानते हैं। पर वास्तवमें वह विकार नहीं है। सांसारिक पदार्थोंको लेकर जो प्रसन्नता होती है, वह विकार है। असली बात यह है कि आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। भगवान्‌की भक्तिमें विलक्षणता, अलौकिकता है। साधारण-से-साधारण आदमी भी भक्तिमें चल सकता है। संसार क्या है, सच्चा है कि झूठा है, इससे हमें क्या मतलब? संसार जैसा भी है, हमारे कामकी चीज नहीं है। हमारे कामके भगवान् हैं। हमारी वृत्ति भगवान्‌की तरफ ही रहनी चाहिये। यह भी कसौटी न हो कि अन्तःकरण ठीक है या बेठीक है। अन्तःकरणसे अथवा वृत्तियोंसे हमें क्या मतलब? सब भगवान्‌की लीला है। लीलामें जन्म भी होता है, मृत्यु भी होती है; गाना-बजाना भी होता है, रोना भी होता है। भगवान् अपने दीखने चाहिये। जैसे माताओंको बालक अपने लगते हैं, पति, देवर आदि अपना कुटुम्ब मालूम देता है, ऐसे ही आपको भगवान् अपने मालूम देने चाहिये।

श्रोता—मैं भगवान् बालकृष्णको अपना बेटा मानता हूँ, पर मैं ब्रह्मचारी हूँ, तो फिर भगवान् बेटेके रूपसे कैसे मिलेंगे?

स्वामीजी—मिल जायँगे। भगवान् सांसारिक बेटे-जैसे नहीं हैं। भगवान् रज-वीर्यसे पैदा होनेवाले मलिन बेटे नहीं हैं, शुद्ध, निर्मल बेटे हैं।

***   ***   ***

एक मार्मिक बात है कि हमारे केवल भगवान् ही हो सकते हैं। जड़ चीजें हमारी कैसे हो सकती हैं? हम भगवान्‌के अंश हैं, शरीर प्रकृतिका अंश है। उस शरीरकी सहायतासे हमें भगवान्‌की प्राप्ति कैसे होगी? नहीं हो सकती। यह मूल बात है। **ये शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि भगवान्‌के हैं, यह तो ठीक है, पर ये हमारी सहायता करेंगे, यह ठीक नहीं है।** इनको अपना मानना बहुत बड़ी गलती है, मामूली गलती नहीं है। यह गलती भी नहीं सुधरेगी तो भगवान्‌की प्राप्ति कैसे होगी?

नामजपमें संख्या देखना उचित नहीं है। **जिन भगवान्‌ने हमें अनगिनत चीजें दी हैं, उनका नाम हम गिनकर लें! गिनती इसलिये रखो कि हमारा नामजप कम न हो जाय। भगवान् गिनतीसे नहीं मिलते, प्रेमसे मिलते हैं।** भगवान् प्यारे लगने चाहिये। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेसे ही गंगाजी आदि श्रेष्ठ हैं। कहीं भी विशेषता दीखे तो हमारी वृत्ति भगवान्‌की तरफ जानी चाहिये, न कि जड़की

तरफ।

***　　***　　***

श्रोता—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग मेरी समझमें नहीं आता। ऐसा कोई उपाय बतायें, जिससे कल्याण हो जाय।

स्वामीजी— 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि समझनेकी जरूरत नहीं। बालक ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि कुछ नहीं जानता, केवल यही जानता है कि मेरी माँ है। मेरी माँ मेरेको गोदमें क्यों नहीं लेती—ऐसी व्याकुलता होनी चाहिये।

ज्ञानयोग, कर्मयोग आदिको समझनेकी जरूरत व्याख्यान देनेवालोंके लिये, लोगोंको समझानेके लिये होती है। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये इन बातोंको जाननेकी कोई जरूरत नहीं है। पढ़ाई करनेसे भगवान् मिल जायँगे—ऐसा नहीं है, और पढ़ाई नहीं करनेसे भगवान् मिल जायँगे—यह भी नहीं है। भगवान् तो प्रेमसे मिलते हैं। भगवान्‌के बिना मन नहीं लगे। उनके बिना रहा न जाय।

***　　***　　***

सब संसार दो चाहनाओंमें डूबा मरता है—भोगोंकी चाहना और रुपयोंकी चाहना। मूलमें बात यह है कि इन चाहनाओंको मिटाना नहीं चाहते, और इनको मिटाये बिना परमात्मामें रुचि नहीं होती। अगर इनको कोई मिटाना चाहे तो इसका उपाय बताते हैं। भोगोंसे और रुपयोंसे भी कोई अच्छी चीज मिल जाय तो इनकी चाहना मिट जायगी। सबसे अच्छी चीज परमात्मा है। परन्तु परमात्माकी बात लोग बाहर-बाहरसे सुनते हैं, भीतरसे नहीं पकड़ते। **भगवान् अच्छे, प्यारे, मीठे लगने लग जायँ तो ये सब चाहनाएँ छूट जायँगी, सब दोष छूट जायँगे।** कारण कि परमात्मामें जो रस है, वह संसारमें है ही नहीं।

परमात्मामें रस कैसे पैदा हो? यह खास बात है। अभ्याससे संसारका रस नहीं छूटता। भगवान्‌के नाममें, रूपमें, लीलामें, गुणोंमें, चरित्रोंमें रसबुद्धि, प्रियता पैदा हो जाय तो संसारका रस छूट जायगा। जैसे, सौ रुपयोंमें रस दीखे तो पाँच रुपयोंका रस छूट जायगा। पहले खिलौनोंमें मन लगता था, अब उनको छोड़कर रुपयोंमें मन लगता है। इसलिये आप कीर्तन करो तो भगवान्‌में मन लगाकर कीर्तन करो। मन लगाकर कीर्तन करनेसे एक रस, आनन्द पैदा होता है। उस आनन्दमें यह शक्ति है कि संसारके भोग और रुपये वैसे मीठे नहीं लगेंगे।

वास्तवमें संसारमें रसबुद्धि है नहीं, प्रत्युत आपने चाहना करके पैदा की है। इसलिये आप सबसे कहना है कि चाहना छोड़ो। आप कहेंगे कि चाहना छूटती नहीं! पर आप कम-से-कम चाहना छोड़नेका विचार तो करो। जब आप छोड़ना चाहते ही नहीं तो फिर छूटे कैसे? साधकको चाहिये कि वह रसबुद्धिसे, सुखबुद्धिसे विषयोंका सेवन न करे। भोजन करे तो रसबुद्धि (स्वादबुद्धि)-से न करे। कपड़े पहने तो रसबुद्धि (शौकीनबुद्धि, सुन्दरताबुद्धि)-से न पहने। कोई चीज देखे तो शौकसे, रुचिपूर्वक न देखे। उपेक्षा रखे। निर्वाहबुद्धिसे भोजन, वस्त्र आदि ग्रहण करे। तात्पर्य है कि विषयोंका सेवन करना हो तो कठोरबुद्धिसे करे, पर भगवत्सम्बन्धी कार्यमें मनको द्रवित करे।

स्वाद और शौकीनीमें लगोगे तो भगवान्‌में रस पैदा नहीं होगा। जिस चीजका सेवन करो, निर्वाहबुद्धिसे करो। जितनी सादगी रखोगे, उतना बढ़िया है। जितनी शौकीनी करोगे, उतना पतन है। **जितनी सादगी रखोगे, उतना खर्चा कम होगा, उतनी वृत्तियाँ ठीक रहेंगी, उतनी शान्ति रहेगी।**

जैसे बुखारको कोई नहीं चाहता, फिर भी बुखार आ जाता है, ऐसे ही मिलनेवाली चीज अपने-

आप मिलती है। जब बुखार बिना चाहे आता है तो क्या पदार्थ बिना चाहे नहीं आयेंगे?

*** *** ***

मेरा किसीमें राग-द्वेष नहीं है, राग-द्वेष करना भी नहीं है और राग-द्वेषको मैं अच्छा भी नहीं समझता हूँ। गीतामें ज्ञानकी बहुत महिमा कही गयी है; परन्तु **'स महात्मा सुदुर्लभः'** (७। १९), **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (९। २२), **'तेषामहं समुद्धर्ता'** (१२। ७),**'सर्वगुह्यतमम्'** (१८। ६४) आदि अनेक पद भक्तिमें ज्यादा आये हैं। ज्ञानमार्गको मैं छोटा नहीं मानता हूँ, पर निष्पक्ष होकर देखें तो गीतामें भक्तिकी महिमा अधिक बतायी है।

शरणानन्दजी महाराजने अपनेको क्रान्तिकारी संन्यासी कहा है। उनकी पुस्तकोंमें गीताजीकी असली-असली गहरी बातें आती हैं। इतने जानकार होनेपर भी उनमें अपनी जानकारीका अभिमान कभी आया ही नहीं! उनकी मान्यता थी कि सिद्धान्त भगवान्‌का होता है, पर व्यक्ति अपना मानकर उसको अशुद्ध कर देता है। वे कहते थे कि संसारकी कोई वस्तु व्यक्तिगत है ही नहीं। उन्होंने ऐसी बारीक-बारीक बढ़िया बातें बतायी हैं, जो पहलेवाली बातोंसे भी विशेष हैं और उनसे आदमीमें बहुत जल्दी परिवर्तन होता है। उन्होंने सब सिद्धान्तोंसे आगेकी बातें निकालकर कही हैं। उनमें भी उन्होंने 'हरि-आश्रय' और 'विश्राम' को सबसे श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी—दोनों ही भक्तिमार्गके अधिकारी होते हैं। मुक्तिमें कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्गमें कोई फर्क नहीं है, पर प्रेमकी प्राप्ति केवल भक्तको ही होती है। कर्मयोग और ज्ञानयोग तो साधन हैं, पर भक्तियोग साध्य है।

हम अपनेको जहाँ मानते हैं, वहाँ ही परमात्मा हैं। परमात्मा कभी आपको छोड़ते ही नहीं और जिसको छोड़ना चाहते हैं, वह सब संसार आपको छोड़ रहा है—ये दो बातें आप याद रखें।

'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह बहुत बढ़िया मन्त्र है। भगवान्‌को याद करनेसे आपका सब काम ठीक हो जायगा। आजतक आपके मनमें भगवान्‌का जैसा स्वरूप जँचा है कि भगवान् ऐसे हैं, उसी स्वरूपको याद करें। फिर भगवान्‌का स्वरूप वास्तवमें जैसा है, वह स्वयं भगवान् जना देंगे—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (गीता ९। २२)।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌ने कहा है कि योगमायासे ढका होनेके कारण मैं सबके सामने प्रकट नहीं होता (गीता ७। २५)। इसका तात्पर्य क्या है?

स्वामीजी—भक्त ही मेरेको जाने, दूसरा मेरेको न जाने—यह योगमाया है। भगवान् भक्तोंके सामने प्रकट होते हैं।

भगवान्‌ने कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

'मेरी यह गुणमयी दैवी माया दुरत्यय है अर्थात् इससे पार पाना बड़ा कठिन है। जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे मायाको तर जाते हैं'।

किसी घरमें एक कुतिया थी। जो भी आता था, वह जोरसे भौंकने लगती थी और उसको

अन्दर नहीं आने देती थी। उसके मालिकको कहा तो वह बोला 'चुप रह!' तो कुतिया चुप हो गयी। ऐसे ही माया भगवान्‌की है, जो सबको तंग करती है। आप भगवान्‌के शरण होकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो भगवान् उसको चुप कर देंगे!

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि इच्छा छोड़ दो तो शरीरसे तादात्म्य छूटे बिना इच्छा छूट सकती है क्या?

स्वामीजी—इच्छा छोड़ दो तो तादात्म्य छूट जायगा और तादात्म्य छोड़ दो तो इच्छा छूट जायगी। दोनोंमें आप चाहे जो पहले कर दो, आपकी मरजी है।

जब इच्छापूर्ति इच्छाके अधीन है ही नहीं तो फिर झूठी इच्छा करनेसे क्या फायदा? कामना केवल दु:खका कारण है। दु:ख चाहते हो तो कामना करो। कामना छोड़ दो तो आपकी सब आफत मिट जायगी। चाहे कामना छोड़कर भगवान्‌के आश्रित हो जाओ, चाहे भगवान्‌के आश्रित होकर कामना छोड़ दो। **भगवान् हमारी इच्छा पूरी करेंगे—ऐसा भाव है तो भगवान् साधन हुए, साध्य नहीं हुए।** इसके सिवाय भगवान्‌की क्या इज्जत रही? भगवान्‌की भगवत्ता नष्ट हो गयी! अगर आप भगवान्‌से कामनापूर्ति चाहते हो तो भगवान् मशीनकी तरह हुए! क्या नाशवान् वस्तु भगवान्‌से ज्यादा कीमती है?

श्रोता—हम कामना करते नहीं, हो जाती है!

स्वामीजी—हो जाती है तो उसको छोड़ दो। उसको पकड़ो मत। उसको काममें मत लाओ। आपके मनमें आनेवाली सब बातें आप काममें लाते हो क्या? अगर सब बातें काममें लाओ तो एक दिनमें कई जूते पड़ेंगे! तात्पर्य है कि कामना छोड़ना आपको आता है। गधेके मनमें जहाँ इच्छा होती है, वहीं खड़े-खड़े टट्टी-पेशाब कर देता है। आप ऐसा करते हो क्या? इच्छाका त्याग करना ही पड़ता है। इच्छा छोड़े बिना कोई जी ही नहीं सकता। अन्य इच्छा तो छोड़ देंगे, पर जिससे जन्म-मरण हो, वह इच्छा नहीं छोड़ेंगे! **अगर आप मुक्ति चाहते हो तो कामना छोड़नी पड़ेगी।** कामनाका त्याग नहीं करोगे तो क्या त्याग करोगे? शरीर आदिका त्याग तो स्वत: हो रहा है।

बहन-बेटी, ब्राह्मण, साधु आदि जो आपसे चाहता है, वह आपको अच्छा लगता है या जो आपसे कुछ नहीं चाहता, वह अच्छा लगता है?

श्रोता—नहीं चाहनेवाला अच्छा लगता है।

स्वामीजी—अगर नहीं चाहनेवाला अच्छा लगता है तो इससे सिद्ध हुआ कि नहीं चाहना आपको प्यारा लगता है। वह भी आप नहीं छोड़ते हो तो फिर क्या छोड़ोगे? अगर आप चाहना रखोगे तो किसीको भी अच्छे नहीं लगोगे, भगवान्‌को भी नहीं! माँगनेवालेसे आपको डर लगता है। गरीब साधु और ब्राह्मणसे भी डर लगता है कि कहीं यह कुछ माँग न ले! मैं कलकत्ते गया तो एक सज्जनने कहा कि स्वामीजी, आप कुछ माँगना मत। मैंने कहा कि आप निश्चिन्त रहो, कुछ नहीं माँगेंगे।

भगवान्‌के जितने भक्त हुए हैं, वे संसारको त्यागकर हुए हैं या संसारको लेकर हुए हैं? कामनाका त्याग किये बिना भगवान्‌में तत्परतासे नहीं लग सकते। **अगर भगवान्‌में लग जाओ, 'हे नाथ! हे नाथ!' करना शुरू कर दो तो त्याग अपने-आप आ जायगा।**

कामनाका त्याग करनेसे नया प्रारब्ध बनता है। जीनेकी इच्छा नहीं करनेसे उम्र बढ़ती है। किसी भी चीजकी इच्छा न रखनेसे सब चीजें आती हैं। इच्छा रखनेवाले दु:ख पाते हैं और इच्छा न रखनेवाले मौजसे रहते हैं!



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्‌भुत वर्णन।
१०. **कृपामयी भगवद्‌गीता** (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१५. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
१७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com